प्रवचन-क्रम

1. सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् 2
2. भारत का भविष्य 15
3. भारत का दुर्भाग्य 27
4. जीवन का सृजन 45
5. तीन असत्य 60
6. नई दृष्टि का जन्म 74
7. धर्म जीवन की कला है.................... 87

पहला प्रवचन

सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्

मेरे प्रिय आत्मन्!

मनुष्य के जीवन में या जगत के अस्तित्व में एक बहुत रहस्यपूर्ण बात है। जीवन को तोड़ने बैठेंगे तो जीवन भी तीन इकाइयों में खंडित हो जाता है। अस्तित्व को खोजने निकलेंगे तो अस्तित्व भी तीन इकाइयों में खंडित हो जाता है। तीन की संख्या बहुत रहस्यपूर्ण है। और जब तक धार्मिक लोग तीन की संख्या की बात करते थे तब तक तो हंसा जा सकता था, लेकिन अब वैज्ञानिक भी तीन के रहस्य को स्वीकार करते हैं। पदार्थ को तोड़ने के बाद अणु के विस्फोट पर, एटामिक एनालिसिस से एक बहुत अदभुत बात पता लगी है, और वह यह है कि अस्तित्व जिस ऊर्जा से निर्मित है उस ऊर्जा के तीन भाग हैं--न्यूट्रान, प्रोटान, इलेक्ट्रान। एक ही विद्युत तीन रूपों में विभाजित होकर सारे जगत का निर्माण करती है।

मैं एक शिव के मंदिर में कुछ दिन पहले गया था और उस मंदिर के पुजारी को मैंने पूछा कि यह शिव के पास जो त्रिशूल रहता है, इसका क्या प्रयोजन है? उस पुजारी ने कहा, शिव के पास त्रिशूल होता ही है, प्रयोजन की कोई बात नहीं है।

लेकिन वह त्रिशूल बहुत पहले कुछ मनुष्यों की सूझ का परिणाम है। वह तीन का सूचक है। हजारों मंदिर इस जगत में हैं और हजारों तरह से तीन के आंकड़े को पकड़ने की कोशिश की गई है। ईसाई अस्तित्व को तीन हिस्सों में तोड़ देते हैं--आत्मा, परमात्मा और होली घोस्ट। और हमने त्रिमूर्तियां देखी हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

यह बड़े मजे की बात है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों वही काम करते हैं जो न्यूट्रान, प्रोटान और इलेक्ट्रान करते हैं। ब्रह्मा सृजनात्मक शक्ति हैं, विष्णु संरक्षण शक्ति हैं और शंकर विध्वंस शक्ति हैं।

ये तीन के आंकड़े मनुष्य के जीवन में बहुत-बहुत द्वारों से पहचाने गए हैं। परमात्मा की परम अनुभूति को जिन्होंने जाना है, वे उसे सत्, चित्, आनंद--एक्झिस्टेंस, कांशसनेस और ब्लिस--इन तीन टुकड़ों में बांटते हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन की गहराइयां खोजी हैं, वे सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्--इन तीन टुकड़ों में मनुष्य के व्यक्तित्व को, उसकी पर्सनैलिटी को बांटते हैं।

यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है कि मनुष्य का पूरा गणित तीन का विस्तार है। शायद ही आपने कभी सोचा हो कि मनुष्य ने नौ आंकड़े, नौ की संख्या तक ही सारी संख्याओं को क्यों सीमित किया। हमारी सारी संख्या नौ का ही विस्तार है। और नौ, तीन में तीन के गुणनफल से उपलब्ध होते हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि हम नौ के कितने ही गुणनफल करते जाएं, जो भी आंकड़े होंगे, उनका जोड़ सदा नौ होगा। अगर हम नौ का दुगुना करें, अठारह, तो आठ और एक नौ हो जाएगा। अगर तीन गुना करें, सत्ताईस, तो सात और दो नौ हो जाएंगे। हम नौ में अरबों-खरबों का भी जोड़ करें तो भी जो आंकड़े होंगे उनका जोड़ सदा नौ होगा।

शून्य है अस्तित्व, वह पकड़ के बाहर है। और जब अस्तित्व तीन में टूटता है तो पहली बार पकड़ के भीतर आता है। और जब अस्तित्व तीन से तिगुना हो जाता है तो पहली दफे आंखों के लिए दृश्य होता है। और जब तीन के आंकड़े बढ़ते चले जाते हैं तो अनंत विस्तार हमें दिखाई पड़ने लगता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी ये तीन की परिधियां ख्याल करने जैसी हैं। सत्यम मनुष्य की अंतरतम, आंतरिक, इनरमोस्ट केंद्र है। सत्यम का अर्थ है, मनुष्य जैसा है अपने को वैसा जान ले। सत्यम मनुष्य के स्वयं से

संबंधित होने की घटना है। सुंदरम सत्यम के बाद की परिधि है। मनुष्य प्रकृति से संबंधित हो जाए, अपने से नहीं। मनुष्य निसर्ग से संबंधित हो जाए, नेचर से संबंध जोड़ ले, तो सुंदरम की घटना--दि ब्यूटीफुल की घटना घटती है। और शिवम मनुष्य की सबसे बाहर की परिधि है। शिवम का मतलब है दूसरे मनुष्यों से संबंध। शिवम है समाज से संबंध, सुंदरम है प्रकृति से संबंध, सत्यम है स्वयं से संबंध।

हमारे बाहर प्रकृति का एक जगत है। हमारे बाहर मनुष्यों का एक जगत है। और हम हैं। तो मनुष्य के बिंदु पर अगर हम तीन वर्तुल बनाएं, तीन कनसेंट्रिक सर्किल्स खींचें, तो पहला निकटतम जो सर्किल है वह सत्यम का है; दूसरा जो सर्किल है वह सुंदरम का है, प्रकृति से संबंधित होने का जो जगत है; और तीसरा जो सर्किल है वह शिवम का है, मनुष्य का मनुष्य से संबंधित होने का जो वर्तुल है।

शिवम सबसे ऊपरी व्यवस्था है। इसलिए समाज की दृष्टि में शिवम सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए समाज नीति से ज्यादा धर्म के संबंध में विचार नहीं करता। समाज के लिए बात समाप्त हो जाती है। अगर आप दूसरों के लिए अच्छे हैं तो समाज की बात समाप्त हो जाती है। समाज इससे ज्यादा आपसे मांग नहीं करता। समाज कहता है, दूसरों के साथ व्यवहार अच्छा है तो हमारा काम पूरा हो गया। इसलिए समाज सिर्फ नीति से चल सकता है। समाज को धर्म और दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं है। समाज का काम नीति पर पूरा हो जाता है--एक व्यक्ति दूसरे के साथ अच्छा होना चाहिए।

समाज को इसकी चिंता नहीं है कि व्यक्ति प्रकृति के साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिंता नहीं है कि व्यक्ति अपने साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी चिंता नहीं है कि व्यक्ति अपने भीतर सत्य को उपलब्ध हो। इसकी भी चिंता नहीं है कि चांद-तारों से उसके सौंदर्य के संबंध बनें। उसकी सिर्फ एक चिंता है कि मनुष्यों के साथ उसके संबंध शुभ हों, गुड हों। इसलिए समाज शिव पर सारा जोर डालता है। और जो लोग अपने जीवन में शिव को पूरा कर लेते हैं, समाज उनको महात्मा, साधु का आदर देता है।

लेकिन अस्तित्व की गहराइयों में शिवम सबसे कम गहरी चीज है, सबसे उथली चीज है। इसलिए साधु अक्सर गहरे व्यक्ति नहीं होते। साधुओं से तो कहीं कवि और चित्रकार भी ज्यादा गहरा होता है। साधुओं से तो वह भी ज्यादा गहरा होता है जिसने चांद-तारों से अपना कोई संबंध जोड़ लिया।

असल में, जो चांद-तारों से अपना संबंध जोड़ पाता है वह मनुष्य से तो जोड़ ही लेता है, इसमें तो कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मनुष्य से संबंध जोड़ता है, जरूरी नहीं है कि वह चांद-तारों से भी जोड़ता हो। सुंदरम की जिसकी प्रतीति गहरी है वह शिवम को तो उपलब्ध हो जाता है; जिसने ब्यूटीफुल को खोज लिया है वह गुडनेस को तो उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि गुडनेस अपने आप में बहुत बड़ी से बड़ी सौंदर्य की अनुभूति है। जिसने सुंदर को खोज लिया वह इतनी कुरूपता भी बरदाश्त नहीं कर सकता कि बुरा हो सके। बुरा होना एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है।

लेकिन जिसने शिव को साधा है वह असुंदर हो सकता है। और जिसने शिव को साधा है उसे सौंदर्य में भी चुनाव करना पड़ता है।

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने एक सुझाव रखा था कि खजुराहो, कोणार्क और पुरी के मंदिर मिट्टी में दबा दिए जाने चाहिए, क्योंकि उन मंदिरों पर जो मूर्तियां हैं वे शुभ नहीं हैं, शिव नहीं हैं। सुंदर हैं, लेकिन गुडनेस से उनका संबंध नहीं मालूम पड़ता है। खजुराहो की दीवाल पर जो मैथुन के चित्र हैं, जो नग्न सुंदर स्त्रियों की प्रतिमाएं हैं, पुरुषोत्तमदास टंडन का ख्याल था, इन्हें मिट्टी में दबा देना चाहिए। और गांधी जी भी उनके इस

ख्याल से राजी हो गए थे। अगर रवींद्रनाथ ने बाधा न डाली होती तो हिंदुस्तान की सबसे कीमती संपत्ति मिट्टी में दब सकती थी। रवींद्रनाथ तो हैरान हो गए यह बात सुन कर कि कोई ऐसा सुझाव दे! लेकिन टंडन शिव के आदमी थे। क्या ठीक है, यह पर्याप्त है। ऐसा सौंदर्य उनके बरदाश्त के बाहर है जिससे किसी के मन में अशुभ पैदा हो सके। वे ऐसी कुरूपता को भी पसंद कर लेंगे जो शुभ की दिशा में ले जाती हो।

इसलिए जिन देशों में साधुओं का बहुत प्रभाव है उन देशों में सौंदर्य की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। हमारा ही ऐसा एक अभागा मुल्क है। इस मुल्क में सौंदर्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। सौंदर्य अपमानित है, सौंदर्य निंदित है। बल्कि काउंट कैसरलेन हिंदुस्तान से जर्मनी वापस लौटा तो उसने वहां जाकर लिखा कि मैं हिंदुस्तान से यह समझ कर आया हूं कि कुरूप होना भी एक आध्यात्मिक योग्यता है, और बीमार होना भी आध्यात्मिक गुण है, और गंदा होना भी साधना की अनिवार्य शर्त है।

जैन साधु स्नान नहीं करेगा। पसीने की जितनी बास आए, उतनी गहरी साधना का सबूत मिलता है। दातुन नहीं करेगा। मुंह पास ले जाएं तो आपको घबड़ाहट छूटे, तो समझना चाहिए दूसरी तरफ जो आदमी है वह साधु है।

हिंदुस्तान ने शिव की बहुत प्रतिष्ठा की है। और इस प्रतिष्ठा ने सौंदर्य को घातक नुकसान पहुंचाया है। मेरी दृष्टि में, गांधी शिव के अन्यतम प्रतीक हैं।

लेकिन शिव मनुष्य की पहली परिधि है। बहुत गहरी नहीं है, पहली सीढ़ी है। बहुत गहरी नहीं है। जब हम दूसरे व्यक्ति से संबंधित होने का ही केवल ख्याल रखते हैं और जब हम यही सोच कर चलते हैं कि दूसरे से हमारे संबंध कैसे हों, और यह कभी नहीं सोचते कि हम कैसे हैं और यह भी कभी नहीं सोचते कि मनुष्यों के अतिरिक्त भी जगत का कोई अस्तित्व है--पत्थर भी हैं, नदियां भी हैं, पहाड़ भी हैं, जब इस विराट जीवन को हम मनुष्य के ही समाज में केंद्रित कर देते हैं, तो जगत और जीवन बहुत संकीर्ण हो जाता है। स्वभावतः जो सिर्फ शिव की ही साधना करेगा, उसके पाखंडी हो जाने का खतरा है। जरूरी नहीं है कि वह पाखंडी हो जाए, लेकिन उसका खतरा है। क्योंकि वह बहुत ऊपर-ऊपर से जीवन को पकड़ने की कोशिश में लगा है। उसने जिंदगी को जड़ों से नहीं पकड़ा है, उसने जिंदगी को फूलों से पकड़ने की कोशिश की है। उसने जिंदगी की बाहरी परिधि को लीपने-पोतने की कोशिश की है। वह चरित्र को ठीक करेगा, वह पानी छान कर पीएगा, वह यह करना ठीक है या नहीं है, ऐसा होना ठीक है या नहीं है, वह यह सब सोचेगा, लेकिन इस सारे सोच में वह जीएगा परिधि पर, गहराई में नहीं जी सकेगा।

गांधी मेरे लिए पहले प्रतीक हैं जो शुभ के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। अगर कोई विकृत हो जाए तो हिटलर जैसा आदमी पैदा होगा और अगर कोई सुकृत हो जाए तो गांधी जैसा आदमी पैदा होगा। ये एक ही परिधि पर खड़े लोग हैं।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि हिटलर सिगरेट नहीं पीता है, हिटलर मांस नहीं खाता है, हिटलर रात नियम से सोता है और सुबह ब्रह्ममुहूर्त में नियम से उठता है। हिटलर अविवाहित रहा है। हिटलर के जीवन में समझा जाए तो साधु के सब लक्षण पूरे हैं, लेकिन हिटलर से ज्यादा असाधु आदमी पृथ्वी पर दूसरा पैदा नहीं हुआ।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पी लेता और थोड़ी शराब पी लेता और थोड़ा मांस खा लेता, तो मैं समझता हूं दुनिया का इतना नुकसान न होता जितना हुआ। अगर वह किसी एकाध स्त्री से प्रेम कर लेता या पड़ोसी की पत्नी से लुक-छिप कर थोड़ी बात कर लेता, तो भी दुनिया का इतना नुकसान न

होता जितना हुआ। वह आदमी सब तरफ से बंद हो गया। सब तरफ से जो जबरदस्ती शुभ होने की कोशिश करेगा उसका अशुभ किसी और मार्ग से प्रकट होना शुरू हो जाएगा और बहुत बड़े पैमाने पर प्रकट होगा।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग ऊपर से अहिंसा साध लेते हैं, उनकी आंखों, उनकी नाकों, उनके हाथों में सबसे अहिंसा की जगह हिंसा झरने लगती है। जो लोग ब्रह्मचर्य साध लेते हैं, उन्हें चौबीस घंटे सेक्स उनका पीछा करने लगता है। जो लोग किसी दिन उपवास किए हैं, अगर आप में से किसी अभागे ने किसी दिन उपवास किया हो तो उसको पता होगा कि दिन को भोजन के अतिरिक्त और कोई ख्याल नहीं आता और रात सिवाय भोजन के कोई सपना नहीं आता।

शुभ को कोई अगर आग्रहपूर्वक जबरदस्ती थोप लेगा, तो शुभ तो नहीं सधेगा, सिर्फ पाखंड होगा और विकृतियां और परवरशंस पैदा होते हैं। लेकिन अगर कोई शुभ को पूरे मननपूर्वक साध ले, तो भी पाखंड तो पैदा नहीं होता, चरित्र पैदा हो जाता है, शुभ चरित्र पैदा हो जाता है, लेकिन होता परिधि का है, बहुत गहरा नहीं होता।

दूसरी परिधि सौंदर्य की है। आचरण शिव की परिधि है और सौंदर्य की हमारी जो अनुभूति है, एस्थेटिक जो सेंस है हमारे भीतर, सुंदर की जो भावदशा है, सुंदर को ग्रहण करने की जो ग्राहकता, सेंसिटिविटी है, वह दूसरी परिधि है। गांधी को मैं पहली परिधि का प्रतीक पुरुष मानता हूं--सफल प्रतीक पुरुष। हिटलर को मैं पहली परिधि का असफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। और रवींद्रनाथ को मैं दूसरी परिधि का सफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। उनके जीवन में सौंदर्य सब कुछ है।

सुनी है मैंने एक घटना कि गांधी रवींद्रनाथ के घर मेहमान थे। सांझ घूमने निकलते थे तो उन्होंने कहा कि आप भी चलेंगे? रवींद्रनाथ ने कहा कि रुकें, मैं थोड़ा बाल संवार लूं। गांधी को समझ के बाहर हो गया। स्वाभाविक! इस बुढ़ापे में बाल संवारने की बात बेहूदी मालूम पड़ सकती है, किसी भी साधु को पड़ेगी। लेकिन कोई और होता तो गांधी तत्काल उससे कुछ कहे होते। रवींद्रनाथ से एकदम से कुछ कहना भी कठिन था। चुपचाप खड़े रह गए। उनके कहने में भी विरोध तो था, उनके चुप रहने में भी विरोध था।

रवींद्रनाथ भीतर गए हैं और पांच मिनट बीत गए, नहीं लौटे; दस मिनट बीत गए, नहीं लौटे। गांधी के बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने भीतर झांक कर देखा। देखा आदमकद आईने के सामने खड़े हैं, इस बुढ़ापे में सब सफेद हो गए बालों को संवारते हैं और मंत्रमुग्ध हैं ऐसे कि जैसे भूल गए हैं कि घूमने जाना है। गांधी ने कहा, क्या कर रहे हैं आप? इस उम्र में और बालों को इतने संवारने की फिक्र?

रवींद्रनाथ मुड़े। उनका चेहरा जैसे समाधिस्थ था। उन्होंने कहा, जब जवान था, तो बिना संवारे चल जाता था। जब से बूढ़ा हो गया हूं तब से बहुत संवारना पड़ता है।

रास्ते में बात हुई तो रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं अक्सर सोचता हूं कि किसी को अगर मैं कुरूप दिखाई पड़ूं तो मैं उसको दुख दे रहा हूं, और दुख देना हिंसा है। और किसी को मैं सुंदर दिखाई पड़ूं तो उसे मैं सुख दे रहा हूं, और सुख देना अहिंसा है।

शायद ही कभी किसी ने सोचा हो कि सौंदर्य में अहिंसा भी हो सकती है।

रवींद्रनाथ कह रहे हैं, जब मैं किसी को सुंदर दिखाई पड़ता हूं तो उसे सुख दे रहा हूं। और सुख देना अहिंसा है। और जब मैं कुरूप दिखाई पड़ता हूं तो मैं दुख दे रहा हूं। और दुख देना हिंसा है। तो रवींद्रनाथ कह रहे हैं कि मेरी नैतिकता मुझसे कहती है कि मैं सुंदर दिखाई पड़ता रहूं। मरते अंतिम क्षण तक प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि मैं कुरूप न हो जाऊं, मैं असुंदर न हो जाऊं।

और यह हैरानी की बात है कि रवींद्रनाथ, जैसे-जैसे बूढ़े होते गए वैसे-वैसे सुंदर होते गए। मरते वक्त बहुत कम लोग इतने सुंदर होते हैं जितने रवींद्रनाथ थे। और रवींद्रनाथ को मरते वक्त देख कर कोई कह सकता था--जैसे हिमालय के शिखर पर बर्फ आ जाए ऐसे उनके चेहरे पर वह जो बुढ़ापे की सफेदी और सफेद बाल आ गए थे उन्होंने जैसे कि श्वेत हिम से उन्हें ढंक दिया हो। वे जैसे गौरीशंकर हो गए थे।

रवींद्रनाथ के मन में सौंदर्य की बड़ी गहरी पकड़ है। इतनी गहरी पकड़ है कि शुभ को भी वे सुंदर का ही एक रूप समझते हैं, अशुभ को असुंदर का एक रूप समझते हैं। बुरा आदमी इसलिए बुरा नहीं है कि बुरा काम करता है, बुरा आदमी इसलिए बुरा है कि बुरा आदमी कुरूप है। और बुरे आदमी का बुरा काम भी इसीलिए बुरा है कि बुरे काम के परिणाम कुरूप हैं। अग्लीनेस से विरोध है। असाधुता का विरोध नहीं है, विरोध है कुरूपता का। और अगर साधु भी कुरूपता पैदा कर रहा है जीवन में, तो रवींद्रनाथ का विरोध है।

सौंदर्य की जिनके जीवन में थोड़ी सी प्रतीति होगी, वे मनुष्य के जगत के पार जो और बड़ा जगत है, उसमें प्रवेश कर जाते हैं। साधारणतः हम मनुष्य की दुनिया में ही जीते हैं। सच तो यह है कि मनुष्य की दुनिया में भी पूरी तरह नहीं जीते हैं, वहां भी अधूरे जीते हैं। मनुष्य के पार वृक्ष भी हैं, पत्थर भी हैं, पहाड़ भी हैं, चांद-तारे भी हैं, आकाश भी है। यह इतना विराट चारों तरफ फैला है, इससे हमारा कोई संबंध नहीं है।

अभी पीछे लंदन में एक सर्वे किया जा रहा था स्कूल के बच्चों का। तो दस लाख बच्चों ने यह कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है और सात लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। अब जिन बच्चों ने गाय नहीं देखी, जिन बच्चों ने खेत नहीं देखा, ये एक अर्थ में जगत से पूरी तरह टूट गए हैं। इनका जगत से कोई संबंध न रहा। इनका संबंध सिर्फ मानवीय जगत से है।

अब आज मैं एक किताब पढ़ रहा था, तो उस किताब के लेखक ने यह सुझाव दिया है कि चूंकि जमीन छोटी हो गई है और जमीन पर रहने वाले लोग ज्यादा हो गए हैं, इसलिए अब हमें अंडरग्राउंड, जमीन के नीचे रहने का इंतजाम कर लेना चाहिए। और धीरे-धीरे सारी मनुष्यता को जमीन के नीचे निवास करने के लिए राजी कर लेना चाहिए।

वह ठीक कह रहा है। अगर मनुष्यता इसी तरह बढ़ती गई तो आदमी को जमीन के नीचे जाना पड़ेगा। तब शायद हो सकता है, सूरज से भी हमारा कोई संबंध न रहे, चांद-तारों से भी हमारा कोई संबंध न रहे। तब हम प्रकृति से पूरी तरह टूट जाएं और आदमी अकेली सचाई रह जाए या आदमी की बनाई गई चीजें अकेली सचाई रह जाएं--कारखाने, मशीनें, मकान, आदमी--यह आदमी की दुनिया है।

आदमी की दुनिया इस विराट दुनिया का बहुत छोटा हिस्सा है। अगर हम पूरी दुनिया को ख्याल में लें तो यह कोई हिस्सा ही नहीं। अगर हम पूरे जगत के विस्तार को सोचें तो आदमी क्या है? वह कुछ भी नहीं है। उसकी यह पृथ्वी क्या है? वह भी कुछ नहीं है। उसका यह सूरज भी क्या है? यह भी कुछ नहीं है। हम जगत के ना-कुछ हिस्से हैं। उस ना-कुछ हिस्से में आदमी की दुनिया ना-कुछ है। और उस ना-कुछ आदमी की दुनिया में दस-पचास आदमियों के बीच एक आदमी संबंधित होकर जी लेता है। स्वभावतः, इसके अस्तित्व में बहुत गहराइयां नहीं पैदा हो सकती हैं।

फिर एक और समझ लेने जैसी बात है कि मनुष्य के साथ हमारे जो भी संबंध हैं वे अपेक्षाओं के, एक्सपेक्टेशंस के संबंध हैं। इसलिए पूर्ण रूप से सुंदर नहीं हो सकते। जहां अपेक्षा है वहां कुरूपता प्रवेश कर जाती है। मनुष्य से हमारे जो संबंध हैं वे मांग और पूर्ति के, डिमांड और सप्लाई के संबंध हैं। नहीं, मालिक के

साथ मजदूर का एक डिमांड और सप्लाई का संबंध है, ऐसा मत समझना। पति और पत्नी के बीच जो संबंध है वह भी डिमांड और सप्लाई का है। हम एक-दूसरे के साथ संबंधित हैं कुछ शर्तों के साथ।

जब आदमी सौंदर्य से संबंधित होता है जगत के तो पहली दफे बेशर्त और अनकंडीशनल होता है। और जब हम बेशर्त होते हैं तो संबंधों की गहराई और ही हो जाती है। और जब हम सशर्त होते हैं तब संबंधों की गहराई और हो जाती है--कोई गहराई नहीं रह जाती। सौंदर्य के संबंध मनुष्य को और गहरे ले जाते हैं। कवि, चित्रकार, नृत्यकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, सौंदर्य के स्रष्टा और सौंदर्य के भाव में जीने वाले लोग हैं।

लेकिन साधुओं के बहुत प्रभाव के कारण काव्य, सौंदर्य और संगीत हमारे जीवन में गहरा प्रवेश नहीं कर पाया। साधुओं को सदा भय रहा है इस बात का कि कहीं सौंदर्य लोगों को अनीति में न ले जाए। जब कि सच्चाई यह है कि अगर सौंदर्य का बोध बढ़ जाए तो ही आदमी वस्तुतः नैतिक हो पाता है, अन्यथा नैतिक नहीं हो पाता। सौंदर्य का जितना गहरा बोध होता है उतना आदमी सेंसिटिव हो जाता है, उतना संवेदनशील हो जाता है। और जितना संवेदनशील हो जाता है उतना अनैतिक होना कठिन हो जाता है। सौंदर्य का बोध अनीति में नहीं ले जाता; सौंदर्य के बोध की कमी ही अनीति में ले जाती है।

अगर एक आदमी एक वेश्या के पास दस रुपये फेंक कर और प्रेम कर सकता है, तो मैं कहूंगा यह अनैतिक कम, इसमें सौंदर्य की संवेदना बहुत न के बराबर है, इसमें नहीं है। एक आदमी दस रुपये में प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास एस्थेटिक सेंस जैसी कोई चीज नहीं है। एक आदमी रुपये से प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास कोई आंतरिक गहराई का कोई अस्तित्व नहीं है।

लेकिन हमें कोई कठिनाई नहीं आती; क्योंकि या तो हम पत्नियां खरीद लेते हैं पूरे जीवन के लिए, चूंकि वह स्थायी सौदा है। इसलिए शायद हम सोचते हों कि वेश्याओं के पास जाने वाले लोग बड़े अनैतिक हैं। लेकिन स्थायी सौदे और अस्थायी सौदे में बहुत फर्क नहीं है। वह सिर्फ लीज्ड टाइम का फर्क है, और कुछ भी नहीं है। लेकिन सौंदर्य का बोध नहीं है। सच तो यह है कि जिस आदमी को सौंदर्य का बोध हो वह शायद किसी को पति और पत्नी न बना पाए। क्योंकि पति और पत्नी एक कांट्रैक्ट और एक सौदा है। प्रेम सौदा नहीं कर सकता। शायद दुनिया में प्रेम गहरा हो तो परिवार नये ढांचे का निर्मित हो। उसमें पति और पत्नी की मालकियत वाली दुनिया और पजेशन की दुनिया खत्म हो जाए। और उसमें सहज संबंध आएं। जो संबंध भाव के संबंध हैं। जो संबंध दस्तखत किए हुए किसी रजिस्ट्री आफिस के संबंध नहीं हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि रजिस्ट्री आफिस में की गई या बैंड-बाजे बजा कर किसी पुरोहित के सामने की गई। धार्मिक ढंग से की गई रजिस्ट्री, कि सेक्युलर ढंग से की गई, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है।

सौंदर्य का बोध दूसरी गहरी परिधि है, जो मनुष्य को मनुष्य के जगत से ऊपर उठाती है और विराट से जोड़ती है। रवींद्रनाथ मुझे दूसरे प्रतीक मालूम होते हैं। और यह समझने जैसी बात है कि यह जरूरी नहीं है कि दूसरी परिधि पर जो है वह जरूरी रूप से शिव भी हो, शुभ भी हो; लेकिन बहुत संभावना है उसके शिव और शुभ होने की। पहली परिधि के आदमी को जरूरी नहीं है कि वह सिर्फ शुभ ही हो और सुंदर का उसे बोध न हो। लेकिन उसके सौंदर्य के बोध की कठिनाई ज्यादा है।

तीसरी परिधि है सत्य की, जहां व्यक्ति बाहर से नहीं, स्वयं से, अंतर से संबंधित होता है। इस अंतर-आत्मा से, इस ब्रह्म से, इस आत्मा से, यह जो मैं हूं, कब तक मैं आदमियों से ही संबंधित होता रहूंगा? और कब तक चांद-तारों से ही संबंधित होता रहूंगा? कभी मुझे अपने से भी संबंधित होना है। सत्यम तीसरा बिंदु है,

जिसके प्रतीक अरविंद हैं। जिनकी सारी खोज भीतर, और भीतर, और भीतर, यह कौन है, इसे जानने की खोज है। जो व्यक्ति सत्यम को उपलब्ध होता है उसके लिए शिवम और सुंदरम सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए अरविंद आचरण के संबंध में बहुत अदभुत हैं। गांधी से पीछे नहीं हैं। और "सावित्री" लिख कर बता सके हैं कि सौंदर्य के बोध में रवींद्र से पीछे नहीं हैं। और अगर अरविंद को कविता के ऊपर नोबल प्राइज नहीं मिली तो उसका कारण यह नहीं है कि अरविंद की कविता रवींद्र से पिछड़ी हुई है; उसका कारण यह है कि नोबल प्राइज बांटने वाले लोगों के दिमाग "सावित्री" को समझने में असमर्थ हैं। और अरविंद अंतर-आत्मा की खोज में भी गए हैं, स्वयं की खोज में भी गए हैं। अरविंद सत्यम के प्रतीक हैं।

ये तीन व्यक्ति मैं मौजूदा जिंदगी से ले रहा हूं ताकि बात हमें साफ हो सके। लेकिन तीनों में से कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है--न गांधी, न रवींद्र, न अरविंद। क्योंकि ये तीनों अस्तित्व की बातें हैं। मुक्ति इसके पार शुरू होती है। अगर कोई आचरण पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई सौंदर्य पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई स्वयं पर रुक गया तो भी बंध जाता है। पहला बंधन जरा दूर है, दूसरा बंधन जरा निकट है, तीसरा बंधन अति निकट है। लेकिन तीनों ही बंधन हैं। अगर कोई व्यक्ति स्वयं के भीतर ही डूब गया तो भी रुक गया। क्योंकि स्वयं के पार भी सर्व की सत्ता है। वह जो यह "मैं" हूं, इसके पार भी "ना-मैं", वह जो नहीं हूं मैं, उसकी भी सत्ता है। प्रकृति की नहीं, वह कॉस्मिक एक्झिस्टेंस की है, जहां से प्रकृति पैदा होती है और जहां प्रकृति लीन होती है। चरित्र पर रुक जाऊं तो सामाजिक अंश बन कर रह जाता हूं, प्रकृति पर रुक जाऊं तो प्रकृति का अंश बन कर रह जाता हूं, अपने पर रुक जाऊं तो कांशसनेस, चेतना का अंश होकर रह जाता हूं। लेकिन सर्वात्मा का अंश नहीं हो पाता हूं।

इन तीनों के पार जो होता है वही मुक्ति में प्रवेश करता है, वही फ्रीडम में, टोटल फ्रीडम में प्रवेश करता है। सत्य, शिव और सुंदर, तीनों मनुष्य की भाव-दशाएं हैं। और जब तीनों भाव-दशाओं के कोई पार होता है तो निर्भाव हो जाता है। तब वह बियांड माइंड हो जाता है। तब वह मन के पार चला जाता है। समाधि तीनों के पार हो जाने का नाम है।

लेकिन तीनों के पार होने के दो ढंग हैं। एक ढंग के प्रतीक रमण हैं और दूसरे ढंग के प्रतीक कृष्णमूर्ति हैं। तीनों के पार होने का एक ढंग तो यह है कि तीनों शांत हो जाएं। तीनों में से कोई भी न रह जाए, तीनों बिदा हो जाएं। जैसे लहरें सो गईं सागर में, कोई लहर न बची--न शिवम की, न सुंदरम की, न सत्यम की। तीनों शांत हो गईं। और रमण निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध होते हैं। तीनों शांत हो गए हैं। न सत्यम की कोई पकड़ है, न शिवम की कोई पकड़ है, न सुंदरम की कोई पकड़ है। तीनों की लहर खो गई है। यह निष्क्रिय समाधि है। रमण से यात्रा शुरू होती है मुक्ति की।

कृष्णमूर्ति ठीक विपरीत हैं रमण से। चौथी जगह खड़े हैं, लेकिन विपरीत हैं। और रमण में तीनों सो गए हैं, कृष्णमूर्ति में तीनों एक से सजग हैं। तीनों समतुल हैं। तीनों की शक्ति बराबर एक है और तीनों एक से प्रकट हैं। तो अरविंद को तो कविता लिखनी पड़ती है; कृष्णमूर्ति जो बोल रहे हैं, वह कविता है; अलग से लिखनी नहीं पड़ती। कृष्णमूर्ति का होना ही कविता है। अरविंद के लिए तो कोई क्षण काव्य का होगा, कृष्णमूर्ति के लिए पूरा अस्तित्व काव्य है। गांधी को शिवम साधना पड़ता होगा, कृष्णमूर्ति के लिए वह साधना नहीं पड़ता, वह उनकी छाया है। गांधी को अहिंसा लानी पड़ती है, कृष्णमूर्ति के लिए अहिंसा आती है। अरविंद को सत्य को खोजना पड़ता है, कृष्णमूर्ति को सत्य ही खोजता हुआ आ गया है। तीनों समतुल हैं, एक सी शक्ति के हैं।

लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति में क्या फर्क है? दोनों एक ही द्वार पर खड़े हैं। एक निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि तीनों के पार चला गया है। एक सक्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि तीनों के समन्वय को, सिंथेसिस को उपलब्ध हो गया है। दोनों में थोड़ा सा फर्क है। अनुभव का कोई फर्क नहीं है, लेकिन व्यक्तित्व का बुनियादी फर्क है। और रमण की समाधि ऐसे है जैसे बूंद सागर में गिर जाए--बुंद समानी समुंद में। कृष्णमूर्ति की समाधि ऐसी है जैसे बूंद में सागर गिर जाए--समुंद समाना बुंद में। परिणाम में तो एक ही घटना घट जाएगी। लेकिन दोनों के व्यक्तित्व भिन्न हैं।

और कृष्णमूर्ति और रमण मिनिमम क्वालिफिकेशन हैं अध्यात्म के द्वार पर, न्यूनतम योग्यताएं हैं। अध्यात्म के द्वार पर न्यूनतम योग्यता कम से कम इतनी चाहिए जितनी रमण की या कृष्णमूर्ति की। लेकिन यह न्यूनतम योग्यता है, मिनिमम क्वालिफिकेशन है। और रमण और कृष्णमूर्ति से भी महत्तर व्यक्तित्व हैं, जैसे बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट। बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट में रमण और कृष्णमूर्ति संयुक्त रूप से प्रकट हुए हैं, अलग-अलग नहीं हैं। निष्क्रिय और सक्रिय समाधि एक साथ घटित हुई है। वह जो पाजिटिव और निगेटिव है, वह एक साथ घटित हुआ है। महावीर में, बुद्ध में या क्राइस्ट में निषेध और विधेय दोनों एक साथ घटित हुए हैं। वे दोनों एक साथ हैं--कृष्णमूर्ति भी और रमण भी। महावीर जब बोल रहे हैं तब वे कृष्णमूर्ति जैसी भाषा बोलते हैं। और महावीर जब चुप हैं तब वे रमण जैसे चुप होते हैं। रमण मौन हैं, साइलेंट हैं। कृष्णमूर्ति मुखर हैं, प्रकट हैं। कृष्णमूर्ति में तेजी है, रमण में सब शांति है। अगर महावीर को बोलते हुए कोई देखे तो वे कृष्णमूर्ति जैसे होंगे और महावीर को कोई चुप देखे तो वे रमण जैसे होंगे। बुद्ध और क्राइस्ट भी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं।

एक तरफ क्राइस्ट इतने शांत हैं कि सूली पर लटकाए जा रहे हैं, तो भी वे परमात्मा से कह रहे हैं कि इन्हें माफ कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। यह रमण की हालत में हैं। और यही क्राइस्ट चर्च में कोड़ा लेकर चला गया है और सूदखोरों को कोड़े मार कर उनके तख्ते उलट दिए हैं और उनको घसीट कर मंदिर के बाहर निकाल दिया है। वह कृष्णमूर्ति के रूप में हैं।

मुझे कोई कहता है कि कृष्णमूर्ति इतने चिल्ला कर और इतने गुस्से में क्यों बोलते हैं?

जहां सिर्फ सक्रिय समाधि होगी वहां ऐसी घटना घटेगी।

मुझे कोई कहता है कि रमण चुप क्यों बैठे रहते हैं? लोग पूछने जाते हैं और वे चुप ही बैठे रहते हैं!

तो मैं उनसे कहता हूं कि निष्क्रिय समाधि ऐसी ही होगी। वे चुप होकर ही उत्तर दे रहे हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस में ये दोनों घटनाएं एक साथ हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस के पास और भी पूर्णतर व्यक्तित्व है। लेकिन बुद्ध और महावीर और जीसस से भी पूर्णतर व्यक्तित्व की संभावना है। और वैसा व्यक्तित्व कृष्ण के पास है।

बुद्ध, महावीर और जीसस में दोनों चीजों के लिए अलग-अलग क्षण हैं। जब वे निष्क्रिय होते हैं तब अलग मालूम पड़ते हैं, जब वे सक्रिय होते हैं तब वे अलग मालूम होते हैं। और आज तक ईसाई इस बात को हल नहीं कर पाए कि जो जीसस कोड़े मार सकता है, वह जीसस सूली पर चुपचाप कैसे लटक सकता है! ये दोनों बातों का टाइम अलग-अलग है, घड़ी अलग-अलग है। और इसलिए जीसस में बहुत कंट्राडिक्शंस मालूम होते हैं; बुद्ध में भी, महावीर में भी।

कृष्ण का व्यक्तित्व और भी पूर्णतर है। वहां यह कंट्राडिक्शन भी नहीं है। वहां वे दोनों एक साथ हैं। उनके ओंठ पर बांसुरी और उनकी आंख में क्रोध एक साथ है। उनका वचन कि युद्ध में नहीं उतरूंगा और उनका वचन तोड़ देना और युद्ध में उतर जाना एक साथ है। उनकी यह बात कि करुणा ही धर्म है और उनकी यह बात कि

युद्ध में लड़ना ही धर्म है, एक साथ है। कृष्ण के व्यक्तित्व में ऐसे अलग खंड बांटने मुश्किल हैं। वहां निष्क्रिय और सक्रिय एक साथ घटित हुआ है। वहां निष्क्रिय और सक्रिय का भेद भी गिर गया है। कृष्ण आध्यात्मिक प्रवेश की मैक्सिमम क्वालिफिकेशन हैं; वे आखिरी, अधिकतम योग्यता हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि रमण या कृष्णमूर्ति जिस मोक्ष में प्रवेश होंगे वह कुछ न्यून क्षमता का होगा। न! इसका यह भी मतलब नहीं है कि बुद्ध और महावीर जिस मुक्ति में जाएंगे उसका आनंद कृष्ण की मुक्ति से कम होगा। न! इसका यह मतलब नहीं है कि इन दोनों में कोई छोटा-बड़ा है। इसका कुल मतलब यह है कि इन तीनों के व्यक्तित्व में भेद है। जहां ये पहुंचते हैं वह तो एक ही जगह है। लेकिन इन तीनों की पर्सनैलिटी.ज में बुनियादी फर्क है।

रमण और कृष्णमूर्ति से सत्यम्, शिवम्, सुंदरम के अतीत होना शुरू हो जाता है, ट्रांसेनडेंस शुरू हो जाता है। रमण और कृष्णमूर्ति के नीचे तीन तल हैं, जहां कोई शिव को पकड़ कर बैठ गया है, जहां कोई सुंदर को पकड़ कर बैठ गया है, जहां कोई सत्य को पकड़ कर बैठ गया है। और हम सब तो उन तीनों तल के भी बाहर खड़े रह जाते हैं--जहां न हमने शिव को पकड़ा है, न हमने सत्य को पकड़ा है, न हमने सुंदर को पकड़ा है। उन तीनों की हमारे जीवन में कोई गति नहीं है।

एक अर्थ में, जब तक हम पहली सीढ़ी पर न खड़े हों तब तक हम मनुष्य होने के अधिकारी नहीं होते। गांधी के साथ मनुष्यता शुरू होती है, अरविंद के साथ मनुष्यता पूरी होती है। और रमण और कृष्णमूर्ति के साथ अति मानव शुरू होता है, कृष्ण के साथ अति मनुष्यता का अंत होता है। हम कहां हैं?

हम पशु नहीं हैं, इतना पक्का है। हम आदमी हैं, इसमें संदेह है। एक बात तय है कि हम जानवर नहीं हैं। दूसरी बात इतनी तय नहीं है कि हम आदमी हैं। क्योंकि जानवर न होना केवल निषेध है। आदमी होना एक विधायक उपलब्धि है, एक पाजिटिव एचीवमेंट है। प्रकृति हमें "जानवर नहीं हैं" वहां तक छोड़ देती है और आदमी होने का अवसर देती है कि हम आदमी हो सकें। प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा नहीं करती। अगर प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा कर दे तो फिर हम आदमी कभी भी न हो सकेंगे, क्योंकि आदमी होने का पहला कृत्य चुनाव है। अगर प्रकृति हमें चुनाव का मौका न दे तो फिर हम जानवर ही होंगे।

आदमी और जानवर में जो फर्क है वह एक ही है कि जानवर के पास कोई च्वाइस, कोई चुनाव नहीं है। उसके ऊपर कोई चुनाव नहीं है। कुत्ता पूरा कुत्ता पैदा होता है और आप ऐसा नहीं कह सकते कि यह कुत्ता उस कुत्ते से थोड़ा कम कुत्ता है। ऐसा कहेंगे तो आप पागल मालूम पड़ेंगे। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं। दुबले-पतले हो सकते हैं, मोटे हो सकते हैं, लेकिन कुत्तापन बिल्कुल बराबर होगा। लेकिन आप एक आदमी के संबंध में बिल्कुल कह सकते हैं कि यह आदमी थोड़ा कम आदमी है, यह आदमी थोड़ा ज्यादा आदमी है। आदमियत जन्म से नहीं मिलती, इसलिए यह संभव है। आदमियत हमारा सृजन है, आदमियत हम निर्मित करते हैं, आदमियत हमारी उपलब्धि और खोज है। कहें कि आदमियत हमारी डिस्कवरी है, आदमियत हमारा आविष्कार है। लेकिन हम सारे लोग जन्म के साथ यह मान लेते हैं और बड़ी भूल हो जाती है कि हम आदमी हैं।

जन्म के साथ कोई भी आदमी नहीं होता। किसी मां-बाप की हैसियत आदमी पैदा करने की नहीं है। सिर्फ आदमी होने का अवसर पैदा किया जाता है--जस्ट एन अपॅरचुनिटी। जब एक मां-बाप से एक बच्चा पैदा होता है, तो यह आदमी होने की संभावना पैदा हो रही है। यह आदमी पैदा नहीं हो रहा है; यह सिर्फ पोटेंशियल ह्यूमन बीइंग है। यह चाहे तो आदमी हो सकता है और चाहे तो रुक सकता है।

और मजा यह है कि यदि आदमी चाहे तो आदमी हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो आदमी के पार हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु से भी नीचे गिर सकता है।

अगर हम ठीक से समझें तो आदमियत का मतलब है च्वाइस। आदमी का मतलब है चुनाव की अनंत क्षमता। नीचे पशुओं में कोई चुनाव नहीं है। और ऊपर अरविंद के बाद रमण से जो दुनिया शुरू होती है वहां भी कोई चुनाव नहीं है। पशु जैसे हैं वैसे होने को मजबूर हैं। अगर एक कुत्ता भौंकता है तो यह उसका चुनाव नहीं है। और अगर एक शेर हमला करता है और हिंसा करता है तो यह उसका चुनाव नहीं है।

इसलिए किसी शेर को आप हिंसक नहीं कह सकते। क्योंकि जिसकी अहिंसक होने की कोई क्षमता ही नहीं है उसको हिंसक कहने का क्या अर्थ है! इसलिए आप किसी जानवर पर अनैतिक होने का जुर्म नहीं लगा सकते और अपराधी नहीं ठहरा सकते। इसलिए हम सात साल के बच्चे तक को अपराधी ठहराने का विचार नहीं करते, क्योंकि हम मानते हैं कि अभी आदमी कहां! अभी जानवर चल रहा है। इसलिए बच्चे को हम जानवर के साथ गिनते हैं। अभी चुनाव शुरू नहीं हुआ।

लेकिन सात साल तक न हो, यह तो समझ में आता है; फिर सत्तर साल तक न हो तब समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाता है। कुछ लोग बिना चुनाव के ही जी लेते हैं। प्रकृति उन्हें जैसा पैदा करती है वैसे ही जी लेते हैं।

चुनाव मनुष्य का निर्णायक कदम है। कहां से चुनाव करें? शिव से चुनाव करें? सौंदर्य से चुनाव करें? सत्य से चुनाव करें? कहां से चुनाव करें?

साधारणतः दो तरह की बातें रही हैं। एक तो वे लोग हैं, जो कहते हैं, पहले आचरण बदलो, फिर और कुछ गहरा बदला जा सकेगा।

मैं उनसे राजी नहीं हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि आचरण को अगर बदलने से शुरू किया तो पाखंड का पूरा डर है, हिपोक्रेसी का पूरा डर है। इसलिए मैं कहता हूं, स्वयं को समझने से शुरू करो, सत्य से शुरू करो। गांधी से शुरू मत करो, अरविंद से शुरू करो। पहले स्वयं को समझने की चेष्टा से शुरू करो। और जिस दिन स्वयं को जान सको उस दिन स्वयं के बाहर जो फैला हुआ विराट है, उसे जानने की चेष्टा को फैलाओ। तो सौंदर्य जीवन में उतरेगा। और जिस दिन इस विराट को जानने की बात भी पूरी हो जाए उस दिन इस विराट के साथ कैसे व्यवहार करना, उसका विस्तार करो। तो शिवम भी फैलेगा। सत्य से शुरू करो, सौंदर्य पर फैलाओ, शिवम पर पूरा करो।

साधारणतः आज तक दुनिया में जितने धर्म हैं वे कहते हैंः शिवम से शुरू करो और सत्यम की यात्रा करो। वे कहते हैंः आचरण से शुरू करो और आत्मा की तरफ जाओ। मैं आपसे कहता हूं, आत्मा से शुरू करो और आचरण को आने दो। असल में, जो आचरण से शुरू करेगा वह हो सकता है जिंदगी बहुत फिजूल के श्रम में गंवा दे।

गांधीजी जिंदगी भर ब्रह्मचर्य का प्रयोग किए, लेकिन अंतिम क्षण तक तय न कर पाए कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ है या नहीं हुआ। आचरण से शुरू करने की बड़ी तकलीफ है। महावीर को कभी शक न हुआ, बुद्ध को कभी शक न हुआ। गांधी को शक हुआ। उसका कारण है। आचरण से ही जीवन को साधा है, बाहर से ही जीवन को साधा है और भीतर की तरफ बाहर से साध कर गए हैं। मकान के बाहर से साधना शुरू की है और मकान की बाहर की दीवालों को सएहालना शुरू किया है।

बाहर की दीवालें, बाहर की परिधि जीवन की कितनी ही शुभ हो जाए तो भी जरूरी नहीं है कि भीतर जो जी रहा है वह शुभ होगा। लेकिन अगर भीतर जो जी रहा है वह सत्य हो जाए तो जो बाहर है वह अनिवार्य रूप से शुभ हो जाता है।

सारी दुनिया में पांच-दस हजार वर्षों के धर्मों ने आदमी में कुछ पैदा नहीं कर पाया। उसका कारण यह है कि उनकी प्रक्रिया उलटी है, आचरण से शुरू करते हैं और आत्मा तक जाने की बात कहते हैं। आदमी जिंदगी भर आचरण को सएहालने में नष्ट हो जाता है और कभी तय ही नहीं कर पाता कि आत्मा को सएहालने का क्षण आया है। अगर मनुष्य-जाति को सच में धार्मिक बनाना है तो भीतर से शुरू करनी पड़ेगी यात्रा और बाहर की तरफ फैलना पड़ेगा। और मजे की बात यह है कि भीतर से यात्रा करना सरलतम है, क्योंकि जिसे हम बाहर साध-साध कर भी साध नहीं पाते वह भीतर की साधना से अपने आप सध जाता है। ऐसे ही जैसे कोई आदमी गेहूं बोता है तो भूसा तो अपने आप पैदा होता है, भूसे को अलग से पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन कोई सोचे कि जब गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है तो हम भूसा बो दें तो गेहूं भी पैदा हो जाएगा। तो सिर्फ भूसा सड़ जाएगा, गेहूं पैदा नहीं होगा। भूसे के साथ गेहूं पैदा नहीं होता। भूसा बहुत बाहरी चीज है, गेहूं बहुत भीतरी चीज है। असल में, भूसा गेहूं के लिए पैदा होता है, उसकी रक्षा के लिए पैदा होता है। अगर गेहूं नहीं है तो भूसे के पैदा होने की कोई जरूरत नहीं होती।

जब भीतर सत्य पैदा होता है तो उसके आस-पास सौंदर्य और शिव अपने आप पैदा होते हैं रक्षा के लिए। असल में, जब भीतर सत्य का दीया जल जाता है तो अपने आप शिव का आचरण निर्मित होता है, क्योंकि सत्य के दीये को अशिव आचरण में बचाया नहीं जा सकता। जब भीतर सत्य पैदा हो जाता है तो चारों तरफ जीवन में सौंदर्य की आभा फैल जाती है, वैसे ही जैसे दीया जलता है तो घर के बाहर रोशनी फैलने लगती है। अगर इस कमरे में दीया जला हो तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी फैलने लगेगी।

लेकिन आप कहीं, खिड़कियों के बाहर पहले रोशनी फैले और फिर भीतर दीया जलाएंगे, इस ख्याल में पड़ गए, तो बहुत खतरा है। हो सकता है कोई नकली रोशनी लाकर बाहर चिपका लें, तो बात अलग है। लेकिन नकली रोशनी अंधेरे से भी बदतर होती है। नकली फूल असली फूल के न होने से भी बुरा होता है। क्योंकि असली फूल न हो तो पीड़ा होती है असली फूल के खोज की, और नकली फूल हाथ में हो तो यह भी ख्याल भूल जाता है कि असली फूल को खोजना है। नकली फूल दूसरों को धोखा दे, इससे बहुत हर्जा नहीं, खुद को भी धोखा दे देता है।

मनुष्य-जाति का अब तक का धर्म शिव से शुरू होता था, सत्य की यात्रा पर निकलता था। इसलिए हम बहुत लोगों को न तो शिव बना पाए, न सुंदर बना पाए, न सत्य दे पाए। भविष्य में अगर धर्म की कोई संभावना है तो इस प्रक्रिया को पूरा उलट देना पड़ेगा। सत्य से शुरू करें, शिवम और सुंदरम उनके पीछे आएं।

लेकिन ध्यान रहे, सत्य भी उपलब्ध हो जाए, शिवम भी मिल जाए, सुंदरम भी मिल जाए, तो भी हम सिर्फ मनुष्य हो पाते हैं--पूरे मनुष्य। मनुष्य होना काफी नहीं है; जरूरी है, पर काफी नहीं है। नेसेसरी है, इनफ नहीं है, पर्याप्त नहीं है। जैसे ही हम मनुष्य होते हैं, वैसे ही एक नई यात्रा का द्वार खुलता है जो मनुष्य के भी पार ले जाता है। और जब कोई मनुष्यता के पार जाता है, तभी पहली दफे जीवन में उस आनंद को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का आनंद है, उस स्वतंत्रता को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व की स्वतंत्रता है, उस अमृत को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का अमृतत्व है।

इन तीनों के बाहर जाना है। लेकिन हम तो इन तीनों में भी नहीं गए हैं। इन तीनों में जाना है, ताकि इन तीनों के पार जाया जा सके। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम यात्रा है, अंत नहीं। मार्ग है, मंजिल नहीं। साधन है, साध्य नहीं। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम का यह त्रय प्रक्रिया है, और सच्चिदानंद का त्रय उपलब्धि है। वह सत्, चित्, आनंद है। वह उपलब्धि है। उसकी थोड़ी-थोड़ी झलक मिलनी शुरू होती है। जो अपने जीवन में शिव को उतार लेता है उसके जीवन में... जो सत्य को उतार लेता है अपने जीवन में, उसके जीवन में सुख आना शुरू हो जाता है। लेकिन जहां तक सुख है वहां तक दुख की संभावना सदा मौजूद रहती है। जो तीनों के पार चला जाता है वहां आनंद आना शुरू होता है। आनंद का मतलब है--जहां न सुख रहा, न दुख रहा।

इसलिए आनंद के विपरीत कोई भी शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है मनुष्य की भाषा में जिसका कंट्राडिक्टरी नहीं है, जिसका उलटा नहीं है। सुख का उलटा दुख है; और शांति का उलटा अशांति है; और अंधेरे का उजाला है; और जीवन का मृत्यु है। आनंद का उलटा शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है जिसके विपरीत कोई नहीं है। जैसे ही हम सुख और दुख के पार होते हैं, आनंद में प्रवेश होता है।

मुक्ति का द्वार तो रमण और कृष्णमूर्ति से खुल जाता है।

आप कहेंगे, जब द्वार यहीं खुल जाता है, तो बुद्ध और महावीर और कृष्ण तक जाने की क्या जरूरत है?

अलग-अलग व्यक्ति के लिए अलग-अलग बात निर्भर करेगी। मैं बंबई आता हूं तो बोरीवली उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। दादर भी उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। सेंट्रल भी उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। लेकिन वह टर्मिनस है। और एक सिर्फ प्रारंभ है और एक अंत है।

कृष्ण टर्मिनस पर उतरते हैं, आखिरी, जहां ट्रेन ही खत्म हो जाती है, जिसके आगे फिर यात्रा ही नहीं है। रमण और कृष्णमूर्ति बोरीवली उतर जाते हैं। महावीर और बुद्ध और जीसस दादर को पसंद करते हैं। अपनी पसंद की बात है। लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति तक प्रत्येक को पहुंचना ही चाहिए। उसके आगे बिल्कुल पसंद की बात है कि कौन कहां उतरता है। वह बिल्कुल व्यक्तिगत झुकाव है।

लेकिन बहुत दूर हैं रमण और कृष्णमूर्ति, गांधी होना ही कितना मुश्किल मालूम पड़ता है! और कितने लोग बेचारे चर्खा चला-चला कर गांधी होने की चेष्टा करते रहते हैं! चर्खा ही चल पाता है और चर्खा परेशान हो जाता है और वे गांधी नहीं हो पाते। रवींद्रनाथ होना ही कितना मुश्किल है! कितनी तुकबंदी चलती है, कितनी कविताएं रची जाती हैं, लेकिन काव्य का जन्म नहीं हो पाता। कितने लोग आंख बंद करके ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं, उपवास करते हैं। अरविंद होना भी मुश्किल है।

लेकिन अगर गांधी गांधी हो सकते हैं, रवींद्र रवींद्र हो सकते हैं, अरविंद अरविंद हो सकते हैं, तो कोई भी कारण नहीं है कि कोई भी दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं हो सकता है। मनुष्य का बीज समान है, उसकी संभावनाएं समान हैं, उसकी पोटेंशिएलिटी समान है। एक बार संकल्प हो तो परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

एक छोटी सी घटना, और अपनी बात मैं पूरी करूं। एक घटना मैं पढ़ रहा था, दो दिन हुए। अमेरिका का एक अभिनेता, फिल्म अभिनेता मरा। मरने के पहले उसने--कोई दस साल पहले--वसीयत की थी कि मुझे मेरे छोटे से गांव में ही दफनाया जाए।

लोग महात्माओं की वसीयतें नहीं मानते, अभिनेताओं की वसीयत कौन मानेगा? जब वह मरा तो अपने गांव से दो हजार मील दूर मरा। कौन फिकर करता? मरने के बाद महात्माओं की कोई फिक्र नहीं करता तो अभिनेताओं की कौन करता? उसको तो वहीं कहीं ताबूत में बंद करके दफना दिया। मरते क्षण भी उसने कहा कि देखो, मुझे यहां मत दफना देना, अगर मैं मर जाऊं। मैं आखिरी बार तुम से कह दूं कि मुझे मेरे गांव तक

पहुंचा देना, जहां मैं पैदा हुआ था। उसी गांव में मुझे दफनाया जाए। वह मर गया। लोगों ने कहा, मरे हुए आदमी की क्या बात है! उसको ताबूत में बंद करके दफना दिया।

लेकिन रात ही भयंकर तूफान आया, उसकी कब्र उखड़ गई। उसकी कब्र के पास खड़ा हुआ दरख्त गिर गया। और उसका ताबूत समुद्र में बह गया और दो हजार मील ताबूत ने समुद्र में यात्रा की और अपने गांव के किनारे जाकर लग गया। और जब लोगों ने ताबूत खोला तो सारा गांव इकट्ठा हो गया। वह तो उनके गांव का बेटा था जो सारी दुनिया में जग-जाहिर हो गया था। उन्होंने उसे उसी जगह दफना दिया जहां वह पैदा हुआ था।

उस अभिनेता की जीवन-कथा मैं पढ़ रहा था। उसके लेखक ने लिखा है कि क्या यह उसके संकल्प का परिणाम हो सकता है? यह क्वेश्चन उठाया है।

अगर मैं आदमियों की तरफ देखूं तो शक होता है कि यह संकल्प का परिणाम कैसे हो सकता है? आदमी जिंदगी में जहां पहुंचना चाहता है वहां जिंदा रहते नहीं पहुंच पाता। यह आदमी मर कर जहां पहुंचना चाहता था कैसे पहुंच पाएगा? लेकिन दो हजार मील की यह लंबी यात्रा और अपने गांव पर लग जाना और उसी रात तूफान का आना, ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता कि संकल्प से बिल्कुल हीन हो। संकल्प इसमें रहा होगा।

संकल्प की इतनी शक्ति है कि मुर्दा भी यात्रा कर सकता है, तो क्या हम जिंदे लोग यात्रा नहीं कर सकते? लेकिन हमने कभी यात्रा ही नहीं करनी चाही है, हमने कभी अपनी विल को ही नहीं पुकारा है। हमने कभी सोचा ही नहीं कि हम भी कुछ हो सकते हैं या हम भी कुछ होने को पैदा हुए हैं या हमारे होने का भी कोई गहरा प्रयोजन है। कोई गहरा बीज हममें छिपा है जो फूटे, वृक्ष बने और फूलों को उपलब्ध हो, हमें वह ख्याल ही नहीं है।

इस छोटी सी चर्चा में यह थोड़ा सा ख्याल मैं आपको देना चाहता हूं--कि पहले तो जन्म को जीवन मत समझ लेना और पशु न होने को मनुष्य होना मत समझ लेना, मनुष्य की शक्ल को मनुष्य की उपलब्धि मत समझ लेना। मनुष्य होने के लिए श्रम करना पड़ेगा, सृजन करना पड़ेगा, यात्रा करनी पड़ेगी। और मनुष्य होने के लिए शिव से शुरू मत कर देना, अन्यथा लंबी यात्रा हो जाएगी, जन्मों का भटकाव हो जाएगा। मनुष्य की यात्रा शुरू करनी हो तो सत्य से शुरू करना और शिवम तक फैलाना। और अंतिम बात कि सत्य भी मिल जाए, स्वयं भी मिल जाए, शिवम भी मिल जाए, सुंदरम भी मिल जाए, तो भी रुक मत जाना, यह भी पड़ाव नहीं है। मनुष्य के भी ऊपर जाना है। मनुष्य होना जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। मनुष्य के ऊपर उठ कर ही मनुष्यता का पूरा फूल खिलता और विकसित होता है।

मेरी ये थोड़ी सी बातें इतनी शांति और प्रेम से सुनीं, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

भारत का भविष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं। बहुत पुराने दिनों की घटना है, एक छोटे से गांव में एक बहुत संतुष्ट गरीब आदमी रहता था। वह संतुष्ट था इसलिए सुखी भी था। उसे पता भी नहीं था कि मैं गरीब हूं। गरीबी केवल उन्हें ही पता चलती है जो असंतुष्ट हो जाते हैं। संतुष्ट होने से बड़ी कोई संपदा नहीं है, कोई समृद्धि नहीं है। वह आदमी बहुत संतुष्ट था इसलिए बहुत सुखी था, बहुत समृद्ध था। लेकिन एक रात अचानक दरिद्र हो गया। न तो उसका घर जला, न उसकी फसल खराब हुई, न उसका दिवाला निकला। लेकिन एक रात अचानक बिना कारण वह गरीब हो गया था। आप पूछेंगे, कैसे गरीब हो गया? उस रात एक संन्यासी उसके घर मेहमान हुआ और उस संन्यासी ने हीरों की खदानों की बात की और उसने कहा, पागल तू कब तक खेतीबाड़ी करता रहेगा? पृथ्वी पर हीरों की खदानें भरी पड़ी हैं। अपनी ताकत हीरों की खोज में लगा, तो जमीन पर सबसे बड़ा समृद्ध तू हो सकता है।

समृद्ध होने के सपनों ने उसकी रात खराब कर दी। वह आज तक ठीक से सोया था। आज रात ठीक से नहीं सो पाया। रात भर जागता रहा और सुबह उसने पाया कि वह एकदम दरिद्र हो गया है, क्योंकि असंतुष्ट हो गया था। उसने अपनी जमीन बेच दी, अपना मकान बेच दिया, सारे पैसों को इकट्ठा करके वह हीरों की खदान की खोज में निकल पड़ा।

सुनते हैं बारह वर्षों तक जमीन के कोने-कोने पर उसने खोजबीन की, उसकी संपत्ति समाप्त हो गई। अक्सर यह होता है। परायी संपत्ति की खोज में लोग अपनी संपत्ति को गंवा बैठते हैं। उसकी सारी संपत्ति नष्ट हो गई। वह दर-दर का भिखारी हो गया। वह सड़कों पर भीख मांगने लगा। और सुनते हैं एक बड़े नगर में एक दिन भूख के कारण ही उसकी मृत्यु हो गई, वह मर गया।

बारह वर्ष बाद वह संन्यासी उस गांव में फिर से आया, जिसने उस समृद्ध आदमी को दरिद्र कर दिया था। उसके घर के पास पहुंचा और उसने जाकर पूछा कि यहां अली हफीज नाम का एक आदमी रहता था, वह यहां रहता है? लोगों ने कहा, वह तो बारह वर्ष हुए, जिस रात आपने यह घर छोड़ा उसी दिन सुबह दूसरे दिन उसने भी घर छोड़ दिया। वह हीरों की खोज में चला गया। और अभी-अभी खबर आई है कि वह भिखमंगा हो गया था और भूखा एक महानगरी की सड़कों पर मर गया। यह जमीन और मकान हमने खरीद लिया था। हम इसके निवासी हो गए हैं।

उस संन्यासी ने पीने को पानी मांगा और थोड़ी देर वह उस झोपड़े में रुका। उसने देखा कि उस झोपड़े के आले में एक बहुत चमकदार पत्थर रखा हुआ है। उसने उस किसान को पूछा, यह क्या है? उसने कहा, यह मेरे खेत पर, जो हमने अली हफीज से खरीदा था, वहां पड़ा मिल गया है। उसने कहा, पागल, यह तो हीरा है! क्या उसी जमीन पर मिल गया है, जिस जमीन को अली हफीज बेच कर चला गया? उसने कहा, हां, उसी जमीन पर। लेकिन यह हीरा नहीं है, केवल चमकदार पत्थर है और हम बच्चों के खेलने के लिए उठा लाए हैं।

उस संन्यासी ने उस पत्थर को उठाया। उसकी आंखें चमक उठीं। वह हीरों को पहचानता था। उसने उसको कहा कि चल तेरे खेत पर! वे खेत पर गए। वहां एक छोटा सा नाला बहता था, जिस पर सफेद रेत थी। उस रेत में उन्होंने खोजबीन शुरू की और सांझ होते-होते उन्होंने कई हीरे उनके हाथ लग गए।

वह अली हफीज की जमीन थी जो दूसरों की जमीनों पर हीरे खोजने चला गया था। शायद आपने यह कथा न सुनी हो, वही जमीन अली हफीज की गोलकुंडा बन गई, उसी जमीन पर कोहिनूर हीरा मिला। और अली हफीज, जो उस जमीन का मालिक था, एक बड़ी नगरी में भिखमंगा होकर भूखा मर गया। वह हीरे की खोज में चला गया था। लेकिन उसे कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि जो मेरी जमीन है वहीं हीरों की खदानें भी हो सकती हैं, वहीं से कोहिनूर भी निकल सकते हैं।

भारत के भविष्य में भी यह कहानी दोहरेगी। या तो भारत अपनी जमीन पर हीरे खोज लेगा या दूसरों की जमीनों पर भिखमंगा होकर मर जाएगा। यह तो मैं पहली बात कह देना चाहता हूं। और मैं आपको यह भी कह दूं--भारत ने भिखमंगे होने की दौड़ शुरू कर दी है। भारत भिखारी की तरह दुनिया के सामने खड़ा हो गया है। हम भीख मांग रहे हैं और जो कौम भीख मांगने लगती है, उस कौम का भीख मांगने की बजाय मर जाना बेहतर है। उसके जीने की कोई जरूरत नहीं है। यह उचित होगा कि हम मर जाएं भूखे और दरिद्र, लेकिन अपने घर में, बजाय इसके कि हम समृद्ध मकान बना लें, दूसरों से उधार मांग लें, दूसरों से भीख मांग लें और हम जीते रहें। ऐसा जीना, ऐसा जीना अत्यंत बेशर्म जीना है।

यह मुल्क बेशर्मी के लिए रोज-रोज तैयार होता जा रहा है। और जिस कौम की शर्म मर जाती है और जिसे भीख मांगने की तरकीबें और आर्ट पता हो जाता है उस कौम का कोई भविष्य नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिए। उसका भविष्य है ही नहीं। उसका कोई भविष्य नहीं है। उसके भविष्य में कोई सूरज नहीं उगेगा; और उसकी बगिया में कभी कोई फूल नहीं खिलेंगे; और उसके भीतर जो भी आत्मा है वह धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएगी और हम मुर्दा लोगों की तरह, मुर्दा कौम की तरह जमीन पर एक बोझ बन कर रह जाएंगे। हमने यह शुरुआत कर दी है। यह दुर्भाग्य की कथा प्रारंभ हो गई है।

पहली बात तो मुझे यह कहनी है और वह यह कि सएमान से मर जाना भी बेहतर है अपमानपूर्ण जीने से। देश के कोने-कोने में एक-एक आदमी को यह बात कह देने की जरूरत है कि भारत जीएगा तो सएमान से, अन्यथा मर जाएगा। हम मर जाना पसंद करेंगे। लेकिन पीछे लोग कम से कम यह तो कह सकेंगे--एक कौम थी जिसने भीख नहीं मांगी, लेकिन मर गई। लेकिन इतिहास में कहीं ये काली बातें न लिखी जाएं कि एक कौम थी जो भीख मांग कर जीना सीख गई और जीती रही।

भारत का भविष्य उसके भिखमंगेपन के साथ जुड़ा हुआ है। हम क्या करेंगे, इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। कोई हर्ज नहीं कि बिहार के लोग भूखे मर जाएं; कोई हर्ज नहीं कि पचास करोड़ लोगों में दस-पांच करोड़ लोग न जीवित रहें और कब्रिस्तान में चले जाएं, कोई हर्ज नहीं है। लेकिन घुटने टेक कर सारी दुनिया से भीख मांगना अत्यंत आत्मग्लानिपूर्ण, आत्मघाती है। और हम अपनी आत्मा को बेच रहे हैं। और फिर जब देश का चरित्र नीचे गिरता है और जब देश के प्राण नीचे उतरते हैं तो हम चिल्लाते हैं कि चरित्र नीचे गिर रहा है, लोग नीचे होते जा रहे हैं। लेकिन जब पूरी कौम भीख मांगने पर उतारू हो जाएगी तो मनुष्यों का, व्यक्तियों का चरित्र ऊपर नहीं उठ सकता है। पूरे मुल्क का जब कोई गौरव नहीं होगा, कोई सएमान नहीं होगा, कोई आत्मनिष्ठा नहीं होगी, तो एक-एक व्यक्ति की भी आत्मनिष्ठा नीचे गिर जाएगी।

और हमें पता है, हमारे मुल्क में बहुत लोग हैं जो भीख मांगते रहे हैं। लेकिन कभी उन भिखमंगों ने भी यह न सोचा होगा कि विकास इतना हो जाएगा कि धीरे-धीरे पूरा मुल्क ही भीख मांगने लगेगा। उनको भी इसका कोई पता नहीं होगा। लेकिन हम इस अवस्था में खड़े हो गए हैं। और एक बड़ा मजा है, यह शायद आपको पता नहीं होगा, जिस आदमी को आप भीख देते हैं वह आदमी कभी भी आपको क्षमा नहीं करता। इसे मैं फिर से दोहरा दूं, जिस आदमी को आप भीख देते हैं वह कभी आपको क्षमा नहीं कर सकेगा। ऊपर से धन्यवाद देगा, लेकिन उसके प्राणों में आपके प्रति अभिशाप ही होगा, निंदा होगी, घृणा होगी, ईर्ष्या होगी, अपमान का भाव होगा। क्योंकि भीख लेने वाला कभी भी यह अनुभव नहीं करता है कि मैं अपमानित नहीं किया गया हूं। भीख लेने वाला हमेशा अपमानित अनुभव करता है और उसका बदला लेता है।

भारत सारी दुनिया के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांग रहा है और इसका बदला भी ले रहा है सारी दुनिया से। एक तरफ भीख मांगता है, दूसरी तरफ कहता है--हम जगतगुरु हैं। एक तरफ भीख मांगता है, दूसरी तरफ गाली देता है पश्चिम को, भौतिकवादी और मैटीरियलिस्ट कहता है उनको। एक तरफ भीख मांगता है, दूसरी तरफ अपने गौरव को बचाने के झूठे प्रयास करता है। भिखमंगों की यह पुरानी आदत है। भिखमंगे अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि हमारे बाप-दादे सम्राट थे। जिनके पास कुछ भी नहीं बचता है वे फिर मां-बाप की पुरानी कथाओं को खोद-खोद कर निकाल लेते हैं और उनका गुणगान करते हैं। समझ लेना भलीभांति, जिस आदमी का वर्तमान नहीं होता वही केवल अतीत की बातें करता है। और जिसका कोई भविष्य नहीं होता वह केवल अतीत की पूजा और गुणगान में ही समय व्यतीत करने लगता है।

हम निरंतर अतीत का ही गुणगान करते हैं, जो बीत गया उसी का! क्या हमारा कोई भविष्य नहीं है? या कि हमारा कोई वर्तमान नहीं है? क्या हम जी चुके और समाप्त हो गए? हमारा बीता हुआ पास्ट, बस वही सब कुछ है? आगे हमारा कुछ भी नहीं है?

शायद आपको ख्याल में न हो। छोटा बच्चा पैदा होता है तो उसका कोई अतीत नहीं होता, कोई पास्ट नहीं होता; उसका भविष्य होता है, सिर्फ फ्यूचर होता है। जवान! जवान के पास अतीत भी होता है, वर्तमान भी होता है, भविष्य भी होता है। लेकिन बूढ़े के पास सिवाय अतीत के कुछ भी नहीं होता; भविष्य नहीं होता, वर्तमान भी नहीं होता।

यह कौम बूढ़ी हो गई है क्या? इसके पास सब बीती हुई कथाएं हैं, गौरव-गाथाएं हैं। इसके पास अपना कोई वर्तमान नहीं; भविष्य की कोई योजना, आकांक्षा और कल्पना नहीं, कोई आशा नहीं। भविष्य की अगर कोई स्पष्ट प्राणों में ऊर्जा और कल्पना और आकांक्षा न हो, भविष्य का कोई स्पष्ट स्वप्न न हो, तो देश बिखर जाते हैं, कौमें बिखर जाती हैं, डिसइंटीग्रेटेड हो जाती हैं। हमारे पास भविष्य की कोई योजना नहीं, भविष्य की कोई कल्पना नहीं, कोई सपना नहीं; भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं। और इधर बीस वर्षों में हमने और भी सब अस्पष्ट कर दिया है। हम दुनिया में तटस्थ कौम की तरह खड़े हो गए हैं। हम कहते हैं, हम न्यूट्रलिस्ट हैं, हम तटस्थ खड़े होने वाले लोग हैं।

लेकिन आपको पता है, जीवन में तटस्थता का कोई भी अर्थ नहीं होता। जीवन है कमिटमेंट में, प्रतिबद्धता में। जीवन है सिएमलित होने में, किनारे पर खड़े होने में नहीं। और जो किनारे पर खड़ा हो जाएगा और जो कहेगा हम तटस्थ हैं जीवन की धारा में, जो जगत की धारा है उसमें हम तटस्थ और किनारे पर खड़े हैं, वह किनारे पर ही खड़ा रह जाएगा। जीवन की धारा उसे छोड़ कर आगे बढ़ जाएगी।

मेरी दृष्टि में, अगर भारत तटस्थता की बातें आगे भी कहे चला जाता है तो भारत का कोई भविष्य नहीं हो सकता। भारत के भविष्य के निर्माण में भारत को पक्षबद्ध होना ही चाहिए। उसके निश्चित, स्पष्ट मत होने चाहिए। जीवन की धारा में उसकी प्रतिबद्धता, उसका कमिटमेंट होना चाहिए। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि वह समाजवाद लाना चाहता है या लोकतंत्र। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि वह एक वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि विकसित करना चाहता है या नहीं। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि धर्म की क्या कल्पना और क्या रूपरेखा है भविष्य में।

लेकिन धर्म को ध्यान में रख कर भारत निरपेक्ष है और राजनीति को ध्यान में रख कर भारत तटस्थ है। तो समझ लेना कि जीवन को ध्यान में रख कर भारत को अगर मृत होना पड़े, मर जाना पड़े, तो जिएमा किसी और पर मत देना। जो मुर्दे हैं वे ही केवल निरपेक्ष और तटस्थ हो सकते हैं। जीवित व्यक्ति को निरपेक्ष होने की सुविधा नहीं है। उसे निर्णय लेने होते हैं, उसे जजमेंट लेने होते हैं, उसे च्वाइस करनी होती है। उसे मत में बद्ध होना होता है। उसे किसी चीज को ठीक और किसी चीज को गलत कहना होता है।

जो लोग चीजों के गलत और ठीक होने का निर्णय लेना छोड़ देते हैं, धीरे-धीरे जीवन का रास्ता उनके लिए नहीं रह जाता। उनके ऊपर केवल दूसरी कौमों के पैरों की उड़ी हुई धूल ही पड़ती है, और कुछ भी नहीं। उनके पैर धीरे-धीरे निकएमे हो जाते हैं, काहिल हो जाते हैं, सुस्त हो जाते हैं। तटस्थता के भ्रम ने भारत को बहुत धक्का पहुंचाया है। स्पष्ट निर्णय लेने जरूरी हैं।

अगर एक सड़क पर एक स्त्री की इज्जत लूटी जा रही हो और मैं कहूं कि मैं तटस्थ हूं; एक आदमी एक कमजोर आदमी को लूट रहा हो और मैं कहूं कि मैं तटस्थ हूं, मैं निरपेक्ष हूं; तो मेरी तटस्थता का क्या मतलब होगा? तटस्थता झूठी है; और जब एक आदमी लूटा जा रहा है और मैं कहता हूं, मैं तटस्थ हूं, तो मैं लूटने वाले का साथ दे रहा हूं तटस्थता के पीछे, और जो लुट रहा है उसके विरोध में खड़ा हुआ हूं।

जीवन में विकल्प होते हैं, तटस्थता नहीं होती है। जीवन में स्पष्ट निर्णय लेने होते हैं। सारा जगत एक बहुत बड़ी क्राइसिस से गुजर रहा है, एक बहुत बड़े संकट से गुजर रहा है। उसमें भारत कहता है, हम तटस्थ हैं! इतने बड़े संकट में, जिसके ऊपर निर्भर होगा सारे जगत का, सारे मनुष्य का भविष्य, जिसके ऊपर निर्णय होगा कि मनुष्य बचेगा या नहीं बचेगा, उसमें भारत अगर सोचता हो कि हम तटस्थ खड़े रहेंगे, तो गलती में है वह। तटस्थता का कोई अर्थ नहीं होता। इधर बीस वर्षों में हम कोई गति नहीं कर सके जीवन में। उसका कुल कारण है--हमारे पास कोई स्पष्ट दृष्टि, कोई जीवन-दर्शन, कोई फिलासफी नहीं है। हम तटस्थ हैं। तटस्थ की कोई फिलासफी नहीं होती, कोई जीवन-दर्शन नहीं होता। उसकी कोई प्रतिबद्धता नहीं होती। जीवन में भागीदार और साझीदार होने का उसका भाव नहीं रहता। वह कहता है, हम तो किनारे खड़े रहेंगे। वह केवल देखने वाला रह जाता है--एक दर्शक मात्र। और जीवन उनका है जो भोगते हैं। वसुंधरा उनकी है जो भोगना जानते हैं। जो दर्शक की भांति खड़े रह जाते हैं, जीवन उनके द्वार नहीं आता और न जीवन की विजय उन्हें उपलब्ध होती है।

तो मैं दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि भारत को एक सुस्पष्ट दर्शन की, एक सुस्पष्ट विचार की, एक सुस्पष्ट पथ की अत्यंत आवश्यकता है। उसी विचार के इर्द-गिर्द भारत की आत्मा इकट्ठी होगी। अन्यथा भारत बिखर जाएगा। और बिखराव ऐसा होगा, एब्सर्ड, इतना बेवकूफी से भरा हुआ, जिसका कोई हिसाब नहीं। जब पूरे मुल्क के पास कोई जीवन-दिशा नहीं होती, कोई केंद्रीय आत्मा नहीं होती, तो उसका परिणाम यह होता है कि एक-एक प्रांत, एक-एक जाति, एक-एक जिले की अपनी आत्मा पैदा हो जाती है। तब हिंदी बोलने वाले की आत्मा अलग, गुजराती बोलने वाले की आत्मा अलग, अंग्रेजी बोलने वाले की आत्मा अलग हो जाती है। तब

मैसूर अलग, महाराष्ट्र अलग। तब कौम टूटती है टुकड़ों में, जब कौम को इंटीग्रेट करने के लिए कोई जीवन-दृष्टि नहीं होती।

हम चिल्लाते हैं रोज कि मुल्क इकट्ठा होना चाहिए! लेकिन मुल्क इकट्ठा कोई आसमान से होता है? मुल्क इकट्ठा होता है जब मुल्क के सामने भविष्य के लिए कोई सपना होता है जिसे पूरा करना है। हमारे मुल्क के पास कोई सपना नहीं है, हमारी कोई प्रतिबद्धता, कोई कमिटमेंट नहीं है। हम चुपचाप राहगीरों की तरह तमाशा देख रहे हैं। दुनिया जी रही है, हम तमाशगीर हैं। तटस्थता का अर्थ तमाशगिरी ही हो सकता है। और तब, तब क्षुद्र और छोटे मसले मनुष्य के मन को पकड़ लेते हैं, जब कोई बड़ा मसला नहीं होता।

हिंदुस्तान के नेताओं ने पिछले बीस वर्षों में हिंदुस्तान को कोई बड़ा इस्यु, कोई बड़ा मसला, कोई बड़ी समस्या, कोई बड़ा प्राब्लम नहीं दिया है। उलटी हालत हो गई है यहां। दुनिया का इतिहास यह कहता है कि नेता वह है जो कौमों को कोई बड़े इस्यु, कोई बड़ी समस्याएं दे देता है। यहां हालत उलटी है। यहां जनता समस्याएं देती है, नेता उनको हल करने में लगे रहते हैं। और जब नीचे का सामान्यजन समस्याएं देने लगता है और ऊपर के नेता केवल उन समस्याओं को सुलझा कर काम चलाने की व्यवस्था करने लगते हैं, तो मुल्क बिखर ही जाएगा। बड़ा नेतृत्व उन लोगों से उपलब्ध होता है जो मुल्क को किसी जीवंत, लिविंग प्राब्लम के इर्द-गिर्द इकट्ठा कर देते हैं।

लेकिन हमारे प्राब्लएस क्या हैं, पता हैं आपको? दुनिया हंसती होगी। कहीं गौ-हत्या हमारी समस्या है। आदमी मर रहा है, आदमी के बचने तक की संभावना नहीं है, बहुत डर है कि पूरी मनुष्यता भी नष्ट हो जाए, और हमारी समस्या क्या है? गौ-हत्या होनी चाहिए कि नहीं होनी चाहिए! कि भाषा कौन सी बोली जानी चाहिए!

मैं एक घर में ठहरा था। उस घर में आग लग गई, तो घर के लोग चिल्लाने को हुए--आग लग गई है तो चिल्लाएं, पड़ोस के लोगों को जगाएं। मैंने उनसे कहा, पहले यह तो तय कर लो कि किस भाषा में चिल्लाओगे, हिंदी में कि अंग्रेजी में! क्योंकि अभी राष्ट्रभाषा निश्चित नहीं हुई। किस भाषा में चिल्लाओगे, जब तक यही तय नहीं, तब तक चुपचाप बैठो, मकान जलने दो।

टुच्चे, दो कौड़ी के मसले हम मुल्क के सामने उठा कर पूरे मुल्क के प्राणों को बिखरा रहे हैं। मुल्क के सामने कोई लिविंग प्राब्लम, कोई बड़ा प्राब्लम नहीं है। पता होना चाहिए आपको, जगत में केवल वे ही कौमें और वे ही राष्ट्र और वे ही मुल्क कुछ कर पाते हैं जिनके पास कोई जीवंत मसला होता है, कोई बड़ी समस्या होती है। बड़ी समस्याओं के पास बड़ी आत्माएं पैदा होती हैं। बीस साल से हम चिल्ला रहे हैं कि बीस साल पहले जब आजादी नहीं मिली थी तब हमारे मुल्क ने इतने बड़े लोग पैदा किए। वे लोग किसी बड़े मसले के इर्द-गिर्द पैदा हुए थे। बीस साल से आपने कोई बड़ा मसला पैदा नहीं किया, बड़े लोग कैसे पैदा हो सकते हैं? आजादी की बड़ी समस्या थी, बड़ा प्रश्न था, जीवन-मरण का प्रश्न था, उसके आस-पास बड़ी आत्माएं जागीं और पैदा हुईं।

जीवन तो चुनौतियों से, चैलेंजेज से पैदा होता है। बीस साल में कौन सा चैलेंज है आपके सामने? यही कि मैसूर का एक जिला महाराष्ट्र में रहे कि मैसूर में! बेवकूफियों की भी सीमाएं होती हैं, लेकिन हम उनको पार कर गए हैं। गौ-हत्या हो कि न हो! और धर्मगुरु और राजनेता और समझदार इन मसलों पर बैठ कर विचार-विमर्श करते हैं इनको हल करने का। ऐसे लोगों के दिमाग के इलाज की व्यवस्था की जानी चाहिए। ये लोग सारे मुल्क को बर्बादी के रास्तों पर ले जाते हैं, माइंड को डिस्ट्रैक्ट करते हैं, मुल्क की चेतना को गलत मार्गों पर प्रवाहित करते हैं।

एक रात मैंने एक सपना देखा। मैंने एक सपना देखा कि कुछ गौवें कॉनवेंट स्कूल से पढ़ कर वापस लौट रही हैं और एक ऊंट के मकान के सामने ठहर गई हैं। वह ऊंट एक बड़ा चित्रकार है और उस ऊंट ने यह खबर घोषित कर दी है कि पिकासो और पश्चिम के सब मॉडर्न पेंटर्स मेरे ही शिष्य हैं। मैं जगतगुरु हूं उन सबका। उसने घोड़े का एक चित्र बनाया है। तो कॉनवेंट से लौटती गौवों ने सोचा कि जरा हम देख लें, इसने कौन सा घोड़े का चित्र बनाया है। वे भीतर गईं। चित्र था, ऊंट खड़ा मुस्कुरा रहा था। उसने कहा, देखो!

पर उन गौवों ने कहा, इसका कुछ ओर-छोर समझ में नहीं आता! यह कैसा घोड़ा है? उसने कहा, यह मॉडर्न पेंटिंग है। जिसका ओर-छोर समझ में आ जाए, समझना कि वह चित्रकला ऊंची नहीं है। इसका कोई ओर-छोर नहीं होता, इसको बहुत चू.जन फ्यू, कुछ चुने हुए लोग समझ सकते हैं। यह घोड़े का चित्र है। गौवों ने कहा, किसी तरह हम मान भी लें कि यह घोड़े का चित्र है, लेकिन इसकी कूबड़ क्यों निकली हुई है? उस ऊंट ने कहा, तुएहें पता है, बिना कूबड़ के कोई कभी सुंदर होता ही नहीं। क्योंकि परमात्मा ने सुंदरतम प्राणी और श्रेष्ठतम प्राणी तो ऊंट ही बनाया है और चौरासी योनियों में भटक कर जब आत्मा ऊंट की योनि में आती है तभी मोक्ष मिलने का दरवाजा खुलता है। और तुएहें पता है, उस ऊंट ने कहा, ऊंटों की बाइबिल पढ़ी है? उसमें लिखा है, दि गॉड क्रिएटेड कैमल इन हिज ओन इमेज! ईश्वर ने ऊंट को अपनी ही शक्ल में बनाया है। गौवें खूब हंसने लगीं। उन्होंने कहा, ऊंट अंकल, चाचा, तुम समझे नहीं ठीक बाइबिल को। बाइबिल में लिखा है, दि गॉड क्रिएटेड काऊ इन हिज ओन इमेज! गाय को ईश्वर ने अपनी शक्ल में बनाया। और अगर तुम गलत समझते हो तो पुरी के शंकराचार्य से पूछ सकते हो। वे भी कहते हैं कि गौ माता है। आज तक ऊंट को किसने पिता कहा है? आदमी भी मानते हैं गौ माता है। और आदमी मरते हैं कि गौ माता है या नहीं, इस प्रश्न पर।

मेरी तो घबराहट में नींद खुल गई। मैं तो अब तक नहीं सोच पाता कि गौवें भी हंसती हैं इस बात पर कि आदमी यह विचार करते हैं कि गौ माता है या नहीं है। वैसे गौवें भी पसंद नहीं करेंगी इस बात को कहा जाना--गौ माता। गौवें सब कॉनवेंट में पढ़ती हैं, वे पसंद करेंगी--गौ मएमी, डैडी। माता कोई पसंद नहीं करेगा। कोई पसंद नहीं करेगा कि गौ को माता कहा जाए। बहुत आउट ऑफ डेट यह माता जैसा शब्द। लेकिन ये हमारे मसले हैं। अगर जानवरों को पता होगा हमारे मसलों का तो बहुत हंसते होंगे अपनी बैठकों में बैठ कर कि आदमी भी खूब है, गजब का है! हम तो आदमी के बाबत कभी विचार नहीं करते कि आदमी हमारा बेटा है या नहीं। लेकिन आदमियों के धर्मगुरु अनशन करते हैं, उपवास करते हैं और सारे मुल्क की चेतना को व्यथित करते हैं और भटकाते हैं।

असली मसलों से हटाने का एक ही रास्ता है कि नकली मसले पैदा कर दिए जाएं। जीवन की असली समस्याओं से मनुष्य के मन को हटा लेने की पुरानी तरकीब है--झूठी समस्याएं, स्यूडो प्राब्लएस खड़े कर दिए जाएं। बीस साल में हम स्यूडो प्राब्लएस खड़े करने में बड़े निष्णात हो गए हैं।

मुल्क का भविष्य नहीं हो सकता अच्छा, अगर हम इसी तरह के टुच्चे और व्यर्थ के प्रश्न जीवन के सामने खड़े करते चले गए। जीवन के लिए चाहिए बड़े जीवंत प्रश्न। विराट! और स्मरण रहे कि हम जितनी बड़ी समस्या चुनते हैं, जितनी बड़ी चुनौती, उतने ही हमारे भीतर सोई हुई आत्मा जाग्रत होती है और विकसित होती है। जो प्रश्न मनुष्य के भीतर उसकी चेतना को चुनौती नहीं देते उन प्रश्नों को बिदा कर देना चाहिए। निर्णय कर लेना चाहिए कि हम अपने से बड़े प्रश्न चुनेंगे, ताकि मुल्क की चेतना रोज-रोज अतिक्रमण करे, विकसित हो, आगे जाए।

हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है, अगर किसी कौम के सामने बड़े प्रश्न न हों तो बड़े प्रश्न पैदा करने की फिकर करनी चाहिए; क्योंकि जितने बड़े प्रश्न खड़े होते हैं, आदमी उनके उत्तर देने के लिए उतनी ही आतुरता से अपनी सोई हुई शक्तियों को जगाना शुरू कर देता है। लेकिन हम उलटा कर रहे हैं। हम छोटे से छोटे टुच्चे से टुच्चे प्रश्न खड़े करते हैं और उनके साथ अगर मुल्क की आत्मा नीची होती चली जाती हो तो जिएमेवार कौन है? उत्तरदायी कौन है?

तो दूसरी मैं आपसे यह बात कहना चाहता हूं--मुल्क के सामने बड़े प्रश्न खड़े करने हैं। और सबसे बड़ा प्रश्न क्या है? सबसे बड़ा प्रश्न शायद आपको ख्याल में भी न हो। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या मुल्क को समाजवाद की दिशा में जाना है? और मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि समाजवाद या साएयवाद, सोशलिज्म और कएयुनिज्म का इतना प्रचार किया गया है कि अब कोई आदमी सोचता ही नहीं कि यह भी कोई प्रश्न है। अब तो हम सभी मानते ही हैं कि जाना ही है, उसी दिशा में जाना है।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, समाजवाद की मिथ, साएयवाद की परिकल्पना से ज्यादा घातक और खतरनाक कोई कल्पना नहीं हो सकती। यह एकदम झूठी कल्पना है, जिसके अंतर्गत मनुष्य की सारी आत्मा बिक जाएगी और जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है और जो भी सत्य है, वह सब नष्ट हो जाएगा।

पहली बात, कोई दो आदमी समान नहीं हैं और न हो सकते हैं। इक्वालिटी एकदम फिक्शन, एकदम झूठी कल्पना है। कोई दो आदमी समान नहीं हैं, न कभी समान रहे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि एक आदमी नीचा और एक आदमी ऊंचा है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक आदमी भिन्न, अद्वितीय और यूनीक है; एक-एक आदमी बेजोड़ है; कोई आदमी किसी से न छोटा है, न बड़ा। लेकिन कोई आदमी किसी के समान भी नहीं है। और दुर्भाग्य होगा वह दिन, जिस दिन हम आदमियों को जबरदस्ती समानता की मशीन में ढाल कर खड़ा कर देंगे। उस दिन मशीनें रह जाएंगी, मनुष्य नहीं। लेकिन सारी दुनिया में यह कोशिश की जा रही है कि मनुष्य को सब भांति समान कर दिया जाए।

मनुष्य की चेतना और जीवन का विकास व्यक्ति की तरफ है, इंडिविजुअल की तरफ है। लक्ष्य समाज नहीं है, हमेशा व्यक्ति है। अगर हम किसी पौधे के बीज लाएं और पचास बीज रख दें यहां सामने, बीज समान होंगे बिल्कुल, बीजों में कोई फर्क नहीं होगा। लेकिन उन पचास बीज को बगिया में बो दें आप, तो उनसे पचास तरह के पौधे पैदा होंगे। वे पौधे सब भिन्न होंगे। उनमें फूल लगेंगे। वे फूल सब भिन्न होंगे। बीज समान हो सकते हैं, लेकिन विकास की अंतिम स्थिति समान नहीं हो सकती।

कएयुनिज्म मनुष्य की आदिम अवस्था थी, प्रिमिटिव स्टेट ऑफ सोसायटी थी। मनुष्य जब बिल्कुल बीज रूप में थे, जब उनमें कोई विकास नहीं हुआ था तब वह स्थिति थी जब वे सब समान थे। लेकिन जितना मनुष्य में विकास होगा उतना एक-एक व्यक्ति अलग, पृथक, भिन्न और अद्वितीय होता चला जाएगा। जीवन की धारा अद्वितीय व्यक्तियों को पैदा करने की ओर है, एक मोनोटोनस, एक सा समाज पैदा करने की ओर नहीं है।

लेकिन सारी दुनिया में इधर सौ वर्षों में इतने जोर से साएयवाद की बात की गई है कि अब तो कोई कहने का साहस ही नहीं कर सकता कि यह बात कहीं गलत भी हो सकती है। आज रूस में अगर बुद्ध पैदा होना चाहें तो नहीं पैदा हो सकते। महावीर जन्मने के साथ ही मुश्किल में पड़ जाएंगे। और महावीर और बुद्ध को तो छोड़ दें, अगर खुद मार्क्स भी पैदा होना चाहे तो रूस उसकी पैदाइश की जमीन नहीं हो सकती। मार्क्स को भी छोड़ दें, अब तो अगर स्टैलिन भी वापस पुनर्जन्म लेना चाहें रूस में तो रूस में उनको जन्म नहीं दिया जा सकता। क्योंकि रूस या साएयवाद की सारी धारणा व्यक्ति विरोधी है, व्यक्ति वैशिष्ठ्य की विरोधी है,

इंडिविजुअलिटी की विरोधी है। हम इकाइयां चाहते हैं, व्यक्ति नहीं चाहते। और सभी व्यक्तियों को एक सा कर देना है सब भांति। निश्चित ही, सभी व्यक्तियों को समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए। लेकिन समान अवसर इसलिए नहीं कि सभी व्यक्ति समान हो जाएं, बल्कि इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति असमान और भिन्न होने की समान सुविधा उपलब्ध कर सके।

हिंदुस्तान पर भी यह दुर्भाग्य उतर रहा है धीरे-धीरे। कौन लाएगा इस दुर्भाग्य को, यह बात अलग है--कि कएयुनिस्ट लाएंगे, कि कांग्रेस लाएगी, कि सोशलिस्ट लाएंगे। लेकिन यह दुर्भाग्य धीरे-धीरे उतर रहा है और हम भी इस कोशिश में लगे हैं कि एक यांत्रिक, एक कलेक्टिव, एक समष्टिवादी समाज को निर्मित कर लें।

लेकिन आपको पता होना चाहिए--रोटी के मूल्य पर हम आत्मा को बेचने की कोशिश कर रहे हैं। याद होना चाहिए कि समानता की यह जबरदस्त कोशिश मनुष्य के जीवन से स्वतंत्रता को नष्ट करती है, वैचारिक स्वतंत्रता को नष्ट करती है, व्यक्तियों की विशिष्टता को नष्ट करती है, उनके यूनीक, उनके बेजोड़ होने को नष्ट करती है। तब वे किसी बड़े कारखाने के कलपुर्जे रह जाते हैं, स्वतंत्र चेतनाएं नहीं।

सारी दुनिया में यह हो रहा है। हिंदुस्तान में भी होगा। हम पीछे शायद ही रहेंगे। ऐसी कौन सी बीमारी है जिसमें हम पीछे रह जाएं! हम तो सबके साथ आगे होने के लिए अत्यंत उत्सुक और आतुर हो उठे हैं।

अगर भारत के भविष्य के लिए कोई कल्पना और कोई सपना हो सकता है तो वह यह कि भारत, आने वाली दुनिया में भारत व्यक्तिवाद का परम पोषक स्पष्ट रूप से अपने को घोषित करे। व्यक्तियों के विकास का अर्थ यह नहीं होता कि समाज दरिद्र होगा और लोग दीन-हीन होंगे। व्यक्तियों की पूर्ण विकास की अवस्था में कोई दीन-हीन होने की जरूरत नहीं रह जाती, लेकिन असमानता, भिन्नता, वैशिष्ठ्य की स्वीकृति होती है।

एक ऐसा समाज चाहिए जहां प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की स्वतंत्रता हो। समाजवाद या साएयवाद में यह स्वतंत्रता संभव नहीं है। वहां समाज होगा, व्यक्ति नहीं होंगे। व्यक्तियों को लेबलिंग की जाएगी और रह जाएगी एक कलेक्टिव भीड़। और सब तरह की कोशिश की जा रही है माइंड वाश की, मनुष्यों की चेतनाओं को पोंछ डालने की, उनके स्वतंत्र चिंतन को मिटा डालने की, जो हुकूमत कहे वही दोहराने के लिए उनको मशीनें बनाने की। चीन में बड़े जोरों पर प्रयोग चल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में जो विशिष्ट चेतना है उसे पोंछ कर कैसे अलग कर दिया जाए। और पावलव और कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने वे यंत्र उनके हाथ में दे दिए हैं कि एक-एक आदमी के भीतर जो व्यक्तित्व है, जो विशिष्टता है, जो चिंतन है, उसे पोंछ डाला जाए और एक-एक आदमी एक एफिशिएंट मशीन हो जाए। निश्चित ही, तब ज्यादा रोटी मिल सकेगी, ज्यादा अच्छे मकान मिल सकेंगे, ज्यादा अच्छे कपड़े मिल सकेंगे। लेकिन किस कीमत पर? आदमी को खोकर!

एक मकान में आग लगी थी और मकान का मालिक बाहर आंसू बहा रहा था, खड़ा था। पड़ोस के लोग मकान से सामान निकाल रहे थे दौड़ कर। फिर सारा सामान निकाल लिया गया और मकान में अंतिम लपटें पकड़ने लगीं, तब लोगों ने आकर उस मकान मालिक को कहा कि कुछ और भीतर रह गया हो तो हम देख लें जाकर, क्योंकि इसके बाद दोबारा भीतर जाना संभव नहीं होगा, मकान अंतिम लपटों में जा रहा है। उस मकान मालिक ने कहा, मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ता। मेरी स्मृति ही खो गई है। फिर भी तुम भीतर जाकर देख लो, कुछ बचा हो तो ले आओ।

उन्होंने सब तिजोरियां बाहर निकाल ली थीं, उन्होंने मकान के सब खाते-बही बाहर निकाल लिए थे। उन्होंने कपड़े, बर्तन, सब बाहर निकाल लिया था। वे भागे हुए भीतर गए और वहां से छाती पीटते हुए रोते

वापस आए। मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर ही जल गया था। वे बाहर आकर रोने लगे और उन्होंने कहा, हम सामान को बचाने में लग गए और सामान का अकेला मालिक नष्ट हो गया।

क्या हम भी सामान को बचाएंगे या सामान के मालिक को बचाएंगे? क्या हम आदमी को बचाएंगे या रोटी और रोजी और कपड़े को?

जरूरी भी नहीं है कि आदमी को बचाने में रोटी और रोजी न बचाई जा सके। आदमी के साथ भी उसे बचाया जा सकता है। व्यक्तियों को बिना मिटाए समाज को जीवन दिया जा सकता है। भारत के लिए कोई फिलासफी, भारत के लिए कोई जीवन-दर्शन अगर हो सकता है तो वह यह हो सकता है कि भारत आने वाले जगत में व्यक्तियों की गरिमा, इंडिविजुअल्स को बचाने की घोषणा करे। और व्यक्ति कैसे बचाए जा सकें, उनकी स्वतंत्रता, उनके प्राणों की ऊर्जा, उनकी गरिमा और गौरव कैसे बचाया जा सके, उन सबको मशीनों में बदलने से कैसे बचाया जा सके, इसके लिए भारत दुनिया में कमिटमेंट ले, इसके लिए प्रतिबद्ध हो, सारे जगत में उसकी अपनी एक चुनौती, अपना आवाहन हो। और इस आवाहन के इर्द-गिर्द न केवल सारे देश के प्राण जग सकते हैं, बल्कि सारे जगत को भी एक मार्गदर्शन उपलब्ध हो सकता है। यह तीसरी बात मैं कहना चाहता हूं।

और चौथी एक अंतिम बात, और फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। और चौथी बात मुझे यह कहनी है कि भारत को अपने आने वाले भविष्य के निर्माण में, अपने भविष्य के भाग्य और नियति के निर्माण में अपनी पिछली भूलों को ठीक से समझ लेना होगा, ताकि वे फिर से न दोहराई जाएं। भारत ने कुछ बुनियादी भूलें तीन हजार वर्षों में दोहराई हैं। और भारत के विचारशील लोग इतने कमजोर, इतने सुस्त और शक्तिहीन हैं कि उन भूलों के बाबत चिंतन करने की सामर्थ्य और साहस भी नहीं जुटा पाते।

भारत ने एक बड़ी भूल दोहराई है और वह यह कि भारत ने आत्मा-परमात्मा की एकांगी बातें की हैं; शरीर को और पदार्थ को बिल्कुल छोड़ दिया और भूल गया है। एक हजार वर्ष की गुलामी इसका परिणाम थी। आदमी आत्मा भी है और शरीर भी। और जीवन चेतना भी है और पदार्थ भी। हिंदुस्तान ने केवल चेतना और आत्मा की बातों में अपने को भुलाए रखा। जीवन दरिद्र होता गया, शरीर क्षीण होता गया, शक्ति नष्ट होती गई। गुलाम हुए हम। और गुलाम जब हम हो गए, तो हम बड़े होशियार लोग हैं, हम तर्क खोजने में, दुनिया में हमारा कोई सानी नहीं, हमारा कोई मुकाबला नहीं। जब हम गुलाम हो गए तो हमने कहा कि मुसलमानों ने आकर हमको गुलाम कर दिया। जब अंग्रेजों ने हमको पराजित कर लिया और हमारे ऊपर हावी हो गए तो हमने कहा, अंग्रेजों ने हमको गुलाम करके कमजोर कर दिया। सच्चाई उलटी है। जब तक कोई कौम कमजोर नहीं होती तब तक कोई उसे गुलाम कैसे बना सकता है? गुलामी से कोई कभी कमजोर नहीं होता, कमजोर होने से जरूर कौमें गुलाम हो जाती हैं। अंग्रेजों की वजह से और मुसलमानों की वजह से आप कमजोर नहीं हुए। आप कमजोर थे, आप कमजोर हो गए थे, और इसलिए कोई भी आया और आपको गुलाम बनाया जा सका। लेकिन हम बड़े बेशर्म लोग हैं, जिन्होंने हमें गुलाम बनाया, उन्हीं के ऊपर थोप देते हैं कि इन्होंने हमें कमजोर कर दिया। कमजोर हुए बिना कभी कोई गुलाम होता है?

कमजोर हम क्यों हो गए? कमजोर किया हमारे एकांगी धर्मों ने, कमजोर किया हमारे साधु-महात्माओं ने, कमजोर किया हमारे अधूरे संन्यासियों ने। नहीं मुसलमानों ने, नहीं अंग्रेजों ने, नहीं हूणों ने, न मुगलों ने, न तुर्कों ने, किसी ने हमें कमजोर नहीं किया। कमजोरी आई हमारे भीतर से--अधूरेपन से। हमने जीवन में पदार्थ की महत्ता को अंगीकार नहीं किया; शरीर के हम दुश्मन रहे; संपत्ति के, शक्ति के हम विरोधी रहे। जो कौम

संपत्ति, शक्ति और पदार्थ की विरोधी है, फिर वह राम-भजन ही करने के योग्य रह जाएगी, और किसी के योग्य नहीं। फिर वह हरि-कीर्तन कर सकती है, अखंड कर सकती है; लेकिन और कुछ भी उससे नहीं हो सकता है।

और मैं आपको स्मरण दिला दूं, जिनके पास शक्ति नहीं है, उनके पास परमात्मा के पहुंचने के मार्ग भी बंद हो जाते हैं। थोथी बकवास कर सकते हैं वे, लेकिन परमात्मा की उस यात्रा में भी बड़े बलशाली प्राण चाहिए। कमजोर, नपुंसक और ढीले और सुस्त लोगों के वे भी मार्ग नहीं हैं। हिमालय की चोटियां जो नहीं चढ़ सकते, वे परमात्मा की चोटियों को क्या चढ़ सकेंगे!

लेकिन हिंदुस्तान की हिमालय की चोटियां चढ़ने के लिए बाहर से लोग आते हैं। एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए बाहर से लोग आते हैं और हमारे बच्चे अंधेरे में जाने से डरते हैं। हम आत्मा की अमरता की बातें करते हैं और हमसे ज्यादा मौत से डरने वाला जमीन पर कोई भी नहीं है। बड़ी अजीब बात है! यह धर्म अधूरा था। अगर भारत को कोई भविष्य बनाना है तो उसे पूरे धर्म को... पूरे धर्म से मेरा मतलब है जो शरीर को भी स्वीकार करता है और आत्मा को भी। एक दूसरी भूल पश्चिम ने की है। उन्होंने आत्मा को अस्वीकार करके केवल शरीर को मान लिया। एक एक्सट्रीम की भूल उन्होंने की; एक एक्सट्रीम, एक अति की भूल हमने की। जीवन-संगीत ऐसे पैदा नहीं होता।

एक छोटी सी कहानी, और मैं अपनी बात पूरी करूं। बुद्ध के पास एक युवा राजकुमार ने दीक्षा ली। वह अत्यंत भोगी और विलासप्रिय था। बुद्ध के पास दीक्षा लेकर जब वह संन्यासी हुआ तो बुद्ध के दूसरे भिक्षुओं ने कहा--यह इतना विलासी राजकुमार, जो कभी महलों से बाहर नहीं निकला, जिसने कभी खुले आसमान की धूप नहीं सही, जो चलता था रास्तों पर तो फूल और मखमल बिछाए जाते थे, सुनते हैं उसने घर की, मकान की सीढ़ियों पर सहारा लेकर चढ़ने के लिए नग्न स्त्रियों को खड़ा कर रखा था, यह आदमी दीक्षित हो रहा है! यह संन्यासी हो रहा है!

बुद्ध ने कहा, मनुष्य का मन हमेशा एक्सट्रीम में, हमेशा अति में डोलता है। जो भोगी हैं वे योगी हो जाते हैं; जो योगी हैं वे भोगी हो जाते हैं।

अभी श्री पाटिल ने कहा कि पश्चिम में बहुत जोर से धर्म का प्रभाव बढ़ रहा है। चर्च में लोग जा रहे हैं। एक्सट्रीम! उनका दिमाग भोग से ऊब गया, पेंडुलम उनकी घड़ी का धर्म की तरफ जा रहा है। हिंदुस्तान के लोग धर्म से ऊब गए हैं, उनका पेंडुलम भोग की तरफ, सिनेमा की ओर जा रहा है। वहां उनकी भीड़ चर्च के सामने इकट्ठी हो रही है। यहां की भीड़ सिनेमा के पास इकट्ठी हो रही है; वह पृथ्वीराज जी बैठे हैं, वे बता सकेंगे। मनुष्य का जो मन है, बीमार मन, वह हमेशा एक्सट्रीम में जाता है। ज्यादा खाने वाले लोग उपवास करने लगते हैं। जिनके चित्त में स्त्रियों के चित्र बहुत चलते हैं वे ब्रह्मचारी हो जाते हैं। जीवन अति में चलता है। और अति भूल है, एक्सट्रीम भूल है।

बुद्ध ने कहा, वह अति पर जा रहा है, लेकिन देखो! और भिक्षुओं ने देखा कि यही हुआ। वह जिस दिन से राजकुमार श्रोण दीक्षित हुआ, दूसरे भिक्षु राजपथ पर चलते थे, लेकिन वह कांटों वाली पगडंडी पर चलता था ताकि पैरों में कांटे छिद जाएं और लहूलुहान हो जाएं। वह त्यागी-तपस्वी, वह ठीक रास्ते पर कैसे चल सकता है! कल तक वह मखमलों पर चलता था, अब वह कांटों पर चलता था। बीच का कोई रास्ता था ही नहीं। दूसरे भिक्षु एक बार भोजन करते, वह एक दिन भोजन करता और एक दिन निराहार रहता। दूसरे भिक्षु वृक्षों की छाया में बैठते, वह भरी दोपहरी में धूप में खड़ा रहता। दूसरे भिक्षु वस्त्र ओढ़ते सर्दी आती, लेकिन वह सर्दी में भी नग्न पड़ा रहता। उसने सारे शरीर को एक वर्ष में सुखा कर कांटा बना लिया। वह सुंदर राजकुमार, उसकी

सुंदर काया सूख कर काली पड़ गई, कुरूप हो गई। उसके पैरों में छाले पड़ गए। उसके पैरों में लहू बहता रहता; मवाद पड़ गई; फोड़े पड़ गए।

बुद्ध एक वर्ष बाद उस राजकुमार के पास गए और कहा, राजकुमार श्रोण, मैंने सुना है कि जब तू भिक्षु नहीं हुआ था तो सितार बजाने में, वीणा बजाने में तेरी बड़ी कुशलता थी। क्या यह सच है? उस श्रोण ने कहा, हां, यह सच है। लोग कहते थे मेरे जैसा वीणा बजाने वाला कोई कुशल वादक नहीं है। तो बुद्ध ने कहा, मैं एक प्रश्न उलझ गया, उसे पूछने आया हूं तुझसे। वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा होता है? उस श्रोण ने कहा कि नहीं, तार ढीले होंगे तो संगीत कैसे पैदा होगा? तार ढीले होंगे तो टंकार ही पैदा नहीं हो सकती तो संगीत कैसे पैदा होगा! तो बुद्ध ने कहा, और अगर तार बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होता है? उस श्रोण ने कहा कि नहीं, अगर तार बहुत कसे हों तो वे टूट जाते हैं, फिर भी संगीत पैदा नहीं होता। तो बुद्ध ने कहा, संगीत पैदा कब होता है? संगीत के पैदा होने का राज और रहस्य क्या है? तो उस श्रोण ने कहा, वीणा के तारों की एक ऐसी दशा भी है जब न तो हम कह सकते कि वे ढीले हैं और न कह सकते कि वे कसे हैं। उस मध्य में, उस संतुलन में, उस समता में, उस बिंदु पर संगीत का जन्म होता है। तो बुद्ध ने कहा, मैं जाता हूं। इतना ही कहने आया था कि जो वीणा में संगीत पैदा होने का नियम है, जीवन की वीणा पर भी पैदा होने का वही नियम है। जीवन की वीणा से भी संगीत वहीं पैदा होता है जब न तो तार आत्मा की तरफ बहुत कसे होते हैं और न शरीर की तरफ बहुत ढीले होते हैं।

भारत ने शरीर के विरोध में आत्मा की तरफ तारों को कस लिया। हमारी वीणा से संगीत उठना हजारों साल हुए बंद हो चुका है। पश्चिम ने जीवन की वीणा के तार शरीर की तरफ बिल्कुल ढीले छोड़ दिए, उन पर टंकार भी पैदा नहीं होती, उनसे भी संगीत उठना बंद हो गया है। क्या हम जीवन की वीणा पर संगीत पैदा करना चाहते हैं? तो हमें पश्चिम और पूरब की दोनों भूलों से भारत के भविष्य को बचाना है। पूरब के अतीत से और पश्चिम के वर्तमान से, दोनों से बचा लेना है, दोनों अतियों से बचा लेना है।

अगर यह हो सके तो एक सौभाग्यशाली देश का जन्म हो सकता है। और हो सकता है यह भी कि दुनिया में भारत इतनी तीव्रता से, इतनी ऊर्जा से उठे कि जिसका कोई हिसाब हम न लगा सकें। क्योंकि जो जमीन बहुत दिनों तक परती पड़ी रहती है, जिस जमीन पर बहुत दिनों तक किसान फसल नहीं बोता, उस पर अगर बीज डाले जाएं तो दूसरे किसानों की फसलों से उस पर हजार गुनी ज्यादा फसल आती है। डेढ़-दो हजार वर्षों से भारत की चेतना की भूमि परती पड़ी है, उस पर कोई फसल नहीं बोई गई। यह हो सकता है कि अगर हमने कुशलता से, समझदारी से, वि.जडम से, बुद्धिमत्ता से काम लिया, तो यह हो सकता है कि दो हजार वर्ष का दुर्भाग्य हमारे वरदान में फलित हो जाए और हमारे देश की चेतना और आत्मा की जो जमीन परती पड़ी है उस पर हम जीवन की कोई सुंदर फसलें काट सकें। यह हो सकता है।

लेकिन यह आसमान से नहीं होगा, और किसी भगवान से पूजा और प्रार्थना करने से नहीं होगा, और किन्हीं शास्त्रों और मंदिरों के सामने सिर टेकने से नहीं होगा। बहुत हो चुकीं ये सारी बातें और इनसे कुछ भी नहीं हुआ है। यह होगा, अगर हम कुछ करेंगे। यह हमारे संकल्प और हमारे विल और हमारे भीतर सोई हुई शक्ति के जागने से हो सकता है। भारत वही बनेगा जो हम उसे बना सकते हैं।

तो मैं निवेदन करता हूं कि आने वाले भविष्य के लिए भारत के सृजनात्मक एक नये रूप, एक नये जीवन को देने में मित्र बनें, सहयोगी बनें। एक बहुत बड़ा जिएमा हम सबके ऊपर है। और अगर एक-एक व्यक्ति ने यह जिएमा उठा लिया तो कोई भी कारण नहीं है कि चाहे रात कितनी भी अंधेरी हो, लेकिन उस अंधेरी रात के

बाद सुबह का सूरज उग सकता है। देश पर बड़ी अंधेरी रात है, लेकिन सुबह का सूरज भी उग सकता है। लेकिन वह सूरज अपने आप नहीं उग जाएगा, उसे हमें उगाना है। ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं। मुझे राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मैं तटस्थ भी नहीं हो सकता हूं--कि राजनीतिज्ञ कुछ भी किए चले जाएं और हम निरपेक्ष और तटस्थ खड़े रहें। हमें कुछ कहना, जानना, सोचना ही होगा; मुल्क के लिए चिंतन करना ही होगा। अन्यथा मुल्क भटक जाएगा और हम सब उसके लिए एक से अपराधी सिद्ध होंगे। राजनीतिज्ञ ही नहीं, साधु और संन्यासी भी, जो चुपचाप खड़े रहेंगे तो अपराधी सिद्ध होंगे। और उनका अपराध राजनीतिज्ञों के अपराध से बड़ा होगा। उनका अपराध बहुत पुराना है। असल में, मनुष्य-जाति को जिन लोगों ने सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया है, वे वे अच्छे लोग हैं जो राजनीति की तरफ पीठ करके खड़े हो जाते हैं, वे बुरे लोगों को मौका देते हैं कि वे राजनीति में प्रविष्ट हो जाएं।

बर्ट्रेंड रसेल ने बहुत दिन पहले एक वक्तव्य दिया था। बहुत अदभुत था। उस वक्तव्य को उसने शीर्षक दिया थाः दि हार्म दैट गुड मेन डू। वह नुकसान जो अच्छे लोग करते हैं। अच्छे लोग कौन सा नुकसान करते हैं? अच्छे लोग तटस्थ हो जाते हैं। अच्छे लोग निरपेक्ष हो जाते हैं। अच्छे लोग कहते हैं, हमें कोई मतलब नहीं। अच्छे लोग कहते हैं, ये संसार की बातें हैं, हम संन्यासी हैं। अच्छे लोग कहते हैं, यह बंबई है, हम तो जंगल जाने वाले हैं। अच्छे लोग बुरे लोगों के लिए जगह खाली करते हैं। और फिर बुरे लोग जो करते हैं उससे यह दुनिया हमारे सामने है जो पैदा हो गई है।

मैं अच्छे आदमियों को आमंत्रण देता हूं कि बुरे आदमियों को किसी भी जगह पर खाली जगह देनी आपका अपराध है। इस अपराध से प्रत्येक को बचना है। और अगर हम बच सकते हैं तो निराश होने का कोई भी कारण नहीं।

मेरी बातों को इतनी शांति, इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समुंद समाना बुंद में

तीसरा प्रवचन

भारत का दुर्भाग्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

भारत के दुर्भाग्य की कथा बहुत लंबी है। और जैसा कि लोग साधारणतः समझते हैं कि हमें ज्ञात है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है, वह बात बिल्कुल ही गलत है। हमें बिल्कुल भी ज्ञात नहीं है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है। दुर्भाग्य के जो फल और परिणाम हुए हैं वे हमें ज्ञात हैं। लेकिन किन जड़ों के कारण, किन रूट्स के कारण भारत का सारा जीवन विषाक्त, असफल और उदास हो गया है? वे कौन से बुनियादी कारण हैं जिनके कारण भारत का जीवन-रस सूख गया है, भारत का बड़ा वृक्ष धीरे-धीरे कुएहला गया, उस पर फूल-फल आने बंद हो गए हैं, भारत की प्रतिभा पूरी की पूरी जड़, अवरुद्ध हो गई है? वे कौन से कारण हैं जिनसे यह हुआ है?

निश्चित ही, उन कारणों को हम समझ लें तो उन्हें बदला भी जा सकता है। सिर्फ वे ही कारण कभी नहीं बदले जा सकते जिनका हमें कोई पता ही न हो। बीमारी मिटानी उतनी कठिन नहीं है जितना कठिन निदान, डाइग्नोसिस है। एक बार ठीक से पता चल जाए कि बीमारी क्या है, तो बीमारी के मिटाने के उपाय निश्चित ही खोजे जा सकते हैं। लेकिन अगर यही पता न चले कि बीमारी क्या है और कहां है, तो इलाज से बीमारी ठीक तो नहीं होती, अंधे इलाज से बीमारी और बढ़ती चली जाती है। बीमारी से भी अनेक बार औषधि ज्यादा खतरनाक हो जाती है, अगर बीमारी का कोई पता न हो। बीमारियां कम लोगों को मारती हैं, वैद्य ज्यादा लोगों को मार डालते हैं, अगर इस बात का ठीक पता न हो कि बीमारी क्या है।

और मुझे दिखाई पड़ता है कि हमें कुछ भी पता नहीं कि हमारी बीमारी क्या है, हमारे दुर्भाग्य का मूल आधार क्या है। यह तो दिखाई पड़ता है कि दुर्भाग्य घटित हो गया है। यह तो दिखाई पड़ता है कि अंधकार जीवन पर छा गया है। एक उदासी, एक निराशा, एक हताशा, एक बोझिलपन है, और ऐसा कि जैसे हमने सब खो दिया है और आगे कुछ भी पाने की उएमीद भी खो दी है। वह दिखाई पड़ता है। लेकिन यह क्यों हो गया है?

बहुत से लोग हैं जो इसका निदान करते हैं। कोई कहेगा कि पश्चिम के प्रभाव ने भारत को नीचे गिराया है--चरित्र में, आशा में, आत्मा में।

गलत कहते हैं वे लोग। गलत इसलिए कहते हैं कि यह बात ध्यान रहे कि जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है वैसे ही प्रभाव भी ऊपर की तरफ नहीं बहता, हमेशा नीचे की तरफ बहता है। अगर एक बुरे और अच्छे आदमी का मिलना हो तो जिसकी ऊंचाई ज्यादा होगी, प्रभाव उसकी तरफ से दूसरे आदमी की तरफ बहेगा। अगर अच्छे आदमी की ऊंचाई ज्यादा होगी तो बुरा आदमी परिवर्तित हो जाएगा और अगर अच्छे आदमी की सिर्फ बातचीत होगी और जीवन में कोई गहराई न होगी तो बुरा आदमी प्रभावी हो जाएगा और प्रभाव बुरे आदमी से अच्छे आदमी की तरफ बहने शुरू हो जाएंगे।

पश्चिम से भारत प्रभावित हुआ है, इसका कारण यह नहीं है कि पश्चिम ने भारत को प्रभावित कर दिया है। इसका कारण यह है कि पश्चिम की, जिसको हम अनीति कहते हैं, वह अनीति भी हमारी नीति से ज्यादा बलवान और शक्तिशाली सिद्ध हुई है। पश्चिम की अनैतिकता की भी एक ऊंचाई है, हमारी नैतिकता की भी उतनी ऊंचाई नहीं है। पश्चिम के भौतिकवाद की भी एक सामर्थ्य है, हमारे अध्यात्मवाद में उतनी भी सामर्थ्य

नहीं है, उससे भी ज्यादा निर्वीर्य और नपुंसक सिद्ध हुआ है। इसलिए प्रभाव उनकी तरफ से हमारी तरफ बहता है। इसमें दोष उनका नहीं है।

पहाड़ पर पानी गिरता है, लेकिन गिरा हुआ पानी भी पहाड़ से उतर जाता है नीचे, क्योंकि पहाड़ की ऊंचाइयां इतनी हैं। और यह हो सकता है कि एक झील में पानी भी न गिरे, एक गड्ढे में पानी भी न गिरे, लेकिन पहाड़ पर गिरा हुआ पानी बह कर थोड़ी देर में गड्ढे में भर जाएगा। और गड्ढा यह कह सकता है कि पानी मुझमें भर कर मुझे भ्रष्ट कर रहा है। लेकिन गड्ढे को जानना चाहिए कि वह गड्ढा है, इसलिए पानी भर रहा है। वहां खाली जगह है, वहां नीचाई है, इसलिए प्रभाव चारों तरफ से दौड़ते हैं और भर जाते हैं।

भारत की आत्मा रिक्त और खाली है, इसलिए सारी दुनिया उसे कभी भी प्रभावित कर सकती है। जिनकी आत्माएं भरी हैं, समृद्ध हैं, वे प्रभावित नहीं होते, बल्कि प्रभावित करते हैं। यह दोष देने से कुछ भी न होगा कि पश्चिम की शिक्षा और पश्चिम की संस्कृति हमें विकृत कर रही है। यह ऐसा ही है जैसे गड्ढा कहे कि पानी भर कर मुझे नष्ट कर रहा है। गड्ढे को जानना चाहिए कि मैं गड्ढा हूं, इसलिए पानी मेरी तरफ दौड़ता है। अगर मैं पहाड़ का शिखर होता तो पानी मेरी तरफ नहीं दौड़ सकता था।

लेकिन हम गाली देकर तृप्त हो जाते हैं और सोचते हैं हमने कोई कारण खोज लिया। हम सोचते हैं हमने पश्चिम को दोष देकर कोई कारण खोज लिया।

हम बिल्कुल नहीं देख पाए कि हम गड्ढे की तरह हैं, कारण वहां है।

कुछ लोग हैं जो कहेंगे कि हजार साल से भारत गुलाम था, इसलिए दीन-हीन और दरिद्र और दुखी और पीड़ित हो गया है।

वे भी गलत कहते हैं। उनकी आंखें भी बहुत गहरी नहीं हैं किसी देश की आत्मा को देखने के लिए। गुलामी से कोई मुल्क पतित नहीं होता, पतित होने से कोई मुल्क गुलाम हो सकता है। गुलामी से कोई कैसे पतित हो सकता है? और बिना पतित हुए कोई गुलाम कैसे हो सकता है? एक कौम को मरने की हमेशा स्वतंत्रता है। लेकिन जो लोग मरने के मुकाबले में गुलामी को चुन लेते हैं वे ही केवल गुलाम हो सकते हैं।

लेकिन हम मृत्यु से इतने भयभीत लोग हैं कि हम कैसा भी दीन-हीन, दलित, पैरों में पड़ा हुआ जीवन स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन मृत्यु को वरण करने की हिएमत हमने बहुत पहले खो दी है। हम इसलिए नहीं नीचे गिर गए हैं कि हम हजार साल गुलाम रहे। हम नीचे गिरे, इसलिए हमें हजार साल गुलाम रहना पड़ा है।

और आज भी हमारी कोई ऊंचाई नहीं उठ गई है। कोई स्वतंत्र होने से ऊंचा नहीं उठ जाता है। मात्र स्वतंत्र होने से कोई ऊपर नहीं उठ जाता है। बल्कि हालतें उलटी दिखाई पड़ती हैं। गुलाम हम जैसे थे तो जैसे एक गुलामी से बंधे थे और हमारे चरित्र को चारों तरफ से दीवालें रोके हुए थीं। स्वतंत्र होकर हमारे चरित्र में और पतन आया है, ऊंचाई नहीं उठी है। जैसे स्वतंत्रता ने हमारे चरित्र में जो छिपे हुए रोग थे उन सबको मुक्त कर दिया है और स्वतंत्र कर दिया है। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारी सारी बीमारियां स्वतंत्र हो गई हैं। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारी सारी कमजोरियां स्वतंत्र हो गई हैं। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारे भीतर जितने भी रोग के कीटाणु थे वे सब स्वतंत्र हो गए हैं। और देश गुलामी की हालत से भी बदतर हालतों में बीस वर्षों में नीचे उतर गया है।

कोई कहेगा कि हम दरिद्र हैं, दीन हैं, इसलिए सारे देश में, उदासी, थकावट, बेचैनी, घबराहट, अनैतिकता, यह सब है।

लेकिन नहीं, इस बात को भी मैं मानने को राजी नहीं हूं। सच्चाई फिर भी उलटी है। सच्चाई यह नहीं है कि हम गरीब हैं इसलिए हम चरित्रहीन हैं; हम चरित्रहीन हैं इसलिए हम गरीब हैं। चरित्र एक समृद्धि लाता है; चरित्र एक श्रम लाता है; चरित्र एक संकल्प पैदा करता है; चरित्र कुछ करने की हिएमत, बल देता है। वह बल हमारे भीतर नहीं है, इसलिए हम दरिद्र हैं, इसलिए हम दीन हैं।

ये जो ऊपर से दिखाई पड़ने वाले कारण हैं, ये कोई भी कारण नहीं हैं। और जो इन पर अटका रहेगा... और भारत के सारे नेता, सारे धर्मगुरु और वे सारे हकीम, जो नीम-हकीम ही हैं, उन सारे नीम-हकीमों का इन्हीं चीजों के ऊपर सारा आधार है। और इसलिए वे कोई भी फर्क नहीं ला सकते।

मैं एक छोटी सी घटना से अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि क्या है दुर्भाग्य का मूल आधार। स्वामी राम जापान गए हुए थे। वे जापान के सम्राट के महल का बगीचा भी देखने गए थे। उस बगीचे में उन्होंने एक बड़ी अदभुत बात देखी। वे बहुत हैरान हुए। चिनार के वृक्ष थे, जिन्हें आकाश में सौ फीट, डेढ़ सौ फीट ऊपर उठ जाना चाहिए था। वे एक-एक बीते के, एक-एक बालिश्त के थे। और उनकी उम्र डेढ़-डेढ़ सौ, दो-दो सौ वर्ष थी। रामतीर्थ बहुत हैरान हुए कि दो सौ वर्षों का चिनार का वृक्ष और एक बालिश्त, एक बीते की ऊंचाई! यह कैसे संभव हो सका है? लेकिन उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ सका। जो माली उन्हें दिखा रहा था वह हंसने लगा। उसने कहा, मालूम होता है आपको वृक्षों के संबंध में कुछ भी पता नहीं। रामतीर्थ ने कहा, मैं हैरान हूं कि यह वृक्ष डेढ़ सौ वर्ष का है, इसे तो आकाश छू लेना था! यह अभी एक बालिश्त का कैसे है? किस तरकीब से? उस माली ने कहा, आप वृक्ष को देखते हैं, माली जड़ों को देखता है।

उसने गमले को उठा कर बताया। उसने कहा कि हम इस वृक्ष की जड़ों को नीचे नहीं बढ़ने देते, उन्हें नीचे से काटते चले जाते हैं। जड़ें नीचे छोटी रह जाती हैं, वृक्ष ऊपर नहीं उठ सकता है। आकाश में उठने के लिए पाताल तक जड़ों का जाना जरूरी है। जड़ें जितनी गहरी जाती हैं, उतना ही वृक्ष ऊपर उठता है। वृक्ष के प्राण ऊपर उठते हुए वृक्ष में नहीं होते, वृक्ष के मूलप्राण होते हैं उन जड़ों में जो दिखाई भी नहीं पड़तीं। हम जड़ों को काटते रहते हैं, नीचे जड़ें छोटी रखते हैं, वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ पाता। वृक्ष ऊपर कभी नहीं बढ़ सकेगा। वृक्ष के प्राण जड़ों में होते हैं।

किसी जाति के प्राण कहां होते हैं, कभी पूछा? किसी जाति के प्राण कहां होते हैं? और कोई जाति अगर बौनी रह जाए, कोई जाति अगर ठिगनी रह जाए आत्मा के जगत में, चरित्र के जगत में, तो उसके प्राण कहां हैं, उसकी जड़ें कहां हैं? यह पूछना जरूरी है कि जड़ें जरूर नीचे से कहीं काट दी गई हैं या काटी जा रही हैं और इसलिए व्यक्तित्व ऊपर नहीं प्रकट हो पा रहा है। हम ऊपर से पूरे वृक्ष को भी काट दें तो कुछ नुकसान नहीं होता; अगर जड़ें साबित हों तो नया वृक्ष फिर पैदा हो जाएगा। लेकिन जड़ें हम नीचे से काट दें, वृक्ष पूरा का पूरा साबित हो, तो भी मर गया। दिन, दो दिन की बात है, वृक्ष कुएहला जाएगा। और शाखाएं ढल जाएंगी और मृत्यु पास आने लगेगी। वृक्ष के प्राण होते हैं जड़ों में। जाति के प्राण कहां होते हैं? राष्ट्रों के प्राण कहां होते हैं? कभी सोचा है कि कहां होते हैं प्राण? क्योंकि जहां होते हैं प्राण, वहीं से बीमारियां उठती हैं और फैलती हैं। जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, वृक्ष दिखाई पड़ता है। किसी जाति, किसी देश, किसी समाज की जड़ें भी दिखाई नहीं पड़तीं। मनुष्य के जीवन में ऐसी कौन सी बात है जो दिखाई नहीं पड़ती और है?

शायद आपने कभी उस तरफ खोजबीन न की हो। अगर हम मनुष्य के व्यक्तित्व को खोजें तो दो बात दिखाई पड़ेंगी। आचरण दिखाई पड़ता है, व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है; विचार दिखाई नहीं पड़ते हैं, विचार

अदृश्य हैं। आचरण की जड़ें विचार में होती हैं और अगर विचार की जड़ों को व्यवस्था से काट दिया गया हो तो आचरण अपने आप पंगु हो जाएगा, आगे नहीं बढ़ सकेगा।

भारत के विचार की जड़ें काटी गई हैं। और जिन्हें हम अच्छे और भले लोग कहते हैं और जिनके चरण पकड़ कर हम सोचते हैं कि जगत का उद्धार और इस जीवन की सुफलता हो जाएगी, उन्हीं लोगों ने काट दी हैं। विचार के तल पर भारत ने आत्मघात कर लिया है। और इसलिए आचरण के तल पर वृक्ष सूखता चला गया है और जीवन के तल पर हम उदास, थके हुए और हारे हुए होते चले गए हैं।

मैं ऐसी तीन जड़ों की बात आज करना चाहता हूं जो विचार के तल पर भारत के दुर्भाग्य का मूल आधार हैं और यह भी कह देना चाहता हूं कि जब तक उन तीन जड़ों को हम नहीं बदल लेते हैं तब तक भारत कभी भी दुर्भाग्य से मुक्त नहीं हो सकता। आज नहीं, हजारों साल तक भी मुक्त नहीं हो सकता। लाख उपाय कर लें हम ऊपर-ऊपर वृक्ष को सएहालने के, हमारे सब उपाय थोथी सजावट साबित होंगे। वृक्ष में प्राण नहीं आ सकेंगे, जीवन सजीव नहीं हो सकेगा, प्रतिभा जाग नहीं सकेगी। शायद मेरी बात अजीब लगेगी, क्योंकि वह जो नहीं दिखाई पड़ता उसके संबंध में बात करनी थोड़ी मुश्किल होती है।

पहली जड़--भारत के विचार के केंद्रों में जो आज तक भारत का कंसेप्ट ऑफ टाइम है, समय की जो धारणा है, वह गलत है। उस समय की गलत धारणा के कारण हमारे जीवन का इतना अहित हुआ है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

हमारी समय की धारणा क्या है? हमारा टाइम कंसेप्ट क्या है?

भारत के समय की धारण ऐसी है जैसे सुबह सूरज निकलता है, सांझ डूब जाता है; फिर दूसरे दिन सुबह सूरज निकलता है, फिर सांझ डूब जाता है; एक वृत्तीय, एक सर्कुलर, एक चक्र में सूरज घूमता है। भारत को बहुत पहले यह अनुभव हुआ कि सूरज एक चक्र में घूमता है; फिर वापस वहीं लौट आता है, फिर वापस वहीं लौट आता है, एक रिपीटेड सर्किल है, एक वृत्ताकार परिभ्रमण है। ऋतुएं--वर्षा आती है, फिर दूसरी ऋतु आती है, फिर तीसरी ऋतु आती है, फिर वर्षा आ जाती है। ऋतुएं भी एक परिभ्रमण करती हैं, एक चक्र में घूमती हैं। आदमी पैदा होता है, बच्चा, जवान, बूढ़ा, फिर मौत, फिर बचपन, फिर जवानी, फिर मौत। जीवन भी एक चक्र में घूमता है।

जीवन के इस चक्रीय अनुभव के आधार पर भारत ने यह सोचा कि समय भी एक चक्र में घूमता है, सर्कुलर है। जो समय बीत गया वह फिर आ जाएगा। समय एक वृत्त में घूमता है बार-बार। जैसे हम एक चक्के को घुमाएं तो जो स्पोक अभी ऊपर है वह थोड़ी देर बाद नीचे चला आएगा, फिर ऊपर आएगा, फिर नीचे जाएगा, फिर ऊपर आएगा, फिर नीचे जाएगा। समय एक चक्र में घूमता है, ऐसी भारत ने धारणा बनाई। इस धारणा ने भारत के प्राण ले लिए।

यह धारणा बुनियादी रूप से गलत है। समय चक्र की तरह नहीं घूमता है, समय सर्कुलर नहीं है, समय लीनियर है। समय एक सीधी रेखा में जाता है और वापस कभी नहीं लौटता। जो हो गया, वह फिर कभी नहीं होगा। समय एक सीधी यात्रा है जिसमें लौटने का कोई भी उपाय नहीं है। समय परिभ्रमण नहीं कर रहा है।

आप कहेंगे, समय की धारणा से भारत के दुर्भाग्य का क्या संबंध हो सकता है?

गहरे संबंध हैं। सोचेंगे तो दिखाई पड़ेंगे। जो कौम ऐसा सोचती है कि समय एक चक्र में परिभ्रमण कर रहा है उस कौम का पुरुषार्थ नष्ट हो जाएगा। उस कौम को कुछ करने जैसा है, यह धारणा भी नष्ट हो जाएगी। चीजें अपने आप घूम कर अपनी जगह पर आ जाती हैं और घूमती रहती हैं, हमें कुछ भी नहीं करना है। नई

चीजें होती ही नहीं, पुरानी चीजें बार-बार घूमती रहती हैं। कलियुग है, फिर आएगा सतयुग, फिर आएगा कलियुग और घूमता रहेगा फिर। चौबीस तीर्थंकर होंगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा, फिर चौबीस तीर्थंकर होंगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा, फिर चौबीस तीर्थंकर होंगे, कल्प घूमता रहेगा चके की तरह। जो हो चुका है वह हजारों बार हो चुका है और आगे भी हजारों बार होगा। आपके करने और न करने का सवाल नहीं है, समय के चक्र पर आप घूम रहे हैं और घूमते रहेंगे।

जब एक मुल्क के प्राणों में यह धारणा बैठ गई कि हमारे करने से कुछ होने वाला नहीं है; सूरज निकलता है, डूब जाता है; वर्षा आती है, निकल जाती है; गरमी आती है, फिर वर्षा आती है, फिर गरमी आती है; यह चक्र में घूमता रहता है समय, हमारे करने जैसा कुछ भी नहीं है। हम दर्शक की भांति हैं, घूमते हुए समय को देखने वाले लोग। समय की इस परिभ्रमण की धारणा ने भारत को दर्शक बना दिया, भोक्ता नहीं, कर्ता नहीं। और दर्शकों की क्या स्थिति हो सकती है जीवन के मार्ग पर? जिंदगी कोई तमाशबीनी नहीं है कि कोई तमाशे की तरह हम देख रहे हैं कहीं खड़े होकर। जिंदगी जीनी पड़ती है!

लेकिन जीने की धारणा तभी पैदा होती है जब हमें यह विश्वास हो कि कुछ नया पैदा किया जा सकता है जो कभी नहीं था। हम नये को निर्मित कर सकते हैं, हमारे हाथ में है भविष्य। भविष्य पहले से निर्धारित नहीं है, निर्धारित होना है, और हम निर्धारित करेंगे। हमें निर्धारित करना है भविष्य को, आने वाला कल हमारा निर्माण होगा, किसी अनिवार्य व्हील ऑफ हिस्टरी, इतिहास के चक्र का घूम जाना नहीं।

लेकिन भारत दस हजार वर्षों से इस बात को माने बैठा है कि इतिहास का चक्र घूम रहा है। इसीलिए भारत ने इतिहास की किताबें नहीं लिखीं। सारी दुनिया में इतिहास की किताबें हैं, भारत के पास इतिहास की कोई किताब नहीं है। क्यों? क्योंकि जो चीज बार-बार घूम कर होनी है उसका इतिहास भी क्या लिखना! भारत के पास कोई इतिहास नहीं है। पश्चिम ने इतिहास लिखा, क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि जो भी एक घटना एक बार घट गई है, अब कभी रिपीट नहीं होगी। उसे स्मरण रख लेना जरूरी है, उसका इतिहास होना जरूरी है। अब वह कभी भी वापस होने को नहीं। एक-एक ईवेंट हिस्टॉरिक है, एक-एक घटना ऐतिहासिक है, क्योंकि वह अकेली और अनूठी है। इसलिए पश्चिम ने इतिहास लिखा। उनके इतिहास में एक-एक मिनट और एक-एक घड़ी का उन्होंने हिसाब रखा। हमारा कोई इतिहास नहीं है। हम यह भी नहीं बता सकते कि राम कब हुए। हम यह भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि राम हुए भी कि नहीं हुए। हमें रखने की कोई जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि राम हर कल्प में होते हैं, करोड़ों बार हो चुके हैं, अरबों बार हो चुके हैं, अरबों बार फिर भी होंगे। यह राम की कथा बहुत बार होती रहेगी। इसको क्या याद रखने की जरूरत है! इसका हिसाब रखने की क्या जरूरत है!

इतिहास हम नहीं निर्माण किए, यह आकस्मिक नहीं है। ऐसा नहीं था कि हमें लिखना नहीं आता था। दुनिया में सबसे पहले लिखने की ईजाद हमने कर ली थी। ऐसा भी नहीं है कि हमें सुनिश्चित धारणा नहीं थी चीजों को लिखने की। जो हमने लिखना चाहा वह हमने बहुत सुनिश्चित लिखा है। लेकिन हमें यह ख्याल ही पैदा नहीं हुआ, कि जो चीज बार-बार दोहरती है उसे स्मरण रखने की जरूरत क्या है? वह तो दोहरती रहेगी। इसलिए इतिहास हमने नहीं लिखा।

और जब हमें यह ख्याल हो गया कि हर चीज पुनरुक्ति है, तो जीवन से रस चला गया। जीवन में रस होता है, जब हर चीज नई हो। जब हर चीज पुनरुक्ति है, तो जीवन मोनोटोनस हो गया, जीवन एक उदास, एक ऊब हो गई, एक बोर्डम हो गई कि ठीक है, यह होता रहा है, यह होता रहेगा। यह चलता रहेगा, यह

चलता रहा है, इसमें कुछ किया नहीं जा सकता, नये की कोई संभावना नहीं है। हम यह कहते रहे हैं कि आकाश के नीचे सब पुराना है, नया कुछ भी नहीं हो सकता। जब कि सच्चाई उलटी है। आकाश के नीचे सब नया है, पुराना कुछ भी नहीं है। कल जो सूरज उगा था वह सूरज भी आज वही नहीं है जो आज उगा है। कल जिस गंगा के किनारे आप गए थे वह गंगा आज वही नहीं है, बहुत पानी बह चुका है, नई गंगा वहां बह रही है, सिर्फ आंखों का भ्रम है कि लगता है कि वही गंगा है। आप जो कल थे वह आज नहीं हैं। जिंदगी रोज नई है। और अगर जिंदगी रोज नई है तो जिंदगी में रस हो सकता है। जिंदगी अगर वही है--पुरानी, पुरानी--तो जिंदगी में रस नहीं हो सकता।

भारत विरस हो गया, नीरस हो गया हमारा प्राण, समय की धारणा में। और अगर जिंदगी नई हो ही नहीं सकती तो हमारे पास करने को क्या बचता है? पुरुषार्थ क्या है? हम क्या करें? हमारे पास करने को कुछ भी नहीं बचता है। एक इनएविटेबल व्हील है जो घूम रहा है; एक अनिवार्य चक्र है जो घूम रहा है। हमें करने को क्या है? जब हमें करने को कुछ भी नहीं है तो धीरे-धीरे करने की जो सामर्थ्य थी, जो कि हम कुछ करते तो जागती और विकसित होती, वह सो गई और समाप्त हो गई।

अगर एक आदमी को यह पता चल जाए कि मुझे चलने की कोई जरूरत नहीं है, तो क्या आप समझते हैं कि दो-चार-पांच साल वह न चले तो उसकी चलने की क्षमता बचेगी? उसकी चलने की क्षमता खो जाएगी। उसके पैर चलने का काम ही भूल जाएंगे। एक आदमी दो-चार-पांच साल देखना बंद कर दे तो आंखें शून्य हो जाएंगी, देखने की क्षमता विलीन हो जाएगी। हम जिस अंग का उपयोग करते हैं वही अंग विकसित होता है। हमने पुरुषार्थ का उपयोग नहीं किया, इसलिए पुरुषार्थ विकसित नहीं हुआ। इसलिए दरिद्र हैं; इसलिए गुलाम थे; इसलिए दरिद्र रहेंगे और किसी भी दिन गुलाम हो सकते हैं, क्योंकि जिस मुल्क के भाव में पुरुषार्थ की भावना नहीं है कि हम कुछ कर सकते हैं, उस मुल्क का सौभाग्य उदय नहीं हो सकता है।

इस समय की इस धारणा ने हमें भाग्यवादी बनाया, फेटेलिस्ट बनाया। इसलिए अगर गुलामी आई तो हमने कहा यह भाग्य है। अगर दरिद्रता आई तो हमने कहा यह भाग्य है। अगर उम्र हमारी कम हो गई और हमारे बच्चे कम उम्र में मरे तो हमने कहा यह भाग्य है। हमने प्रत्येक चीज की एक व्याख्या खोज ली कि यह भाग्य है, इसमें कुछ किया नहीं जा सकता। भाग्य का मतलब क्या है? भाग्य का मतलब कि यह ऐसी घटना है जिसमें हम कुछ भी नहीं कर सकते। भाग्य का और कोई मतलब नहीं है। भाग्य का मतलब है कि हम करने से अपने को छुटकारा चाहते हैं, इसमें हम कुछ कर नहीं सकते हैं। ऐसा हुआ, ऐसा होना था, ऐसा होगा। फिर हम कहां खड़े रह जाते हैं?

इस समय की चक्रीय दृष्टि ने हमें भाग्यवादी बना दिया और भाग्यवादी कोई भी देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता है। समृद्धि के लिए चाहिए श्रम, समृद्धि के लिए चाहिए संघर्ष। समृद्धि के लिए चाहिए नये आकाश, नये मार्ग, नये शिखर छूने की कामना, कल्पना, सपने। वे सब हम से छिन गए। जो हो रहा है उसे सह लेना है। कुछ करने को हमारे सामने नहीं रह गया।

इसलिए जब देश गुलाम हुआ तो हमने कहा कि होगा भाग्य। बिहार में अकाल पड़ा तो गांधी जैसे अच्छे आदमी ने भी यह कहा कि यह बिहार के लोगों के पापों का फल है। गांधी के भीतर से भारत की वही पुरानी मूढ़ता हजारों साल की बोल रही है। गांधी को ख्याल भी नहीं कि हम यह क्या कह रहे हैं! बिहार के लोग अकाल में भूखे मरते हैं तो यह उनके पापों का फल है। मतलब हमारी इस संबंध में कुछ करने की सामर्थ्य खतम हो गई। वे अपने पापों का फल भोग रहे हैं और पापों का फल भोगना पड़ेगा। हम इसमें क्या कर सकते हैं! अभी

गुजरात में बाढ़ आई और लोग बह गए और मर गए। उनके पापों का फल है। हम क्या कर सकते हैं! अपने-अपने पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है।

एक निराश चिंतन जीवन के बाबत हमारा खड़ा हो गया। हम जीवन को बदल नहीं सकते। हम जीवन को वैसा नहीं बना सकते जैसा हम चाहते हैं। जैसा हम चाहते हैं पृथ्वी हो, वैसी पृथ्वी हम बना नहीं सकते, यह हमारी सामर्थ्य के बाहर है। एक बार जब देश ने यह धारणा भीतर ग्रहण कर ली--देश की आत्मा सो गई, प्रतिभा खो गई, सामर्थ्य नष्ट हो गई। यह विचार पीछे काम कर रहा है हमारे जीवन को नष्ट करने में।

साथ ही इससे कुछ और फल हुए। जो कौम यह मानती है कि आगे भी वापस वही पुनरुक्त होगा जो पीछे हो चुका है, उसकी आंखें पीछे लग जाती हैं, आगे नहीं। उसकी दृष्टि अतीतोन्मुखी हो जाती है, वह पीछे की तरफ देखना शुरू कर देती है। क्योंकि जो पीछे हुआ है वही आगे भी होने वाला है, तो भविष्य को जानने का एक ही रास्ता है कि हम अतीत को जान लें, क्योंकि वही पुनरुक्त होगा, वही दोहरेगा।

तो पूरे भारत की आंख अतीत पर लग गई, जो अब है ही नहीं, जो जा चुका। और यह वैसा ही है जैसे हम कार के लाइट पीछे की तरफ लगा दें, कार आगे की तरफ चले और लाइट पीछे की तरफ हो। तो दुर्घटना सुनिश्चित है, दुर्घटना होने ही वाली है, क्योंकि कार चलेगी आगे की तरफ और प्रकाश उसकी आंखों का पड़ेगा पीछे की तरफ। जिस रास्ते से अब कोई संबंध नहीं है उस पर प्रकाश पड़ेगा और जिस रास्ते से आगे संबंध है वह अंधकारपूर्ण होगा।

भारत की आंखें, भारत के राष्ट्र की आंखें सामने की तरफ नहीं हैं, पीछे की तरफ हैं। हम विचार करते हैं राम का, हम विचार करते हैं महावीर, बुद्ध का। हम कभी विचार नहीं करते आने वाले भविष्य का, आने वाले बच्चों का।

न राम इतने महत्वपूर्ण हैं, न बुद्ध, न महावीर, जितना आने वाला कल पैदा होने वाला बच्चा है। एक-एक घर में पैदा होने वाला साधारण सा बच्चा भी पुराने सारे अतीत से ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह होने वाला है; और अतीत हो चुका, जा चुका, समाप्त हो चुका है। इसलिए बच्चे हमारे रोज नष्ट होते चले गए हैं, उन पर कोई ध्यान नहीं है। ध्यान बूढ़ों पर है, ध्यान मुर्दों पर है। जो जा चुके, व्यतीत हो चुके, उन पर हमारा ध्यान है; बच्चों पर हमारा कोई ध्यान नहीं है।

समय की ऐसी धारणा--परिभ्रमण करने वाली--सर्कुलर कंसेप्ट अतीतवादी बना देता है मनुष्य को। भविष्य! भविष्य जैसी कोई चीज नहीं रह जाती। और जो कौम पीछे की तरफ देखने लगती है, उस कौम की आत्मा बूढ़ी हो जाती है, यह समझ लेना जरूरी है। यह इसलिए समझ लेना जरूरी है... आपने ख्याल शायद न किया हो, बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं। बच्चों का कोई अतीत नहीं होता, देखेंगे भी क्या? पीछे की तरफ देखने को कोई स्मृति नहीं होती, कोई मेमोरी नहीं होती। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं। बूढ़े! बूढ़े हमेशा अतीत की तरफ देखते हैं। भविष्य उनका कुछ होता नहीं। भविष्य में सिर्फ मौत होती है एक दीवाल की तरह। उसके आगे देखने को कुछ होता नहीं। भविष्य यानी शून्य। भरावट होती है अतीत की। तो बूढ़ा हमेशा बैठ कर स्मृति करता है--ऐसा था बचपन, ऐसी थी जवानी, ऐसे थे दिन, इस भाव घी बिकता था, इस भाव गेहूं बिकता था। वह यही सारी बातें सोचता रहता है। भविष्य कहीं नहीं है उसके पास। उसके पास है अतीत। वृद्ध मन का लक्षण है अतीत का चिंतन। बूढ़ा अतीत का चिंतन करने लगता है। बच्चा, बाल मन का लक्षण है भविष्य; और युवा मन का लक्षण है वर्तमान। युवक जीता है वर्तमान में--अभी और यहां। न उसे भविष्य की फिकर है, न उसे अतीत की। न वह बच्चा है, न वह बूढ़ा है। अभी जो आनंद मिल जाए, वह उसे जी लेना चाहता है। इस क्षण

में जो मिल जाए, वह उसे भोग लेना चाहता है। जब बच्चा था तो भविष्य था, जब बूढ़ा हो जाएगा तो अतीत होगा, युवा है तब वर्तमान है।

कौमें भी तीन तरह की होती हैं। बचपन में जो कौमें होती हैं, जैसे रूस। रूस के पास कोई अतीत नहीं है। उन्होंने अतीत को छोड़ दिया, इनकार कर दिया, वह गया। उन्नीस सौ सत्रह के बाद उनका अब कोई अतीत नहीं है। वे उसकी बात भी नहीं उठाते। भविष्य है। और भविष्य का चिंतन और विचार करना है और उसे निर्मित करना है। अमेरिका, उसे जवान कौम कहा जा सकता है। उसके पास न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है, अभी इसी क्षण जी लेना है। अभी इसी क्षण जी लेना है, जो है उसे भोग लेना है। भारत को बूढ़ी कौम कहा जा सकता है। मैं लक्षण बता रहा हूं। उसके पास न कोई भविष्य है, न कोई वर्तमान है, अतीत है। राम की कथा है, बुद्ध की कथा है, महावीर के स्मरण हैं। वह जो बीत गया है सुखद, स्वर्ण, उस सबकी हजारों स्मृतियां हैं। उन्हीं स्मृतियों में जीना है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, अतीत का इतना चिंतन रुग्ण है, वार्धक्य का लक्षण है। और यह अतीत का चिंतन समय की धारणा से पैदा हुआ है। विकासमान जाति के लिए भविष्य का चिंतन जरूरी है। विकासमान राष्ट्र के लिए भविष्य महत्वपूर्ण है। और भविष्य के बाबत विचार--क्या होगा? क्या हो सकता है? क्योंकि अतीत के संबंध में हम कुछ भी नहीं कर सकते। वह जो हो गया, हो गया। अब उसे अनडन नहीं किया जा सकता, अब उसमें कुछ भी हेर-फेर करने का उपाय नहीं है, अब उसमें एक रत्ती भर फर्क करने की कोई संभावना नहीं है।

तो अगर हम अतीत को ही सदा देखते रहें तो धीरे-धीरे हमारे चित्त में यह धारणा पैदा हो जाएगी कि कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता। और जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं, हमारी चेतना उसी के साथ तल्लीन हो जाती है और एक हो जाती है। हम जो ध्यान करते हैं, जिसका मेडिटेशन करते हैं, उसी जैसे हो जाते हैं। अतीत को देखने वाले लोग धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंच जाएं तो आश्चर्य नहीं कि कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। भविष्य की तरफ देखने वाले लोग इस नतीजे पर पहुंच जाएं कि सब कुछ किया जा सकता है तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि भविष्य का मतलब ही यह है कि जो अभी नहीं हुआ है और हो सकता है। हो सकने का मतलब यह है कि पॉसिबिलिटी हैं हजार, हजार संभावनाएं हैं, उनमें से कोई भी संभावना चुनी जा सकती है। भविष्य की तरफ देखने वाली जाति जवान हो जाएगी, युवा हो जाएगी, ताजी हो जाएगी, जीने की सामर्थ्य खोज लेगी। अतीत की तरफ देखने वाली कौम जड़ हो जाएगी, बूढ़ी हो जाएगी, उसके स्नायु सूख जाएंगे।

समय की इस धारणा ने हमारे दुर्भाग्य का बहुत बड़ा काम पूरा किया है। समय का यह विचार बदलना होगा, ताकि हम देश की प्रतिभा को भविष्योन्मुखी बना सकें, ताकि हम देश की प्रतिभा को यह भाव और दृढ़ आधार दे सकें, कि तुम कुछ कर सकते हो! तुएहारे हाथ में है कुछ!

और दूसरी बात--दूसरा केंद्र, दूसरी जड़। दूसरी जड़ एक अदभुत रूप से हमें हैरान किए रही है और हमारे प्राणों में बहुत गहरा उसका विस्तार है। और वह जड़ है इस बात की कि हमने कर्मफल के सिद्धांत की एक ऐसी धारणा स्वीकार की है कि कर्म तो करेंगे आप अभी और फल मिलेगा अगले जन्म में। इतना विलंबित फल, इतना डिलेड रिजल्ट--अजीब बात है! अभी मैं आग में हाथ डालूंगा तो अगले जन्म में जलूंगा! अभी चोरी करूंगा और अगले जन्म में फल मिलेगा!

कॉज और इफेक्ट हमेशा जुड़े हुए होते हैं, उनके बीच में फासला नहीं होता। कार्य और कारण संबंधित होते हैं, उनके बीच में रत्ती भर का फासला नहीं होता। बीज और वृक्ष में फासला होता है? अगर बीज और वृक्ष में रत्ती भर का फासला पड़ जाए तो उस बीज से वृक्ष पैदा ही नहीं हो सकेगा। उतना सा फासला, फिर बीज से संबंध ही टूट गया। बीज और वृक्ष एक ही सातत्य के हिस्से हैं, एक ही कंटीन्युटी के।

मैं जो करता हूं और उसका फल उससे ही जुड़ा हुआ है, संयुक्त है, तत्क्षण संबंधित है। यह बड़ी झूठी बात है कि अभी मैं करूंगा काम और फल मिलेगा अगले जन्म में। लेकिन यह धारणा हमने विकसित क्यों की? और इस धारणा की वजह से हमने कितना दुख भोगा है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

यह धारणा इसलिए विकसित करनी पड़ी कि समाज में यह दिखाई पड़ता था कि एक आदमी अच्छा है और दुख भोग रहा है और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, और सुख भोग रहा है। और हमारे साधु-संतों और महात्माओं को बड़ी मुश्किल हुई इस बात को समझाने में कि इसका मतलब क्या है। इसके दो ही मतलब हो सकते थे।

एक मतलब तो यह हो सकता था कि बुरे काम का बुरे फल से कोई संबंध नहीं है, अच्छे काम का अच्छे फल से कोई संबंध नहीं है। एक आदमी चोरी करता है, बेईमानी करता है--और इज्जत, प्रतिष्ठा और समृद्धि में जीता है। और एक आदमी ईमानदारी से रहने की कोशिश करता है, सच बोलता है--दुख पाता है, कष्ट पाता है। इसका एक मतलब तो यह हो सकता था कि इससे कोई संबंध नहीं है। आप क्या करते हैं, आपको क्या मिलेगा, यह संबंधित नहीं है, एक्सीडेंटल है, सांयोगिक है।

अगर यह बात कोई मुल्क मान ले तो उस मुल्क में नीति और धर्म विलीन हो जाएंगे। तो संत-महात्माओं की इतनी हिएमत न थी कि इस बात को मानते। इसको बात को मानने का मतलब तो यह था कि फिर नैतिक आचरण के लिए कोई आधार न रहा।

दूसरा विकल्प यह था कि आदमी जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। लेकिन आंखें तो यह बताती हैं कि बेईमान सुख पा रहे हैं, ईमानदार दुख पा रहे हैं। तो अब क्या! इसमें क्या हल निकाला जाए? तो हल यह निकाला गया कि वह बेईमान जो अभी सुख पा रहा है, पिछले जन्म की ईमानदारी का फल पा रहा है; और वह जो ईमानदार दुख पा रहा है वह पिछले जन्म की बेईमानी का दुख पा रहा है। फल तो हमेशा वैसा ही मिलेगा जैसा कर्म है, लेकिन पिछले जन्मों के कर्म सब इकट्ठे होकर फल लाते हैं। इस जन्म से हमने संबंध तोड़ कर पिछले जन्म से जोड़ा, ताकि व्याख्या में तकलीफ न हो।

लेकिन यह व्याख्या हमें और भी बड़े गड्ढे में ले गई। मेरी अपनी समझ यह है कि इस धारणा ने--कि पिछले जन्मों के विलंबित फल हमें मिलते हैं--दो कारण हमारे सामने खड़े कर दिए, दो स्थितियां बना दीं। एक तो यह कि बुरा काम करने के प्रति जो तीव्र विचार होना चाहिए था वह शिथिल हो गया, क्योंकि अगले जन्म में फल मिलने वाला है। पहले तो यही पक्का नहीं कि अगला जन्म होगा कि नहीं होगा। इसका कोई प्रमाणीभूत उपाय नहीं। कोई मुर्दे लौट कर कहते नहीं कि अगला जन्म हुआ। अगले जन्म की बात ने तथ्य को इतना कमजोर कर दिया कि आज जो मेरी जरूरत है उसको आज पूरा करूं या अगले जन्म में होने वाले फलों का विचार करूं! आज की जरूरत इतनी इंटेंस और अरजेंट है, आज की जरूरत इतनी जरूरी है कि अगले जन्म के विचार के लिए उसे स्थगित नहीं किया जा सकता। तो फिर जो ठीक लगे अभी करूं, अगले जन्म का अगले जन्म में देखा जाएगा। ऐसा एक पोस्टपोनमेंट हमारे माइंड में पैदा हुआ, एक स्थगन पैदा हो गया कि ठीक है, अभी जो करना है वह करो, अगले जन्म में देखा जाएगा।

इतने दूर की बात से मनुष्य प्रभावित नहीं हो सकता। इतने दूर के फल मनुष्य के जीवन और चरित्र को गतिमान नहीं कर सकते। इतनी आकाश की और हवा की बातें मनुष्य के प्राणों के जीवंत तथ्य नहीं बन सकतीं। इसलिए भारत का सारा चरित्र हीन हो गया। क्योंकि यह दिखाई पड़ा कि अभी तो बुरा करने से अच्छा फल मालूम होता है, अगले जन्म का अगले जन्म में देखा जाएगा। फिर कौन कहता है कि अगला जन्म है? फिर कौन कहता है कि इस जन्म में जब बुरा आदमी अच्छे फल भोग सकता है तो अगले जन्म में भी वह कोई तरकीब नहीं निकाल लेगा, कौन कह सकता है? जब इस जन्म में तरकीब निकालने वाले तरकीब निकाल लेते हैं तो अगले जन्म में भी निकाल ही लेंगे। कौन कह सकता है? फिर कौन जानता है कि आदमी समाप्त नहीं हो जाता शरीर के साथ! इन सारी बातों ने स्थिति को बिल्कुल डांवाडोल कर दिया और भारत के व्यक्तित्व को एकदम शिथिल कर दिया। उसके पास कोई जीवंत नियम न रहे जिनके आधार पर वह चरित्र को और आचरण को और जीवन को ऊंचा उठाने की चेष्टा करे।

दूसरा परिणाम यह हुआ, दूसरी धारणा यह विकसित हुई कि अगर मैं पाप भी करूं तो कुछ पुण्य करके उन पापों को रद्द किया जा सकता है। स्वाभाविक! अगर एक-एक कर्म का फल, इंडिविजुअल कर्म का फल मिलता होता, तो एक कर्म के फल को दूसरा कर्म का फल रद्द नहीं कर सकता था। लेकिन हमको फल मिलना था होलसेल में, इकट्ठा। एक जन्म भर के कर्मों का फल अगले जन्म में मिलना था। तो हम अपने पाप और पुण्यों का लेखा-जोखा रख सकते हैं, पाप भी कर सकते हैं और पुण्य करके उनको रद्द भी कर सकते हैं। अंतिम हिसाब में जोड़-बाकी में अगर पुण्य बच जाए तो मामला खत्म हो जाता है।

तो परिणाम यह हुआ कि पाप भी करते रहो एक तरफ, दूसरी तरफ पुण्य भी करते रहो। एक तरफ लाखों रुपया चूसो, शोषण करो, दूसरी तरफ दान करो, मंदिर बनाओ, तीर्थ जाओ। इधर से पाप करो, उधर से पुण्य भी करते रहो, तो लाभ और हानि बराबर होती रहें और आखिर में जोड़ पुण्य का हो जाए। तो जिंदगी भर पाप करो और बुढ़ापे में थोड़ा पुण्य करो और हिसाब ठीक कर लो अपना। इस तरह एक कनिंगनेस, एक कनिंग मैथमेटिक्स, एक चालाक गणित हमने आध्यात्मिक जीवन के संबंध में पैदा कर लिया। तो एक आदमी शोषण करे, इसको हमने बुरा न समझा; दान करे, इसकी हमने प्रशंसा की। और हमने कभी यह न पूछा कि दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे होता है? दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे हो सकता है? नहीं लेकिन, उसका हमने विचार नहीं किया। दान पुण्य है, तो शोषण के पाप को दान के पुण्य से काटा जा सकता है। दान की हमने खूब प्रशंसा की--मंदिर बनाने की, तीर्थ बनाने की, साधु-संन्यासियों को भोजन कराने की, ब्राह्मणों को भोजन कराने की, गाय-दान कर देने की--हजार तरह की हमने तरकीबें ईजाद कीं, जिनसे हम पाप करते रहें और उनको काटने के उपाय भी कर लें।

चरित्र नीचे गिरना निश्चित था। क्योंकि जो मुल्क ऐसा सोचता है कि एक पाप को पुण्य करके काटा जा सकता है, वह मुल्क कभी भी पाप से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक हमें यह ख्याल न हो कि पाप अल्टीमेट है, जब तक हमें यह ख्याल न हो कि एक पाप को किसी पुण्य से कभी नहीं काटा जा सकता, एक कर्म को दूसरे कर्म से नहीं काटा जा सकता है, तब तक, तब तक उस पाप के प्रति हम बचने के उपाय खोजने की कोशिश करेंगे। इस धारणा ने हमारा जीवन ले लिया।

मैं इसके संबंध में दो बातें कहना चाहता हूं। एक तो बात यहः कर्म विलंबित फल नहीं लाता, कर्म इसी क्षण फल लाता है। एक आदमी अभी क्रोध करता है तो अभी क्रोध के नर्क से गुजर जाता है। एक आदमी अभी चोरी करता है तो चोरी के भय, अपराध, पीड़ा, डर, उन सबकी पीड़ाओं से अभी गुजर जाता है। एक आदमी

अभी किसी की हत्या करता है तो हत्या करने के पहले और हत्या करने के बाद वह जिस मानसिक उत्पीड़न से, मानसिक भय से, मानसिक उत्ताप से गुजरता है, वह आदमी जो मर गया उसकी पीड़ा से बहुत ज्यादा है। एक आदमी को मैं मार डालूं, उस आदमी को मरने में जितनी पीड़ा होगी, उससे ज्यादा पीड़ा से, मारने के पहले और मारने के बाद मुझे गुजरना पड़ेगा। अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी कि अगले जन्म में फिर मुझे कोई मारे। नहीं, कृत्य तो अपने साथ ही फल को लिए हुए है। इधर मैंने कृत्य शुरू किया और उधर फल मेरे ऊपर टूटना शुरू हो गया। एक अच्छा काम आप करें, एक प्रेम का कृत्य, और उसके साथ ही उसकी सुवास, आनंद और सुगंध है। प्रेम के एक कृत्य के साथ ही, उसके पीछे ही एक हवा है--शांति की, एक आनंद की, एक धन्यता की। पाप के साथ ही एक पश्चात्ताप है, एक पीड़ा है।

इस पुरानी धारणा की जगह नई धारणा चाहिए भारत के मन को कि प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण है, आगे-पीछे नहीं। इतना भी फासला नहीं है कि मैं कुछ कर सकूं। मैंने किया, और करने के साथ ही फल भी उपलब्ध होना शुरू हो जाता है। मैं एक छत पर से कूद पडूं, मैं छत पर से कूदा, और कूदने के साथ ही गिरना भी शुरू हो गया। कूदना और गिरना दो बातें नहीं हैं। कूदना उसी चीज का प्रारंभ है जिसको हम गिरना कहते हैं। मैंने क्रोध किया, और क्रोध के साथ ही जलना शुरू हो गया। हमें, कर्म ही फल है, इस उदघोषणा को मुल्क के प्राणों पर ठोंक देना होगा कि कर्म ही उसका फल है। इसलिए आगे सोच-विचार का सवाल नहीं है, सोचना है तो इसी क्षण--कि यह मुझे करना है या नहीं!

दूसरी बात, यह जो हमें दिखाई पड़ता है कि एक बेईमान आदमी सफल हो जाता है, एक ईमानदार आदमी असफल हो जाता है। हमने कभी बहुत विचार नहीं किया इस बात का, क्योंकि हमारी धारणा थी, उससे हमने निपटारा कर लिया; एक्सप्लेनेशन मिल गया, इसलिए विचार नहीं किया। जब एक बेईमान आदमी सफल होता है तब कभी आपने ख्याल किया कि बेईमान आदमी में और गुण भी होते हैं। और जब ईमानदार आदमी असफल होता है तो आपने कभी ख्याल किया कि ईमानदार आदमी में और अयोग्यताएं भी हो सकती हैं। एक बेईमान आदमी करेजियस हो सकता है, साहसी हो सकता है। और एक ईमानदार आदमी कमजोर हो सकता है, हिएमतहीन हो सकता है, कायर हो सकता है। और अगर बेईमान आदमी सफल होता है, तो मैं आपसे कहता हूं, सफल वह अपने साहस की वजह से होता है, बेईमानी की वजह से नहीं। और अगर ईमानदार आदमी असफल होता है, तो ईमानदारी की वजह से असफल नहीं होता, असफल होता है साहस की कमी की वजह से। एक आदमी की सफलता में मल्टी कॉजलिटी होती है, बहुत कारण होते हैं। हालांकि ईमानदार आदमी असफल होता है तो उसको भी मजा इसी में आता है बताने में कि मैं ईमानदारी की वजह से असफल हो गया।

ईमानदारी की वजह से दुनिया में कोई कभी असफल नहीं हुआ है और न हो सकता है। और बेईमानी की वजह से न कोई दुनिया में कभी सफल हुआ है, न हो सकता है। लेकिन मल्टी कॉजलिटी है। बेईमान आदमी के पास और गुण भी हैं। वह साहसी हो सकता है, वह बुद्धिमान हो सकता है। वह आदमी संगठन की क्षमता में कुशल हो सकता है। वह आदमी भविष्य को देखने की अंतर्दृष्टि वाला हो सकता है। और इन सारी चीजों से वह सफल हो जाएगा। और एक जिसको हम ईमानदार आदमी कह सकते हैं, वह सिर्फ ईमानदार है, और उसके पास कुछ भी नहीं है। न उसके पास साहस है, न अंतर्दृष्टि है, न जीवन को समझने की कोई कुशलता है और समझ है, न पहल लेने की हिएमत है कि इनीशिएट कर सके किसी बात को। वह असफल हो जाएगा। और वह ईमानदार आदमी अपने मन में यह सोच कर बहुत संतोष, सांत्वना और कंसोलेशन पाएगा कि मैं इसलिए असफल हो गया कि मैं ईमानदार हूं। इसलिए आप असफल नहीं हो गए हैं, आपकी असफलता के दूसरे कारण हैं। और यही

ईमानदार आदमी उस सफल आदमी की निंदा करना चाहेगा--ईर्ष्यावश, जेलेसी है पीछे, कि वह सफल हो गया है--तो उसकी निंदा का एक ही उपाय है कि यह बेईमानी की वजह से सफल हो गया है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, जीवन के गणित में दुर्गुण कभी भी कोई समृद्धि, कोई सफलता न लाते हैं, न ला सकते हैं। जीवन का गणित बड़ा है।

एक आदमी चोरी करने जाता है। आप सिर्फ इतना ही देखते हैं कि वह चोर है। लेकिन चोर की हिएमत है आपके पास? अपने घर में भी डर कर चलते हैं, चोर दूसरे के घर में भी निडर चलता है। अपने घर के अंधेरे में भी प्राण छिपाते हैं, चोर दूसरे के घर के अंधेरे में ऐसा घूमता है जैसे दिन की रोशनी हो और अपना घर हो। यह क्वालिटी चोरी से बिल्कुल अलग बात है। यह गुण एक बिल्कुल अलग बात है।

जापान में एक चोर था। उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। उसको लोग मास्टर थीफ कहते थे। कहते थे वैसा चोर नहीं हुआ कभी। कलागुरु था वह चोरों का। और यहां तक उसकी प्रसिद्धि हो गई थी कि जिस घर में वह चोरी कर लेता था उस घर के लोग गौरव से लोगों से कहते थे कि हमारे यहां मास्टर थीफ ने चोरी की है! हम कोई साधारण समृद्ध लोग नहीं हैं, उस कलागुरु की नजर भी हमारे घर की तरफ गई है! लोग इसकी प्रशंसा करते थे। लोग प्रतीक्षा करते थे कि वह कलागुरु कभी उनके घर की तरफ भी नजर कर ले, क्योंकि जिसके घर की तरफ वह देखता वह आदमी खानदानी रईस हो जाता।

वह बूढ़ा हो गया चोर। उसके लड़के ने उससे कहा कि आप तो बूढ़े हो गए, अब मेरा क्या होगा? मुझे कुछ सिखा दें!

उस बूढ़े ने कहा कि यह बड़ा कठिन मामला है। चोरी जितनी सरल दिखाई पड़ती है उतनी सरल चीज नहीं है। बहुत कांप्लेक्स साइंस है, उस बूढ़े ने कहा, बड़ा जटिल विज्ञान है। इसमें बड़े गुण चाहिए। एक सैनिक से कम हिएमत की जरूरत नहीं, एक संत से कम शांति की जरूरत नहीं, एक ज्ञानी से कम अंतर्दृष्टि की जरूरत नहीं, तब आदमी चोर बन सकता है।

उसके लड़के ने कहा, क्या आप कहते हैं! संत, योद्धा, ज्ञानी, इनके गुण चाहिए?

उस बूढ़े ने कहा कि इनके गुण चाहिए, तब! चोरी सफलता नहीं लाती, ये गुण सफलता लाते हैं। चोरी क्या सफलता ला सकती है? चोरी तो अपने आप में असफल होने को आबद्ध है। इतने बल जोड़ दो तो सफल हो सकती है।

फिर भी उस लड़के ने कहा कि कुछ मुझे सिखाएं! तो उसने कहा, आज चल तू रात मेरे साथ। जवान लड़का, अंधेरी रात में जाकर नगर के सम्राट के महल में पहुंच गए। वह बूढ़ा है, उसकी उम्र कोई सत्तर साल पार कर चुकी है, वह जाकर दीवाल की ईंटें फोड़ने लगा, और लड़का खड़ा कंप रहा है। उस बूढ़े ने कहा, कंपन बंद कर! क्योंकि यहां कोई साहूकारी करने नहीं आए हैं कि कंपते हुए भी हो जाए। यहां चोरी करने आए हैं। हाथ कंपा कि गए। बुड्ढे आदमी का, सत्तर वर्ष का बूढ़ा हाथ है, और वह ईंटें ऐसे तोड़ रहा है जैसे कोई कारीगर मौज से अपने घर काम कर रहा हो। और वह लड़का कंप रहा है कि यह दूसरे का घर है, कहीं आवाज न हो जाए, कहीं कुछ न हो जाए। और वह बूढ़ा ऐसी शांति से खोद रहा है ईंटें, जैसे अपना घर हो।

उस लड़के ने कहा, बाबा, आपके हाथ नहीं कंपते? उस बूढ़े ने कहा, चोर तभी हुआ जा सकता है जब हम सबकी संपत्ति अपनी मानते हों। चोर होना बहुत मुश्किल है। चोर होना आसान नहीं है। उसने ईंटें तोड़ ली हैं, वह भीतर चला गया। लड़का भी कंपता हुआ उसके साथ पीछे गया है, लेकिन उसकी छाती इतने जोर से धड़क रही है कि उसे समझ में ही नहीं आ रहा है कि ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ था, यह क्या हो रहा है? उस बूढ़े ने

कहा, देखो, इतने घबराओगे तो गति बहुत मुश्किल है। बहुत शांत, बहुत ध्यानपूर्वक ही चोरी की जा सकती है, बहुत मेडिटेटिवली। क्योंकि दूसरे का घर है; लोग सोए हुए हैं। तेरा तो हृदय इतने जोर से धड़क रहा है कि उसकी धड़कन से लोग जग जाएं। ऐसे काम नहीं चलेगा। ऐसा धड़कते हुए तो चीज गिर जाएगी, धक्का लग जाएगा, सब गड़बड़ हो जाएगा। इस अंधेरे में इतनी कुशलता से जाना है कि जरा सी आवाज न हो।

लेकिन लड़के के तो पैर कंप रहे हैं और उसको चारों तरफ लोग दिखाई पड़ रहे हैं कि वह खड़ा है दीवाल के पास कोई! अब कोई जागा! किसी को खांसी आ गई है, कोई रात में बर्रा रहा है, आवाज कर रहा है, और वह घबरा रहा है। बूढ़ा उसको लेकिन भीतर ले गया। वह ताले खोलता हुआ चला गया। वह आखिरी अंदर के कक्ष में पहुंच गया। उसने लड़के को कहा, तू भीतर जा और जो भी चीजें तुझे पसंद हों वे लेकर बाहर आ जा। मैं बाहर खड़ा हूं। वह दरवाजे पर खड़ा है; लड़का भीतर गया। उसे तो कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता, पसंद करने की तो बात बहुत दूर, उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या वहां है और क्या नहीं है। और तभी उसने देखा कि उसके बाप ने दरवाजा बंद कर दिया है, और जोर से दरवाजा पीटा है और चिल्लाया है कि चोर है! और बाप भाग गया।

वह लड़का कमरे के भीतर है। सारे घर के लोग जाग गए हैं और वे दीया लिए, लालटेन लिए खोज कर रहे हैं। उस लड़के के तो प्राण सूख गए बिल्कुल। उसने कहा, यह तो बाप ने मरवा डाला। यह कैसी चोरी सिखाई! यह क्या किया पागलपन!

अचानक जैसे ही इतने खतरे की, इतने डेंजर की स्थिति पैदा हो गई वैसे ही विचार खत्म हो गए। इतने खतरे में विचार नहीं चल सकते। विचार चलने के लिए सुविधा चाहिए, कंफर्ट चाहिए। इतना खतरा है कि जान जाने को है, तो उसके विचार शून्य हो गए।

अभी कोई आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए तो फिर मन चंचल नहीं रहेगा उस वक्त। मन के चंचल होने के लिए आराम से तकिया चाहिए, बिस्तर चाहिए, तब मन चंचल होता है। खतरे की नोक, जान जिंदगी खतरे में पड़ जाए तो कहां की चंचलता! मन एकदम थिर हो जाएगा।

उसका मन थिर हो गया है और एकदम उसे कुछ अंतर्दृष्टि हुई। उसने दरवाजे को नाखून से खुरचा, जैसे कि कोई बिल्ली या कोई चूहा आवाज कर रहा हो। और उसे कुछ समझ में न आया कि यह मैं क्यों कर रहा हूं। जैसे कोई अंतर्दृष्टि, जैसे कोई भीतर से कोई इंट्यूशन। एक नौकरानी बाहर से गुजरती थी; उसने दरवाजा खोला कि भीतर शायद कोई बिल्ली है या क्या है! चोर को वे खोज भी रहे थे। उसने ऐसा हाथ बढ़ा कर, जो दीया हाथ में लिया था, भीतर ऐसा झांक कर देखा। अचानक--ऐसा उसने सोचा नहीं था कि नौकरानी हाथ भीतर बढ़ाएगी और दीया जला हुआ आगे होगा; इसका उसे क्या पता हो सकता था, यह विचार नहीं था, कोई योजना न थी, कोई प्लानिंग नहीं थी--लेकिन दीया देख कर अचानक उसके मुंह से फूंक निकल गई। दीया बुझ गया और उसने धक्का दिया अंधेरे में और भागा। दस-पच्चीस लोग उसके पीछे भागे।

आज उसे जिंदगी में पहली दफा पता चला कि इतनी तेजी से भी भागा जा सकता है। वह जितनी तेजी से भाग रहा था, तीर की तरह जा रहा था। उसे आज पहली दफा पता चला कि मेरा शरीर और इतना गतिवान! जैसे तीर चल रहा हो। जब जान पर बाजी हो तो सारी शक्तियां जग जाती हैं। एक कुएं के पास से गुजरता था, दस-बीस कदम पीछे लोग रह गए हैं और ऐसा लगता है कि वे अब पकड़ते हैं, अब पकड़ते हैं, तभी उसे कुएं के घाट पर एक पत्थर दिखाई पड़ा। उसने उठाया और कुएं में पटक दिया। दौड़ कर जो पीछे लोग आ रहे थे वे कुएं को घेर कर खड़े हो गए। उन्होंने समझा कि वह चोर कुएं में कूद पड़ा है। वह एक वृक्ष के नीचे चोर खड़ा रहा

और देखता रहा। उन्होंने कहा, अब तो वह अपने हाथ से मर गया। कुआं बहुत गहरा है, अब सुबह देखेंगे। जिंदा रहा तो ठीक, मर गया तो ठीक। वे वापस जाकर अपने महल में सो गए होंगे।

वह लड़का अपने घर पहुंचा, देखा पिता कंबल ओढ़ कर सोया हुआ है। उसने क्रोध से कंबल खींचा और कहा कि यह क्या मामला है? मेरी जान ले ली! उस बूढ़े ने कहा, अब रात गड़बड़ मत करो, तुम आ गए, अब सुबह बातचीत करेंगे। बस आ गए, ठीक है, अब सुबह बातचीत करेंगे। उसने कहा कि सुबह नहीं, मैं तो ऐसे अनुभव से गुजर गया! क्या किया आपने? उसने कहा, छोड़ो उस बात को, तुम आ गए, बात खत्म हो गई। कल से तुम खुद भी चोरी करने जा सकते हो।

चोर सफल होता है चोरी की वजह से नहीं। चोर सफल होता है दूसरे गुणों की वजह से। और जब अचोर आदमी में उतने गुण होते हैं तो उसकी सफलता का क्या कहना! वह महावीर बन जाता है, बुद्ध बन जाता है। बेईमान सफल होता है बेईमानी की वजह से नहीं, और दूसरे गुणों की वजह से। और जब कभी ईमानदार आदमी उन गुणों को पैदा कर लेता है तो उसकी सफलता का क्या कहना! वह सुकरात बन जाता है, वह जीसस बन जाता है। आप हैरान हो जाएंगे, दुनिया के बुरे से बुरे आदमियों की सफलता के पीछे वे ही गुण हैं जो दुनिया के अच्छे से अच्छे आदमी की सफलता के पीछे हैं। गुण वही हैं सफलता के। असफलता के गुण भी वही हैं।

लेकिन हमने एक झूठी व्याख्या पकड़ ली थी और उसके हिसाब से हमने समझा था कि हमने सब मामला हल कर लिया। उसके नुकसान भारी पड़े हैं। वह सारी धारणा बदल देने की जरूरत है, ताकि नीचे से जड़ बदल जाए और आदमी के व्यक्तित्व को हम नई बुनियाद दे सकें। इस संबंध में एक बात और, और फिर मैं तीसरा सूत्र कह कर अपनी बात पूरी करूं।

एक बात ध्यान रखनी जरूरी है कि हमारी पुरानी कर्म की धारणा जब यह कहती थी कि अभी मैं कर्म करूंगा और आगे कभी भविष्य में, कभी जन्मों के बाद फल मिलेगा, तो वह धारणा हमें गुलाम बना देती थी, क्योंकि कर्म तो अभी कर दिया गया और फल भोगने के लिए मैं बंध गया। फल भोगने के लिए मैं बंध गया। न मालूम कब तक बंधा रहूंगा उस फल से। अनंत जन्म हो चुके हैं। अनंत कर्म आदमी ने किए हैं। उन सबसे आदमी बंधा हुआ है, क्योंकि उनका फल अभी भोगना है, अभी फल भोगा नहीं गया।

तो भारत में बंधे हुए की धारणा, एक स्लेवरी की धारणा, एक परतंत्रता की धारणा विकसित हुई कि हर आदमी परतंत्र है, आगे के लिए बंधा हुआ है, पीछे के कामों ने बांध लिया है। तो भारत की प्रतिभा के भीतर स्वतंत्रता का बोध, कि मैं स्वतंत्र हूं, यह मर गया। यह मर ही जाएगा। जब मैं इतने कर्मों से बंधा हुआ हूं पीछे के, जिनके फल मुझे अभी भोगने ही पड़ेंगे, जिनको बदलने का कोई उपाय न रहा अब, तो स्वाभाविक मेरी चेतना बंधी हुई है, बद्ध है, बंधन में है, यह धारणा पैदा हो गई। और जहां इतने बंधन मेरे भीतर हैं वहां एकाध और कोई बंधन ऊपर से आ जाए, कोई दूसरा मुल्क हुकूमत जमा ले, तो क्या फर्क पड़ता है? मैं तो बंधा ही हुआ हूं, और थोड़ा सा बंधन बढ़ता है तो क्या फर्क पड़ता है? हम इतने बंधे हुए मालूम होने लगे भीतर, इतना बांडेज, कि और नई गुलामी आ जाए तो हमें कोई तकलीफ मालूम नहीं हुई। हमने भारत में एक गुलाम आदमी पैदा कर दिया इस धारणा की वजह से।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण मिल जाता है और आप फिर टोटल फ्री हो जाते हैं, आप फिर मुक्त हो जाते हैं। कर्म भी निपट गया, उसका फल भी उसके साथ निपट गया। आपकी चेतना फिर मुक्त है, आप फिर मुक्त हो गए हैं। हर घड़ी आप बाहर हो जाते हैं अपने बंधन के। बंधन जिंदगी भर साथ नहीं ढोने पड़ते। वह जो हमारी कांशसनेस है वह हमेशा मुक्त हो जाती है। हमने काम किया, फल भोगा और हम

बाहर हो गए। और काम के साथ ही फल निपट जाता है, इसलिए आप हमेशा स्वतंत्र हैं। मनुष्य की आत्मा मौलिक रूप से स्वतंत्र है। वह कभी बंध कर नहीं रह जाती। वह कहीं भी बंधी हुई नहीं है। मौलिक स्वतंत्रता की गरिमा एक-एक आदमी को मिलनी चाहिए, कि मेरी आत्मा मौलिक रूप से स्वतंत्र है। तब हम स्वतंत्रता का आदर कर सकेंगे, स्वतंत्रता के लिए लड़ सकेंगे, स्वतंत्रता को बचाने के लिए जीवन खो सकेंगे। बंधे-बंधाए लोग, बंधन में पड़े हुए लोग, जिनका चित्त इस जड़ता को पकड़ लिया है कि हम तो बंधे ही हुए हैं, वे लोग स्वतंत्रता के साक्षी, वे स्वतंत्रता के विटनेस, वे स्वतंत्रता के मालिक, वे स्वतंत्रता की घोषणा करने वाली स्वतंत्र आत्माएं नहीं हो सकते हैं।

इसलिए भारत इतने दिन गुलाम रहा है। इस गुलामी में न मुसलमानों का हाथ है, न हूणों का, न तुर्कों का, न अंग्रेजों का। इस गुलामी में भारत के उन संत-महात्माओं का हाथ है जिन्होंने एक-एक आदमी की आंतरिक स्वतंत्रता को नष्ट करने की धारणा दे दी। गौरव चला गया, गरिमा चली गई, वह जो डिगनिटी एक-एक आदमी की होनी चाहिए, वह खत्म हो गई। बंधन में पड़े आदमी की कोई डिगनिटी होती है? कोई गौरव होता है? पैर में जंजीरें बंधी हैं, हाथ में जंजीरें बंधी हैं, गर्दन फांसी पर लटकी है, ऐसा आदमी उसकी कोई गरिमा होती है? कर्म के इस सिद्धांत ने आपके पैरों में हजारों जंजीरें डाल दी हैं, हाथों में जंजीरें डाल दी हैं, गर्दन फांसी पर लटका दी है। आप चौबीस घंटे फांसी पर लटके हैं, चौबीस घंटे बंधन में हैं। एक ही प्रार्थना कर रहे हैं, हरे राम, हरे राम कर रहे हैं कि किसी तरह मुक्ति मिल जाए, यह बंधन से छुटकारा हो जाए। इस तरह के आदमी की तस्वीर बहुत बेहूदी और कुरूप है। इस तरह के आदमी को आत्मिक सएमान का भाव भी नष्ट हो जाता है।

तीसरा अंतिम सूत्र! भारत ने एक तीसरी बीमारी हजारों साल में पोसी है, और वह बीमारी है ईगो-सेंटर्डनेस। यह बड़ी अजीब बात मालूम पड़ेगी। अहं-केंद्रीकरण हो गया हमारा। हम दुनिया में सबसे ज्यादा इस बात की बात करने वाले लोग हैं कि अहंकार छोड़ो! लेकिन हमारी पूरी फिलासफी, हमारा पूरा जीवन-दर्शन व्यक्ति को अहं-केंद्रित बनाने वाला है। यह बड़े आश्चर्य की घटना है और यह कैसे संभव हो सकी! भारत में इसीलिए समाज की कोई धारणा, राष्ट्र की कोई धारणा विकसित नहीं हो सकती कभी भी। भारत कभी भी राष्ट्र न था और न है और न अभी पुराने आधारों पर राष्ट्र होने की संभावना है। भारत में न कभी कोई समाज था, न है और न आगे कोई समाज की धारणा बन सकती है। भारत की धारणा अब तक यह रही है कि एक-एक व्यक्ति के अपने कर्म हैं, अपना फल है। एक-एक व्यक्ति को अपना मोक्ष खोजना है, अपना स्वर्ग खोजना है। दूसरे व्यक्ति से लेना-देना क्या है! एक-एक व्यक्ति की आत्मा को अपनी-अपनी यात्रा पूरी करनी है, दूसरे से संबंध क्या है! तो एक इंटररिलेटेडनेस, एक अंतर्संबंध हमारे भीतर विकसित नहीं हो सका।

सुनी होगी वाल्मीकि की कथा कि वाल्मीकि तो डाकू था, लुटेरा था। एक दफा उसने जाते हुए ऋषियों को भी रोक लिया रास्ते में लूटने के लिए। उस ऋषियों ने क्या कहा? उन ऋषियों ने कहा कि तू हमें लूटता है वह तो ठीक, लूट ले, लेकिन किसके लिए लूटता है? यह घटना थोड़ी समझ लेनी जरूरी है। किसके लिए लूटता है? उस बाल्या भील ने कहा कि अपनी पत्नी के लिए, अपने बच्चों के लिए, अपने बूढ़े बाप के लिए, अपनी मां के लिए! उनके लिए लूटता हूं! उन ऋषियों ने कहा, तू फिर एक काम कर, हमें तू बांध दे वृक्षों से और तू जाकर अपनी पत्नी, अपनी मां, अपने बेटे को पूछ आ कि लूटने से जो पाप का फल मिलेगा वे उसमें भी भागीदार होंगे कि नहीं। नर्क जाएगा तू, इतनी लुटाई, इतनी हत्याएं करने से, तो तेरी पत्नी, तेरे बेटे, तेरे मां-बाप नर्क जाने के लिए तेरे साथ होंगे कि नहीं, यह तू पूछ कर आ जा।

बाल्या ने उनको बांध दिया और वह अपनी मां से पूछने गया। मां ने कहा कि बेटे, हमें क्या मतलब! हमें तो तुम बेटे हो, हमारे बुढ़ापे में खाना दे देते हो, उससे मतलब है। हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं कि तुम कहां जाओगे और कहां नहीं जाओगे, वह तुम समझो। अपने-अपने कर्म का फल, अपने-अपने आदमी को भोगना पड़ता है। बाल्या तो बहुत चौंका। उसने अपनी पत्नी को जाकर पूछा। पत्नी ने कहा कि तुएहारा कर्तव्य है, तुम मेरे पति हो, कि मेरा पालन-पोषण करो। मुझे पता नहीं कि तुम कहां से पैसे लाते हो और क्या करते हो। वह तुएहारा अपना जानना है। नर्क जाओगे तो तुम जाओगे, स्वर्ग जाओगे तो तुम जाओगे, मुझसे क्या लेना-देना है इस बात का! बाल्या तो घबरा गया। उसको पहली दफा पता चला कि कर्म मेरे हैं और फल मेरा है पूरा का पूरा। और इनसे कोई मेरा अंतर्संबंध नहीं है सिवाय इसके कि एक मेरी पत्नी है, वह एक बाहरी संबंध है; एक मेरी मां है, वह एक बाहरी संबंध है; अंतर्संबंध कोई भी नहीं, जहां मेरे व्यक्तित्व का पूरा भार लेने को ये तैयार हों। वह आया और ऋषियों के चरणों में गिर पड़ा और खुद भी ऋषि हो गया।

आमतौर से यह कथा कही जाती है, यह बताने के लिए कि ऋषियों ने बाल्या को ज्ञान दिया। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, ऋषियों ने बाल्या को सेल्फ-सेंटर्ड बना दिया। ऋषियों ने बाल्या भील को ईगो-सेंटर्ड बना दिया। उनकी शिक्षा का जो फल हुआ वह कुल इतना कि बाल्या को यह दिखाई पड़ा कि मैं अकेला हूं और सब अकेले हैं। मुझे अपनी फिकर करनी है, उन्हें अपनी फिकर करनी है। हमारे बीच कोई सेतु नहीं, कोई संबंध नहीं, कोई ब्रिज नहीं। एक-एक आदमी एक बंद खिड़कियों वाला मकान है; दूसरे आदमी तक न कोई खिड़की खुलती है, न कोई द्वार खुलता है। दूसरे से संबंधित होने का उपाय नहीं है।

तो एक अजीब धारणा पैदा हुई कि एक-एक आदमी को अपनी फिकर करनी है। इस धारणा के अनुकूल जो समाज विकसित हुआ उसमें एक-एक आदमी अपनी फिकर कर रहा है। उसमें कोई आदमी किसी दूसरे की फिकर में नहीं है। और जिस देश में हर आदमी अपनी फिकर कर रहा हो, उस देश में सारे आदमी परेशानी में पड़ जाएं तो हैरानी की बात नहीं होनी चाहिए। दूसरे की धारणा का कोई मूल्य नहीं है, मेरा मूल्य है! तू का कोई भी मूल्य नहीं है, क्योंकि तू से क्या संबंध है!

आप कहेंगे, लेकिन हमने तो अहिंसा की धारणा भी विकसित की, दान की धारणा भी विकसित की, सेवा की धारणा भी विकसित की।

तो मैं आपको कहना चाहता हूं कि आप बहुत हैरान होंगे इस बात को जान कर कि हिंदुस्तान ने अहिंसा की धारणा विकसित की, वह धारणा भी ईगो-सेंटर्ड है। इसीलिए हमने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया, प्रेम शब्द का प्रयोग नहीं किया। अहिंसा का मतलब है--दूसरे की हिंसा नहीं करनी है। क्यों? इसलिए नहीं कि हिंसा से दूसरे को दुख पहुंचेगा, बल्कि इसलिए कि हिंसा से कर्म-बंध होगा और तुमको नर्क भोगना पड़ेगा। जो बेसिक एएफेसिस है वह इस बात पर नहीं है कि दूसरे को दुख पहुंचेगा, वह इस बात पर है कि दूसरे को दुख देने से बुरा कर्म-बंध होता है और आदमी को नर्क भोगना पड़ता है। तो अगर नर्क से बचना चाहते हो तो दूसरे को दुख मत देना। दूसरे को दुख न देने के पीछे भी धारणा यह है कि मैं कहीं आगे दुख में न पड़ जाऊं। अगर हमको यह पता चल जाए कि दूसरे को दुख देने से कोई नर्क नहीं होता तो हम दूसरे को दुख देने को राजी हो सकते हैं।

हम कहते हैं गरीब को दान दो, इसलिए नहीं कि गरीबी दुख है उसका, बल्कि इसलिए कि गरीब को दान देने से स्वर्ग मिलता है। एएफेसिस, हमारा जोर किस बात पर है? हमारा जोर इस बात पर है कि दान देने से स्वर्ग का रास्ता तय होता है। गरीब की गरीबी नहीं मिटानी है, बल्कि एक संन्यासी ने तो मुझे यहां तक कहा कि दुनिया में अगर गरीब मिट जाएंगे तो फिर दान कैसे हो सकेगा! और अगर दान नहीं हो सका तो मोक्ष का द्वार

बंद! क्योंकि बिना दानी हुए कोई आदमी मोक्ष नहीं जा सकता। इसलिए मोक्ष जाने के लिए दुनिया में गरीबों को बनाए रखना बहुत जरूरी है। किसको दान देंगे आप? कौन दान लेगा आपसे? आपके स्वर्ग के रास्ते पर कुछ गरीब भिखारियों का खड़ा रहना हमेशा आवश्यक है कि आप दान दें और स्वर्ग जा सकें! नहीं, हमारे दान में दरिद्र पर दया नहीं है, हमारे दान में दरिद्र की दरिद्रता का भी शोषण है--दरिद्रता का भी! क्योंकि उसकी दरिद्रता भी साधन बनाई जा रही है कि मैं स्वर्ग जा सकूं।

यह एक सेल्फ-सेंटर्ड, यह बिल्कुल ही अहं-केंद्रित मनुष्य की हमने चेतना विकसित की है। इसलिए हमने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया। प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है, अहिंसा में मैं ही महत्वपूर्ण हूं। अहिंसा नकारात्मक है, निगेटिव है। वह कहती है, हिंसा नहीं करना है। बस, इसके आगे नहीं बढ़ना है। प्रेम कहता है, हिंसा नहीं करनी है, यह तो ठीक है; लेकिन दूसरे को आनंदित करना है। प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण है, तू, दाऊ, महत्वपूर्ण है, और अहिंसा में मैं महत्वपूर्ण हूं। हमारा सारा धर्म सेल्फ-सेंटर्ड है। और जिस कौम का सारा मन अहंकार-केंद्रित हो... एक आदमी तप भी कर रहा है धूप में खड़ा होकर, तो आप यह मत समझना कि किसी और के लिए कर रहा है। अपने लिए ही! उसे स्वर्ग जाना है, उसे मोक्ष जीतना है। मुल्क भूखा मर रहा हो और एक आदमी अपने स्वर्ग जाने के उपाय कर रहा है। मुल्क दरिद्रता में सड़ रहा हो और एक आदमी अपने मोक्ष की आयोजना में लगा हुआ है। और हम सब इसको आदर दे रहे हैं। हम सब कह रहे हैं कि यह बहुत आदरणीय पुरुष है, क्योंकि यह मोक्ष जाने की कोशिश कर रहा है।

मैंने सुना है, जापान में पहली दफा बुद्ध के ग्रंथों का अनुवाद हुआ। तो जिस भिक्षु ने अनुवाद करवाने की कोशिश की वह गरीब भिक्षु था। एक हजार साल पहले की बात है। और बुद्ध के पूरे ग्रंथों का जापानी में अनुवाद करवाने में कम से कम दस हजार रुपये का खर्च था। तो उस भिक्षु ने गांव-गांव जाकर रुपये इकट्ठे किए। वह दस हजार रुपये इकट्ठे कर पाया था कि उस इलाके में, जहां वह रहता था, अकाल पड़ गया। तो उसने वे दस हजार रुपये उठा कर अकाल के काम में दे दिए। उसके साथियों ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? पर वह कुछ भी नहीं बोला। उसने फिर रुपये मांगने शुरू कर दिए। फिर बेचारा दस साल में मुश्किल से दस हजार रुपये इकट्ठा कर पाया और बाढ़ आ गई। उसने वे दस हजार रुपये बाढ़ में दे दिए। अब वह सत्तर साल का हो गया था। उसके मित्रों ने कहा, तुम पागल हो गए हो! ग्रंथों का अनुवाद कब होगा? लेकिन वह हंसा और उसने फिर भीख मांगनी शुरू कर दी। जब वह नब्बे साल का था तब फिर दस हजार रुपये इकट्ठा कर पाया। संयोग की बात कि न कोई अकाल पड़ा, न कोई बाढ़ आई, तो वह ग्रंथ अनुवाद हुआ और छपा। ग्रंथ में उसने लिखाः थर्ड एडीशन। ग्रंथ में उसने लिखाः तीसरा संस्करण। दो संस्करण पहले निकल चुके, लेकिन वे अदृश्य हैं--उसमें उसने लिखा। एक उस समय निकला जब अकाल पड़ा था, एक उस समय निकला जब बाढ़ आई थी, अब यह तीसरा निकल रहा है। और वे दो बहुत अदभुत थे, उनके मुकाबले यह कुछ भी नहीं है।

यह धारणा भारत में विकसित नहीं हो सकी। और यह जब तक विकसित न हो तब तक कोई मुल्क नैतिक नहीं हो सकता, न धार्मिक हो सकता है। भारत का धर्म भी अहंकारग्रस्त है। एक नई दृष्टि इस देश को जरूरी है--जो दूसरा भी मूल्यवान है, मुझसे ज्यादा मूल्यवान। चारों तरफ जो जीवन है वह मुझसे बहुत ज्यादा मूल्यवान है और अगर उस जीवन के लिए मैं मिट भी जाऊं तो भी मैं काम आ गया हूं। वह जो चारों तरफ जीवन है, उस जीवन की सेवा से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है, उस जीवन को प्रेम देने से बड़ा कोई परमात्मा नहीं है। यह तीसरी धारणा विकसित करनी जरूरी है।

ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। इनकी वजह से भारत दुर्भाग्य से भर गया है। और उन तीनों सूत्रों को कैसे मिटाया जा सकता है वह भी मैंने आपसे कहा।

अगर इन तीन सूत्रों पर हमारी जीवन-चिंतना की धारा को बदला जा सके तो कोई कारण नहीं है कि हम अपने देश की सोई हुई प्रतिभा को वापस जगा दें, सोई हुई आत्मा फिर से उठ जाए, हम उत्साह से भर जाएं, हम जीवन की उत्फुल्लता से भर जाएं, हम कुछ करने की तीव्र प्रेरणा से भर जाएं, भविष्य निर्माण करने के सपने हमारी आंखों में निवास करने लगें। और हम समाज, और सब, और वह जो विराट जीवन है उस विराट जीवन के एक अंग... । और इसकी फिकर छोड़ दें बहुत कि मेरा मोक्ष! क्योंकि मेरा कोई मोक्ष नहीं होता, जब मैं मिट जाता है तब आदमी मुक्त होता है। और जो आदमी जितने विराटतर जीवन के चरणों में अपने मैं को समर्पित कर देता है वह उतना ही मिट जाता है और मुक्त हो जाता है। काश! यह हो सके तो भारत का सौभाग्य उदय हो सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समुंद समाना बुंद में

चौथा प्रवचन

जीवन का सृजन

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं इस ज्ञान सत्र की पहली चर्चा को शुरू करना चाहता हूं। एक सम्राट अपने जीवन के अंतिम क्षणों में था। उसे निर्णय लेना था कि वह अपने किस पुत्र को राज्य का अधिकार दे। उसके तीन पुत्र थे। वह बहुत चिंतित था। उनमें से तीन में से कौन सर्वाधिक पात्र और योग्य व्यक्ति है? और कोई भी निर्णय करना उसे आसान नहीं मालूम होता था। और अब तो जीवन की अंतिम घड़ी करीब आ रही थी, निर्णय लेना जरूरी था। उसने नगर के एक वृद्ध संन्यासी को बुलाया और उस संन्यासी को कहा कि कोई रास्ता बताएं! इन तीन में से कौन योग्य है, जो राज्य को सम्हाल सकेगा?

उस संन्यासी ने उस मरते हुए सम्राट के कान में कुछ कहा। और दूसरे दिन सुबह तीनों पुत्रों को बुला कर उसने सौ-सौ रुपये दिए, और उन पुत्रों से कहा, अपने-अपने महल में सौ रुपये से तुम जो भी लाकर भर सकते हो, सौ रुपये के भीतर तुम जो भी चीज लाकर भर सकते हो, महल को भर लो। यह तुम्हारी परीक्षा होगी। और फिर जो परीक्षा में सफल होगा वह राज्य का अधिकारी हो जाएगा।

सौ रुपये, और महल बहुत बड़े थे राजपुत्रों के। सौ रुपये में महल में क्या भरा जा सकता है? हीरे-जवाहरात, स्वर्णराशियां--असंभव! सौ रुपये में उन बड़े महलों में क्या भरा जा सकता था? पहले राजकुमार ने बहुत सोचा, उसे कुछ भी न सूझा। वह दरवाजे पर ताला लगा कर सो गया। सौ रुपये में कुछ हो भी नहीं सकता था। उसने आशा छोड़ दी कि कुछ किया जा सकता है।

दूसरे राजकुमार ने सोचा कि सौ रुपये में पूरा महल भरना है! अधिकतम महल भर जाएगा तो ही सम्राट मुझे पात्र समझेंगे। लेकिन सौ रुपये में क्या खरीदा जा सकता है? एक ही रास्ता है, वह गांव के बाहर कचरा फेंकने वाले लोगों के पास गया, उसने कहा, सौ रुपये दूंगा, महल जितना कचरा लाकर तुम भर सको। इतना कचरे से ही महल भरा जा सकता था। गांव भर का कचरा कूड़ा-कर्कट उस महल में लाकर उसने डलवा दिया। रंध्र-रंध्र, द्वार-द्वार, कोने-कोने महल के उसने कचरे से भर दिए। वह बहुत प्रसन्न हुआ। इससे सस्ता कुछ मिल भी नहीं सकता था। और इतना अधिक महल को भरने का और किसी चीज से उपाय नहीं था। उसने सोचा कि मैं जीत जाऊंगा, मेरी पात्रता सिद्ध हो ही जाने वाली है।

लेकिन उसके महल से इतनी गंध फैलने लगी कि सामने से राजपथ पर से लोगों का चलना भी मुश्किल हो गया।

तीसरे पुत्र ने भी सोचा, तीसरे पुत्र ने भी कुछ किया।

वह घड़ी आ गई परीक्षा की। सम्राट पहले राजपुत्र के महल पर गया। द्वार बंद था, ताला पड़ा था। राजकुमार सोते से उठ आया। उसने कहा कि मैं असफल हो गया हूं। मैं सोच नहीं सका। ये रहे सौ रुपये आपके! सौ रुपये में क्या मिल सकता है? आप भी पागलपन की बातें करते हैं, यह कोई परीक्षा हुई? बड़ा है महल।

राजा दूसरे राजकुमार के पास गया। उसके महल के पास तो पहुंचना ही मुश्किल हो गया। लेकिन उसने महल भर लिया था--कूड़े-कर्कट से, गंदगी से। सम्राट जल्दी से वहां से निकल भागने को आतुर था। राजकुमार ने कहा, देख तो लें! मैंने एक कोना भी खाली नहीं छोड़ा है। महल पूरा भर गया है। फिर आप ही सोचें, हीरे-

जवाहरातों से तो महल नहीं भर सकता था। सौ रुपये ही केवल मेरे पास थे। सीमित शक्ति थी, सीमित सामर्थ्य थी, बड़ा महल था। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।

सम्राट तीसरे राजकुमार के महल पर पहुंचा। तीसरे राजकुमार ने सारे महल में प्रकाश के दीये जला दिए थे और सारे महल को प्रकाश से भर दिया था।

सम्राट जाकर पूछने लगा कि महल तो खाली है, तुमने भरा नहीं? वह राजकुमार हंसने लगा, उसने कहा, भरा है मैंने, लेकिन जिस चीज से भरा है, उसे देखने के लिए आंखें चाहिए। सम्राट ने कहा, मैं आंखों से देख रहा हूं, महल खाली है! उस युवक ने कहा, महल मैंने प्रकाश से भरा है। दीये उसने सौ रुपये के महल में जला दिए थे। देख लेना अच्छी तरह से। और उसने कहा, प्रकाश ही पूरे महल को भरता है। फिर भी किसी भी चीज से महल को भरता तो कुछ न कुछ खाली रह ही जाता। प्रकाश ने पूरा ही भर दिया है। एक इंच जगह नहीं खोजी जा सकती, जहां प्रकाश न हो।

तीसरा राजकुमार परीक्षा में सफल हो गया।

आप इन तीन में से दो तरह के लोग ही ज्यादा पाएंगे। मनुष्य भी जीवन एक परीक्षा की तरह उपलब्ध करता है, एक अवसर की तरह। और शायद कोई बहुत बड़ा राज्य, कोई किंग्डम ऑफ गॉड, कोई बहुत बड़ी आध्यात्मिक समृद्धि उसे उपलब्ध हो सकती है। लेकिन जीवन को किससे भरते हैं हम?

कुछ लोग पहले राजकुमार का काम करते हैं। वे कहते हैं, जीवन छोटा है, शक्ति सीमित है, कुछ भी नहीं किया जा सकता है। वे जीवन के द्वार पर ताला डाल कर सो जाते हैं। मनुष्य-जाति में अधिक संख्या इस भांति के लोगों की है, वे जीवन को खाली ही छोड़ देते हैं--निराश और हताशा से भरे हुए। अंतिम क्षणों में प्रभु के सामने शायद यह कहने को उनके पास कुछ न बचता होगा कि हम क्या कर सकते थे! जीवन था बहुत छोटा, शक्ति थी सीमित, क्या किया जा सकता था! कुछ भी नहीं किया जा सकता था।

दूसरे वे लोग हैं, जो जीवन को कूड़ा-कर्कट और कचरे से भरते हैं। लेकिन स्वयं भी उस दुर्गंध से पीड़ित होते हैं और दूसरों को भी उस दुर्गंध से पीड़ित करते हैं। वे इस ख्याल में होते हैं कि हमने जीवन को भर लिया, फुलफिलमेंट पा लिया। जीवन के जगत में हीरे-जवाहरात, रुपये-पैसे कूड़े-कर्कट से ज्यादा नहीं हैं। उनसे भर लेते हैं जीवन को, फिर भी खाली रह जाते हैं। उससे तो बेहतर था कि खाली ही रह जाते, क्योंकि दुर्गंध से भर जाना कोई भर जाना नहीं है। इस भांति के लोग बहुत कम हैं जो अपने जीवन को प्रकाश से भरते हैं। फिर जो अपने जीवन को प्रकाश से भरते हैं, उन्हें जगत के सारे आनंद की, सत्य की, सौंदर्य की सारी संपदा उपलब्ध होती है। आने वाले तीन दिनों में, ऐसे प्रकाश से भर सकें, इस संबंध में ही मुझे कुछ आपसे कहना है।

आपको कहूं कि जीवन को हम प्रकाश से कैसे भर सकें। मुझे उन बादशाह के दो पुत्रों की बात करनी जरूरी होगी। उस पहले आदमी के संबंध में भी, जो महल को खाली छोड़ देता है। हममें से बहुत से लोग जीवन को खाली छोड़ देते हैं। किन कारणों से आदमी अपने जीवन को खाली एक एंप्टीनेस की भांति छोड़ देता है, रिक्त, और व्यर्थ हो जाता है। उन कारणों की तुमसे मुझे बात करनी जरूरी होगी। फिर उस संबंध में भी बात करूंगा, उन लोगों के संबंध में, जो जीवन की दौड़ में कुछ कूड़े-कर्कट से भी अपने जीवन को भर लेते हैं। ऐसे भरने का ख्याल पूरा हो जाता है और फिर भी वे खाली रह जाते हैं। और खाली रह जाने से भी बड़ा दुर्भाग्य घटित होता है कि वे दुर्गंध से भर जाते हैं।

और स्वयं के लिए ही दुर्गंध से भर जाए, यह भी ठीक है; लेकिन जब कोई आदमी दुर्गंध से भरता है, तो लोगों का राह चलना भी मुश्किल हो जाता है। जो हमारे भीतर घटता है, वह आस-पास बंटने लगता है। अगर

मेरे भीतर सुगंध पैदा होगी, तो हवाएं उसे भी दूर तक ले जाएंगी। और दुर्गंध पैदा होगी, तो हवाएं उसे भी दूर तक ले जाएंगी। एक-एक व्यक्ति के भीतर जो घटता है, वह लोक-लोक में दूर-दूर तक प्रतिध्वनित हो जाता है। उसकी प्रतिछाया और प्रतिध्वनियां दूर-दूर तक गूंजने लगती हैं।

इन तीन दिनों में इन तीन सूत्रों पर मुझे बात करनी है। आज पहले सूत्र पर ही आपसे बात करूंगा। वे कौन से कारण हैं, जिसके कारण मनुष्य एक रिक्त और एक शून्य, एक ना-कुछ, एक खाली इंसान की तरह रह जाता है। एक ऐसे बीज की तरह रह जाता है, जो कि अंकुरित हो सकता था, जिसमें फूल लग सकते थे, जिससे सुगंध फैल सकती थी।

यह नहीं हुआ, बीज बीज ही रह गया, सड़ गया। उपलब्धि नहीं हुई, वह कहीं पहुंचा नहीं। कौन से कारण हैं जिनसे आदमी एक व्यर्थ बीज हो जाता है? कौन से कारण हैं कि आदमी उस वीणा की भांति पड़ा रह जाता है, जिसको किसी ने नहीं छेड़ा है, जिससे कभी कोई गीत पैदा नहीं हुआ? जिससे गीत पैदा हो सकता था, जो इसीलिए बनी थी कि गीत पैदा हो। लेकिन उस वीणा को कभी किसी ने छेड़ा ही नहीं, कभी किसी के प्राणों ने छुआ ही नहीं। किन कारणों से आदमी एक सोई हुई वीणा की तरह रह जाता है, उस संबंध में ही कुछ बात कहना चाहता हूं।

जो लोग जन्म को ही जीवन समझने लगते हैं वे चूक जाते हैं। जन्म जीवन नहीं है। जन्म केवल प्राण है, जीवन नहीं है। जन्म से कोई भी पैदा नहीं होता। पैदा होने के लिए फिर एक और जन्म भी लेना पड़ता है। मनुष्य के साथ ही यह अनूठी घटना घटती है। पशु-पक्षी जन्म के साथ ही जीवन ले लेते हैं। किसी कुत्ते को हम यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो। आदमी को कह सकते हैं कि तुम थोड़े कम आदमी हो। कुत्ते को हम नहीं कह सकते कि जीवन को उपलब्ध करो, सच्चे कुत्ते बनो! कुत्ता सच्चा होता ही है। वह पैदाइश के साथ ही पूरा पैदा होता है। वह पूरा पैदा होता है, वह रेडीमेड पैदा होता है, उसको कोई स्वतंत्रता नहीं है। वह जीवन में कुछ नहीं करता, जीवन उसे दान में मिलता है। सिर्फ मनुष्य की यह गरिमा है, लेकिन उसे ही हम अधिक लोग दुर्भाग्य बना लेते हैं। मनुष्य जन्म के साथ पूरा नहीं जन्मता, सिर्फ संभावना है, सिर्फ एक अवसर पैदा होता है। अगर हम चाहें तो इस अवसर का उपयोग करें और हम चाहें तो वह अवसर खो सकता है।

जन्म के बाद जीवन को अर्जित करना होता है। मनुष्यता अर्जित है--श्रम से, संकल्प से, साधना से उपलब्ध है। इसीलिए मनुष्यों में इतने प्रकार के मनुष्य हो सकते हैं। उसमें गोडसे हो सकते हैं, उसमें गांधी हो सकते हैं। उसमें रावण हो सकता है, उसमें राम हो सकते हैं। उसमें जुदास हो सकता है, उसमें जीसस क्राइस्ट हो सकते हैं। उसमें ठीक नरक को छूने वाली प्रतिभाएं हो सकती हैं, उसमें स्वर्ग की सुगंध देने वाले व्यक्ति हो सकते हैं। उसमें निएनतम गहराइयों में उतर गए, अंधकार में डूब गए लोग हो सकते हैं; उसमें सूर्य की तरफ उड़ान लेते हुए, प्रकाश से भरी हुई आत्माएं हो सकती हैं।

मनुष्य एक अनंत संभावना है। वह दोनों छोर छू सकता है। वह पाताल छू सकता है, वह आकाश छू सकता है। और जन्म के साथ वह केवल संभावना लेकर पैदा हो सकता है छूने की। छूने की संभावना मात्र लेकर पैदा होता है--उड़ने की संभावना, चलने की संभावना--लेकिन मंजिल उसके हाथ में नहीं होती। वह पूरब भी जा सकता है और पश्चिम भी जा सकता है।

मुझे एक घटना स्मरण आती है।

एक बहुत बड़ा रोम में चित्रकार हुआ। मरते समय उससे किसी ने पूछा कि तुमने अपने जीवन के सबसे महान चित्र कौन से बनाए, कितने बनाए? उसने कहा, मैंने अपने जीवन के दो महान चित्र बनाए--एक जब मैं

जवान था और एक अभी जब मैं बूढ़ा हो गया हूं। पूछने वाले ने पूछा कि वे दो कौन से चित्र हैं? उस चित्रकार ने कहा, और तुएहें हैरानी होगी उन चित्रों की कहानी सुन कर। मैं तुएहें उनकी कहानी सुनाना चाहता हूं। तभी तुम समझ सकोगे कि उन चित्रों को मैं महान क्यों कहता हूं।

जब मैं जवान था, तब मैं एक ऐसे आदमी की खोज में निकला कि जिसके चेहरे में ईश्वर की झलक मिलती हो, जिसकी आंखों में अलौकिक के दर्शन होते हों, जो साकार प्रेम और प्रकाश हो। मैं उसकी खोज में निकला, ताकि मैं परमात्मा की छवि अंकित कर सकूं। और वर्षों खोजने के बाद, एक छोटे से गांव में एक पहाड़ी झरने के पास मैंने एक चरवाहे में वह झलक देखी। वह बांसुरी बजाता था और उसकी भेड़-बकरियां चरती थीं। उसमें मैंने झलक देखी उस आनंद की, उस अमृत की। और मैंने उसका एक चित्र बनाया। उस चित्र को मैंने "ईश्वर की छवि" नाम दिया। उस चित्र की इतनी प्रशंसा हुई, उसकी हजारों प्रतियां बनीं और देश के कोने-कोने में पहुंच गईं।

बीस वर्ष बाद, उस चित्रकार ने कहा, जब मैं बूढ़ा हो गया, तो मेरे मन में एक ख्याल और आया--ईश्वर की छवि तो मैंने बनाई, लेकिन शैतान की छवि मैं नहीं बना पाया। जाने के पहले मैं एक आदमी को खोजूं, जिसकी आंखों में, जिसके चेहरे में शैतान की छाया हो। मैं एक चित्र और बनाऊं, जिसे मैं "शैतान की छवि" कह सकूं। मरने के पहले ये दोनों चित्र आदमी की पूरी तस्वीर बन जाएंगे।

मैं फिर बुढ़ापे में गांव-गांव गया। बहुत जगह खोजा--पागलखानों में, शराबघरों में, जुआघरों में--उस आदमी को खोजा जिसकी आंख में अंधकार के सारे लक्षण हों, जिसके चेहरे पर हिंसा और क्रूरता मूर्ति बन गई हो। और एक कारागृह में मुझे वह आदमी मिल गया। उस आदमी ने सात हत्याएं की थीं। और वह मृत्यु की सजा उसे मिली थी, अब वह प्रतीक्षा कर रहा था फांसी की। उसके जैसा चेहरा असंभव था खोज लेना। उतनी हिंसा, उतना खून, उतनी घृणा, उतनी ईर्ष्या शायद ही किसी मनुष्य के चेहरे पर हो।

उस चित्रकार ने कहा, मैंने उसकी छवि बनाई। जिस दिन वह चित्र पूरा बन गया, तो मैं बीस वर्ष पहले बनाए हुए अपने उस चित्र को भी लेकर कारागृह में पहुंचा, दोनों चित्रों को साथ रख कर देखने के लिए कि कौन सा चित्र श्रेष्ठ है? कला की दृष्टि से कौन ज्यादा मूल्यवान है? और जब मैं उन चित्रों को देखता था, तो मुझे सुनाई पड़ा कि जैसे कोई रो रहा है। आंख उठा कर देखा तो वह कैदी जिसका चित्र बनाया था, वह आंख झपे हुए रो रहा है और उसकी आंखों से आंसू टपक रहे हैं।

तो मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने उससे पूछा कि तुम क्यों रोते हो? तुएहें क्या तकलीफ हुई? क्या मेरे चित्र पसंद नहीं आए?

उस आदमी ने आंखें उठाईं और उसने कहा, चित्र मुझे बहुत पसंद आए, लेकिन शायद तुम पहचान नहीं पाए, पहला चित्र भी तुमने मेरा ही बनाया था, मैं वही आदमी हूं। बीस साल पहले नदी के किनारे बांसुरी बजाते हुए तुएहें जो मिला था वह मैं ही हूं।

ऐसी संभावना है एक ही मनुष्य की! ऐसी संभावना है दोनों यात्राओं की! एक-एक मनुष्य एक अपरिचित यात्रा का पथ है, वह नीचे भी जा सकता और ऊपर भी। जन्म के साथ केवल द्वार खुलता है यात्रा का, फिर हम यात्रा पर निकलते हैं।

लेकिन जो लोग जन्म को ही अंत समझ लेते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है। और हममें से अधिक लोगों ने जन्म को ही अंत समझ लिया है। हम पैदा हो गए जैसे बात पूरी हो गई। जैसे पर्याप्त हो गया, यह काफी हो गया कि हम पैदा हो गए, जीवन हमें मिल गया। जीवन हमें पैदा होते से नहीं मिल जाता, बल्कि सच्चाई

उलटी है, जन्म से जो हमें मिलती है, वह मृत्यु है, जीवन नहीं। जन्म के साथ जो हमें उपलब्ध होता है वह मरण की प्रक्रिया है, क्योंकि जन्म के साथ ही हमारी मृत्यु का आगमन शुरू हो जाता है। हम जन्मे नहीं और मौत आनी शुरू हो जाती है। जन्म का दिन और मौत का दिन एक ही साथ घटित हो जाते हैं।

आप शायद सोचते होंगे कि मौत किसी दिन आती है आकस्मिक, तो आप गलती में हैं। मौत कहीं बाहर से नहीं आती है, जन्म के साथ आपके भीतर विकसित होती रहती है। आप रोज मरते रहते हैं, हम सब रोज मरते रहते हैं, प्रतिपल हम मरते चले जाते हैं, मरते चले जाते हैं। एक दिन यह मरने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है और हम समाप्त हो जाते हैं।

जिसे हम जन्म समझते हैं, जो जानते हैं वे उसे मरण का प्रारंभ कहते हैं। वह मृत्यु की शुरुआत है। सत्तर वर्ष लगेंगे मृत्यु को पूरा हो जाने में। जो बीज आप अभी अपने बगीचे में बो आए हैं, हो सकता है सत्तर वर्ष लगें उसमें, पूरा वृक्ष बन जाने में। लेकिन वह बीज में वृक्ष छिपा हुआ है, जन्म में मौत छिपी हुई है। और हम जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं, और फिर उसको ही जीवन मान कर जीते चले जाते हैं, तो हम व्यर्थ हो जाते हैं। जन्म जीवन नहीं है, जीवन अर्जित करना होता है, उपलब्ध करना होता है। जन्म केवल मौका है। जीवन अर्जित भी किया जा सकता है और खोया भी जा सकता है।

मैं धार्मिक मनुष्य उसको कहता हूं, जो जीवन की अर्जन की प्रक्रिया में संलग्न है; उसको नहीं, जो मंदिर जा रहा है; उसको नहीं, जो सुबह गीता और कुरान पढ़ रहा है; उसको नहीं, जिसने जनेऊ पहन रखा है, चोटी बढ़ा रखी है; उसको नहीं, जो मस्जिद में जा रहा है और गिरजे में जा रहा है; उससे कोई धार्मिक होने का अनिवार्य संबंध नहीं है।

धार्मिक होने का अनिवार्य संबंध इस बात से है कि जो जीवन के सृजन में संलग्न है; जिसने जीवन को स्वीकार नहीं कर लिया, जो जीवन को निर्मित करने में लगा है। जो प्रतिपल मृत्यु से जूझ रहा है और अमृत की खोज कर रहा है। जो चुपचाप नहीं बैठा है कि मौत आ जाए और बहा कर ले जाए। जो सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। जो जूझ रहा है, जो एक संघर्ष कर रहा है कि मृत्यु के इस घिराव के बीच में अमृत को कैसे उपलब्ध हो सकता हूं? मैं उसे कैसे पा सकता हूं जिसकी कोई मृत्यु नहीं? क्योंकि वही जीवन हो सकता है। वही जीवन है।

लेकिन हम जो करते हैं--हम सब जूझते हैं, संघर्ष करते हैं--अमृत को पाने के लिए नहीं। हम सब युद्ध में, संघर्ष में रत हैं, हम चौबीस घंटे द्वंद्व में, संघर्ष में, युद्ध में खड़े हैं। लेकिन उसके लिए नहीं जो अमृत है, उसके लिए नहीं जो जीवन है। शायद हम एक उलटे ही काम में लगे हैं, हम सिर्फ मौत से बचने के काम में लगे हैं। मौत से बचने की प्रक्रिया से कोई भी मौत से बच नहीं सकता। जीवन को जो उपलब्ध कर लेता है वह मौत से बच जाता है। लेकिन मौत से बचने के लिए जो भागता रहता है, वह मौत के मुंह में ही पहुंच जाता है।

एक मुझे स्मरण आती है घटना। एक सम्राट ने एक रात सपना देखा। उसने स्वप्न देखा कि अंधेरे में कोई, रात के अंधेरे में, सपने में, नींद में कोई काली छाया उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ी है। तो उसने चौंक कर उससे पूछा कि तुम कौन हो? उस छाया ने कहा, मैं तुएहारी मृत्यु हूं, और कल संध्या सूरज के डूबने के साथ मैं आ रही हूं। तुएहें खबर देने आई हूं, ठीक जगह पर, ठीक समय पर मिल जाना। उस सम्राट ने कहा, मृत्यु! और वह पूछना चाहता था कि कौन सी ठीक जगह है? इसलिए नहीं कि वहां पहुंच जाता, बल्कि इसलिए कि वहां न पहुंचता, वहां से बच जाता। लेकिन तब तक सपना टूट गया। वह पूछ नहीं पाया कि वह कौन सी ठीक जगह है जहां मुझे पहुंचना है।

अब वह बहुत परेशान हुआ, सपना टूट गया, छाया विलीन हो गई, अब किससे पूछे? और कल सांझ सूरज के डूबने के साथ मौत आने को है। निश्चिंत रहा भी नहीं जा सकता। रात ही नगर के जो प्रसिद्ध ज्योतिषी थे, स्वप्नविद थे, विद्वान थे, उन सबको खबर भेज दी कि आप इसी समय आ जाएं, मैं बहुत संकट में हूं।

नगर के पंडित अपनी-अपनी किताबें लेकर हाजिर हो गए। पंडितों के पास सिवाय किताबों के और कुछ होता भी नहीं। वे बेचारे अपनी किताबें ले आए। और आकर अर्थ निकालने लगे, खोजने लगे। राजा ने कहा, ऐसा स्वप्न देखा, इसका क्या अर्थ है? क्या मौत आने वाली है? और अगर आने वाली है, तो मैं बचने के लिए क्या करूं?

आप भी होते तो आप भी यही पूछते कि अगर मौत आने वाली है तो मैं बचने के लिए क्या करूं? यह बुनियादी रूप से गलत प्रश्न है। मौत से बचने का सवाल नहीं है, मौत में आप खड़े हैं। मौत से बचने का सवाल नहीं है, मौत में तो आप उसी दिन से सिएममलित हो गए जिस दिन जन्म हुआ। अगर जन्म से बचते तो मौत से बच सकते थे, अब मौत से बचने का कोई उपाय नहीं, वह तो जन्म के साथ घटित हो गई। इसलिए जो जन्म गया, वह मरेगा, उससे मौत से बचने की दौड़ फिजूल है। लेकिन आप भी यही पूछते कि मौत से बचने के लिए मैं क्या करूं?

जो आदमी यह नहीं पूछता और यह पूछता है कि जीवन पाने के लिए क्या करूं, उस आदमी को मैं धार्मिक कहता हूं। जो आदमी पूछता है, मौत से बचने के लिए मैं क्या करूं, उस आदमी को मैं अधार्मिक कहता हूं। क्योंकि मौत से बचने की कोशिश में वह जो भी उपाय करता है, वे सब अधर्म में ले जाते हैं। वह बड़ा महल बनाता है, बड़ी मजबूत दीवालें खड़ी करता है, वह धन इकट्ठा करता है, वह तलवारों के पहरे लगाता है। वह सुरक्षा और सिक्योरिटी के सारे इंतजाम करता है कि कहीं मैं मर न जाऊं! और इस सारे इंतजाम में उसे अधार्मिक होना पड़ता है।

उस राजा ने पूछा कि मैं मौत से बचने के लिए क्या करूं?

उन पंडितों ने कहा, ठहरें! पहले हम स्वप्न का अर्थ निकाल लें, उसकी व्याख्या कर लें--कि स्वप्न का अर्थ क्या है? क्योंकि हम आपस में सहमत नहीं हैं। हमारा शास्त्र कुछ और कहता है, इसका शास्त्र कुछ और कहता है, उसका शास्त्र कुछ और कहता है। सभी शास्त्र अलग-अलग भाषा में बोलते हैं।

वे पंडित अपने शास्त्रों के विवाद में लग गए। सुबह हो गई, सूरज निकल आया, राजा घबड़ाया! उनके विवाद से मामला और भी उलझता हुआ मालूम पड़ता था, सुलझता हुआ नहीं। जैसा कि पंडितों के विवाद से सभी मामले उलझते हुए मालूम पड़ते हैं। स्वप्न जब देखा था, तब कुछ स्पष्ट भी था, अब इनकी बातचीत सुन कर और अस्पष्ट हो गया। और वे ऐसी गुरु-गंभीर चर्चाओं में तल्लीन हो गए थे, ऐसे सिद्धांतों की बातें कर रहे थे, जिससे स्वप्न का कोई सीधा संबंध नहीं मालूम पड़ता था।

उस राजा ने बार-बार कहा कि देखो, सूरज निकल आया! और जब सूरज निकल आया तो डूबने में देर कितनी लगेगी! सांझ करीब आती चली जाती है, और मुझे बचना है मौत से, और अभी तुम स्वप्न का अर्थ भी नहीं निकाल पाए? फिर उसके बाद यह भी तो खोजना है कि मैं मौत से कैसे बचूं?

उन लोगों ने कहा, पहले स्वप्न का अर्थ निर्णीत हो जाए, इसके बाद बचने का उपाय हो सकता है।

राजा का एक वृद्ध नौकर था, वह भी बैठा हुआ यह सब सुनता था। तो उसने राजा के कान में कहा कि आपको शायद पता नहीं, आज तक पंडित किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए हैं, पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में पंडित अब तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए हैं। इनसे कोई आशा नहीं कि ये शाम तक निष्कर्ष

पर पहुंच जाएं। और शाम आ जाएगी, वह इनके निष्कर्ष के लिए रुकेगी नहीं, और मौत भी इनके निष्कर्ष के लिए नहीं रुकेगी। इसलिए मेरी तो सलाह यह है--इनको निष्कर्ष निकालने दें, आपके पास तेज घोड़ा हो कोई तो उसे लेकर आप भागना शुरू कर दें। कम से कम इस महल से दूर निकल जाएं, इस काले महल से हट जाएं, जहां कि मौत ने आपके ऊपर छाया डाली है। जहां मौत ने आपके कंधे पर हाथ रखा वहां से भागें, इतना तो तय है कि यहां से भाग जाएं। इतनी बड़ी दुनिया है, कहीं भी भाग जाएं, लेकिन यहां से भाग जाएं।

यह बात युक्तिपूर्ण मालूम हुई। यह बात ठीक मालूम हुई। आप भी क्या करते! कोई भी क्या करता! मौत सामने हो तो भागने के सिवाय कुछ सूझता ही नहीं। जब भी मौत सामने होती है, आदमी भागता है। भागने के उपाय अलग-अलग होते हैं, लेकिन आदमी भागता है। उस राजा ने भी सोचा कि बात ठीक है, भाग जाना ही उचित है। उसने तेज घोड़ा बुलाया--उसके पास तेज से तेज घोड़े थे--और उसने भागना शुरू किया।

घोड़े पर बैठते समय, भागते समय, उस पत्नी की उसे याद भी न आई जिससे उसने कहा था कि तेरे बिना मैं एक क्षण भी नहीं जी सकता हूं। याद भी नहीं आई। विदा के समय किसे किसकी याद आती है! वे जीवन में कही गई बातें थीं खिलवाड़ में। मौत सारे खिलवाड़ को बिगाड़ देती है। सारी बातचीत, सब नष्ट हो जाती है। उन मित्रों का कोई स्मरण न आया जिनके बिना एक पल अच्छा नहीं लगता था। आज घोड़ा था और वह था। और घोड़े से भी इतना ही नाता था कि वह तेज दौड़ता था, और कोई नाता नहीं था। भागते हुए आदमी का किसी से कोई नाता नहीं होता, सिवाय इसके कि वह उसकी सवारी होती है, साधन होता है, उसके शोषण का अवसर होता है।

वह घोड़े को लेकर भाग चला है, भाग चला है, भाग चला है... सैकड़ों मील पार हो गए हैं, न उसे आज भूख है, न आज उसे प्यास है। क्योंकि एक क्षण को भी पानी पीने के लिए कहीं रुकना, एक क्षण गंवाना है; उतनी देर में न मालूम कितने दूर निकल जाए! थोड़ी देर को रुक कर विश्राम करना खतरनाक है, क्योंकि मौत पीछे पड़ी हो तो विश्राम का समय कहां?

क्या आपको सारी दुनिया में हर आदमी इसी तरह भागता हुआ मालूम नहीं पड़ता कि उसे विश्राम का कोई मौका नहीं है, समय नहीं है, अवसर नहीं है, फुर्सत कहां! किसी से कहो कि कभी प्रार्थना करते हैं? कभी ध्यान करते हैं? कभी प्रभु का स्मरण करते हैं? वे कहते हैं, फुर्सत कहां!

जब मौत पीछे पड़ी हो तो किसी को भी फुर्सत नहीं होती। अगर जीवन मिल जाए तो फुर्सत ही फुर्सत है, लेकिन मौत पीछे पड़ी हो तो फुर्सत कहां!

वह राजा भागता चला गया। फिर सांझ होने लगी और सूरज ढलने लगा, उसने राहत की सांस ली, वह सैकड़ों मील दूर निकल आया था। उसने घोड़े को धन्यवाद दिया और कहा कि प्यारे, तुझसे मुझे जो आशा थी तूने पूरी की। जिस दिन के लिए तुझे मैंने खरीदा था, कि किसी दिन जरूरत पड़े तेरी तेज चाल की, तो आज तू काम आ गया। मैं तेरा कितना धन्यवाद करूं!

उसे पता भी नहीं कि वह क्या कह रहा है। और फिर जाकर उसने एक वृक्ष से घोड़े को बांधा। सूरज ढलने लगा है, वह बिल्कुल डूबने के करीब आ गया। वह घोड़े को बांध ही रहा है और उसे लगा कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा है। उसने लौट कर देखा, वही काली छाया! वह तो घबड़ाया, उसने कहा कि तुम! तुम कौन हो? उसके प्राण कंप गए, कि क्या दिन भर की दौड़ व्यर्थ हो गई?

उस मृत्यु ने कहा, पहचाने नहीं? रात ही तो मैं आई थी और मैंने खबर दी थी। तुएहारे घोड़े का जितना धन्यवाद करूं उतना थोड़ा है। ठीक जगह पर, ठीक समय पर ले आया। मैं बहुत चिंतित थी कि तुम यहां तक

पहुंच पाओगे कि नहीं? इस झाड़ के नीचे मरना बदा था। और मैं चिंतित थी, बहुत परेशान थी कि फासला ज्यादा है, तुम आ पाओगे कि नहीं आ पाओगे? लेकिन घोड़े को धन्यवाद, तुएहारे घोड़े ने ठीक समय पर पहुंचा दिया है।

उस राजा के मन पर क्या बीती होगी! दो क्षण पहले उसने भी घोड़े को धन्यवाद दिया था। जिनको दो क्षण पहले आदमी मित्र समझता है, दो क्षण बाद पता चलता है कि शत्रु हो गए। जिनको दो क्षण पहले समझा था कि पैर के आधार हैं, दो क्षण बाद पता चलता है कि वे ही गड्ढे में गिरा गए। जिनको समझा था कि जीवन की सुरक्षा हैं, वे ही असुरक्षा बन जाते हैं। और जिसको जीवन समझा था वही मौत हो जाती है। लेकिन दो क्षण पहले कोई पता नहीं होता है। और उस राजा ने सोचा था कि बचने के लिए भाग रहा हूं। उसे पता भी नहीं था कि जिससे बचने को भाग रहा था, प्रतिपल वह उसी में पहुंचा चला जा रहा था।

जीवन भर आदमी करता क्या है? मौत से भागता है। जीवन भर मौत से भागता है। और आखिर में पहुंचता कहां है? बस मौत में पहुंच जाता है। आज तक किसी आदमी को कहीं और पहुंचते देखा है? हर आदमी मौत में पहुंच जाता है। और हर आदमी मौत से ही बचने को भागता रहता है। मौत की तरफ आंख बंद कर लेते हैं हम, मौत की तरफ पीठ फेर लेते हैं। सड़क पर कोई अरथी निकलती हो तो मां अपने बेटे को भीतर बुलाती है, भीतर आ जा, दरवाजे बंद कर दे, कोई मर गया है, देखना ठीक नहीं है।

मौत से हम आंख चुराते हैं। मरघट को गांव के बीच में नहीं बनाते, गांव के बाहर दूर बनाते हैं, किसी को दिखाई न पड़े। और मरघट बीच में ही बना है, चाहे दिखाई पड़े और चाहे दिखाई न पड़े। चाहे आंख चुराओ और चाहे बचाओ, मौत से अतिरिक्त और कुछ भी निश्चित नहीं है; मौत एकमात्र सुनिश्चित तथ्य है। बाकी सब अनिश्चित हो सकता है, लेकिन मौत सुनिश्चित है। मौत क्यों सुनिश्चित है? मौत इसीलिए सुनिश्चित है कि वह जन्म के साथ ही घट गई! आप सोच रहे हैं वह आगे घटने वाली है। जो आगे घटने वाला है वह बदला जा सकता है; लेकिन जो पीछे ही घट गया उसे बदलने का कोई भी उपाय नहीं। जो आगे होने वाला है उसे बदला जा सकता है, वह अभी नहीं हुआ; लेकिन जो पीछे ही हो चुका है, उसे बदलने का कोई रास्ता नहीं।

मौत घट चुकी है जन्म के साथ, लेकिन उसका कोई स्मरण नहीं है। और उस मौत की ही लंबी प्रक्रिया को जिसे हम जीवन कहते हैं, यह जो ग्रेजुअल डेथ है, यह जो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आने वाली मौत है, इस मौत को ही हम अगर जीवन समझ लें, तो जीवन खाली रह जाता है, रिक्त रह जाता है। और जिस दिन प्रभु के सामने खड़े होंगे उस दिन मकान खाली होगा और अंधेरे से भरा होगा। जो जीवन आनंद से भर सकता था, वह किसी भी चीज से भर नहीं पाता। भर भी नहीं सकता है। जीवन के अनुभव के बिना और जीवन की उपलब्धि के बिना, उस तत्व के अनुभव के बिना जिसकी कोई मृत्यु नहीं और उस दिशा को उपलब्ध किए बिना जिसका कोई अंत नहीं, कोई जीवन आनंद से नहीं भर सकता।

आनंद का अनुभव अमृत के अनुभव की छाया है। केवल वे ही लोग आनंद को उपलब्ध होते हैं जो अमृत के अनुभव को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन उस अनुभव को निर्मित करना होता है और विकसित करना होता है। और वे लोग जो जन्म को ही सब कुछ मान लेते हैं, वहीं समाप्त हो जाते हैं, उनके विकास की सारी संभावना समाप्त हो जाती है।

क्या आपने जन्म लेने को ही अपने होने की इति मान ली है? क्या आपने समझ लिया कि हो गई बात? अगर ऐसा मान लिया है, तो आप मरने के ही बहुत पहले मर चुके हैं। आपकी मृत्यु हो ही चुकी है। आप एक प्रेत

की तरह जीवित हैं। और पृथ्वी पर अधिक लोग प्रेत की भांति जीवित हैं। उनके जीवन का कोई भविष्य नहीं; क्योंकि कोई सृजन नहीं, कोई क्रिएटिव एफर्ट नहीं कि वे अपने जीवन को निर्मित करें और विकसित करें।

एक सूफी फकीर था। वह बहुत भूखा था। वह दिन भर भूखा रहा, लेकिन उसने आज यह तय कर रखा था कि आज मैं परमात्मा से ही जब मुझे रोटी मिलेगी तभी मैं स्वीकार करूंगा। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए, सप्ताह बीत गया और महीना बीतने को आने लगा, वह भूखा ही था। भूख बढ़ती चली गई, और उसके प्राणों की पुकार भी बढ़ती चली गई। तीसवें दिन की रात उसे सपने में भगवान दिखाई पड़े। तो उन्होंने पूछा कि तू चाहता क्या है? कहा कि मैं भोजन चाहता हूं, लेकिन आपसे चाहता हूं। उन्होंने कहा, तू जा और फलां-फलां जगह--वहां पानी भी है, वहां नमक भी है, वहां गेहूं भी है, वहां सब चीजें मौजूद हैं--वहां तुझे भोजन मिल जाएगा, मैं तुझे वहां भेजता हूं।

वह आदमी नींद से उठा और उस जगह पहुंचा जहां की बात कही गई थी। एक कुएं के पास वह पहुंचा, वहां गेहूं का खेत लगा था, पास ही नमक की खदान थी, कुआं था। वह तीनों के बीच बैठ गया और सोचने लगा, इससे क्या होगा? मुझे भोजन चाहिए। एक दिन फिर बीत गया और दूसरी रात आ गई, और उसने फिर सपने में भगवान को देखा। उन्होंने कहा, तू भोजन बनाता क्यों नहीं? उसने कहा, मुझे भोजन चाहिए। तो भगवान ने कहा कि तू गेहूं को पीस, आटा बना, नमक निकाल, पानी कुएं से खींच, फिर तीनों को मिला और भोजन बना ले।

दूसरे दिन उसने इतना किया, गेहूं को पीस कर आटा बनाया, नमक निकाला, पानी निकाल कर तीनों को मिला कर बैठ गया। लेकिन भोजन अभी भी तैयार नहीं हुआ था, वह फिर भूखा था। और फिर रात उसे सपने में भगवान दिखाई पड़े कि तू भोजन बनाता क्यों नहीं? उसने कहा, मैंने तीनों मिला लिए, लेकिन अभी भोजन नहीं बना। भगवान ने कहा कि आग भी उपलब्ध है और तू सेंक, रोटी बनेगी। और उसने तीसरे दिन रोटी भी बनाई, लेकिन रोटी रख कर वह बैठा रहा। और रात फिर सपने में उसे भगवान दिखाई पड़े कि पागल, तू खाता क्यों नहीं? तो उसने कहा कि मुझे आज्ञा नहीं थी आपकी। मैं समझा कि अभी कुछ और बाकी रह गया, तो मैं फिर चुप हूं, मैंने रोटी बना कर रख ली है। और भगवान ने उसको कहा कि तू उन मनुष्यों की तरह है जिन्हें मैं सब दे देता हूं, लेकिन जो प्रतीक्षा ही करते रहते हैं कि कोई बना दे, कोई कुछ कर दे, कोई कुछ हो जाए, कोई आदेश आ जाए। जिनके पास सब कुछ है--पानी है, नमक है, गेहूं है, लेकिन जो रोटी नहीं बना पाते हैं। और बना भी लेते हैं तो उससे अपनी भूख नहीं मिटा पाते हैं।

जीवन एक अवसर है, जहां सब उपलब्ध है। वह सब उपलब्ध है जो हमें आनंद से भर सके। वह सब उपलब्ध है जो हमारी तृप्ति बन जाए। वह सब उपलब्ध है जिससे हम आप्तकाम हो जाएं, जिससे हम वह पा लें जिसे पा लेने के बाद कुछ भी पाने को शेष नहीं रह जाता। लेकिन शायद हम कुछ भी करने को राजी नहीं हैं; इसलिए हम व्यर्थ हो जाते हैं।

तो पहला सूत्रः जन्म को ही सब कुछ मत मान लेना। जन्म के बाद चाहिए तीव्र असंतोष, डिसकंटेंट। जन्म के साथ चाहिए एक तीव्र पीड़ा कि मैं जीवन को कैसे निर्मित करूं? लेकिन हम जन्म के बाद पूछना शुरू कर देते हैं--जीवन में रस नहीं आ रहा, जीवन में आनंद नहीं आ रहा, जीवन का उद्देश्य क्या है? मैं गांव-गांव जाता हूं, युवक मुझे पूछते हैं, बच्चे मुझे पूछते हैं, बूढ़े मुझे पूछते हैं--जीवन में आनंद नहीं?

जीवन में आनंद आता नहीं, लाना पड़ता है। जीवन में आनंद मिलता नहीं, अर्जित करना पड़ता है। जीवन में आनंद कहीं से बरस नहीं जाता, भीतर से फोड़ना पड़ता है। आनंद प्रयत्न है, आनंद संकल्प है, आनंद श्रम है,

आनंद एक साधना है। और हम ऐसे पूछते हैं कि जीवन में आनंद नहीं; जैसे हमने जन्म ले लिया तो हमने सारी शर्तें पूरी कर दीं, अब हमको आनंद उपलब्ध हो जाना चाहिए। ऐसे आनंद न कभी उपलब्ध हुआ है, न कभी उपलब्ध हो सकता है।

पहला सूत्रः जन्म को सब कुछ नहीं मान लेना है।

दूसरा सूत्रः जीवन को मनुष्य इस भांति स्वीकार करता है कि उस स्वीकृति के कारण ही जीवन से आनंद के पैदा होने की सारी गुंजाइशें टूट जाती हैं, सारे द्वार बंद हो जाते हैं।

एक मंदिर की घटना मुझे स्मरण आती है। एक मंदिर बन रहा था। सैकड़ों मजदूर पत्थर तोड़ते थे, मूर्तियां बना रहे थे, सीढ़ियां गढ़ रहे थे, ईंटें बना रहे थे। मैं उस मंदिर के पास घूमता हुआ निकल गया, और एक मजदूर को मैंने पूछा कि क्या कर रहे हो दोस्त? उस मजदूर ने क्रोध से भरी हुई आंखें मेरी तरफ उठाईं और कहा, अंधे हैं आप? दिखाई नहीं पड़ता है कि क्या कर रहा हूं? पत्थर तोड़ रहा हूं!

मैं तो भयभीत हो गया, ऐसी आशा न थी कि सीधे से, सहज से प्रश्न का ऐसा उत्तर मिलेगा। फिर मुझे ख्याल आया, पत्थर तोड़ने वाला आदमी क्रोधित ही तो हो सकता है और क्या हो सकता है। पत्थर तोड़ना कोई आनंद कैसे होगा? फिर मुझे उस आदमी पर दया ही आई, ठीक ही है, जो पत्थर तोड़ रहा है वह क्रोध से भरा हुआ ही हो सकता है। हालांकि उलटा भी सच है, जो क्रोध से भरा हुआ है वह कुछ भी करे, उसका जीवन पत्थर तोड़ने जैसा जीवन ही होता है।

मैं आगे बढ़ गया और मैंने दूसरे आदमी को पूछा। वह भी पत्थर तोड़ता था, लेकिन वह कुछ भिन्न मालूम पड़ता था। उसकी आंखें उदास थीं, उसका चेहरा लटका हुआ था, वह ऐसा था जैसे जीवन एक भार हो। मैंने उससे पूछा कि दोस्त, क्या करते हो? उसने बामुश्किल, जैसे बड़ी कठिनाई से उत्तर दिया, जैसे बड़ी मजबूरी में, जैसे वह उत्तर न देना चाहता हो, ऐसा उसने धीरे से आंखें उठाईं, मुझे देखा भी नहीं और कहा, पत्थर तोड़ता हूं, बच्चों की रोटी-रोजी कमा रहा हूं।

वह इतना उदास था, इतना बोझिल। फिर मुझे लगा, ठीक ही है, जो बच्चों की रोटी-रोजी कमा रहा है, वह बहुत आनंदित कैसे हो सकता है? रोटी-रोजी कमाना कोई बहुत बड़ा आनंद नहीं हो सकता, एक बोझ का काम ही हो सकता है।

फिर मैंने तीसरे एक आदमी को पूछा। वह भी पत्थर तोड़ता था। और पत्थर तोड़ने के साथ गीत भी गुनगुना रहा था; किसी मौज में, किसी मस्ती में डूबा हुआ था। मैंने उससे पूछा कि दोस्त, क्या करते हो? उसने खुशी से, आनंद से भरी हुई आंखें ऊपर उठाईं, जैसे उनसे फूल झड़ते हों, और मुझसे कहा, क्या कर रहा हूं! देखते नहीं हैं, भगवान का मंदिर बना रहा हूं। वह फिर वापस पत्थर तोड़ने लगा। फिर मुझे ख्याल आया कि ठीक ही है, जो भगवान का मंदिर बनाता है, वह आनंद से नहीं भरेगा तो और क्या होगा।

लेकिन वे तीनों ही पत्थर तोड़ रहे थे; वे तीनों एक ही काम कर रहे थे; लेकिन उन तीनों के दृष्टिकोण अलग-अलग थे। एक जीवन के प्रति क्रोध से भरा हुआ था। एक जीवन के प्रति उदासी से भरा हुआ था। एक जीवन के प्रति अहोभाव से भरा हुआ था, एक कृतज्ञता के भाव से, एक ग्रेटीट्यूड के भाव से कि मैं भगवान का मंदिर बना रहा हूं। और जब कोई आदमी अहोभाव से भर जाता है तो उसके जीवन में आनंद के द्वार खुलने की संभावना पैदा होती है। हमारे भीतर वही आता है, जिसे हम बुलाते हैं। हम जिसे आमंत्रित करते हैं वही हमारा अतिथि बनता है। हम जिसे पुकारते हैं और जिसके लिए प्यासे हो जाते हैं, वही धारा हमारी तरफ बहती हुई चली आती है।

इसलिए स्मरण रखना, अगर जीवन दुख मालूम पड़ रहा हो तो जान लेना--जैसे दो और दो चार होते हैं, ऐसा ही दुख को आप आमंत्रित करते रहे होंगे। आपका जीवन का दृष्टिकोण दुखवादी का दृष्टिकोण रहा होगा। आपने बुलाया होगा दुख को इसलिए दुख आ गया है। अगर आप पीड़ित हों तो जान लेना, यह उतना ही वैज्ञानिक नियम है जितना कोई और नियम विज्ञान का होगा, कि आप जो हैं वह आपके दृष्टिकोण का अंतिम फल है।

जीवन उदास है, पीड़ित है, दुखी है, चिंतित और संतापग्रस्त है, अंधेरे से भरा है, तो जान लेना कि आपने जाने-अनजाने, जागते-सोते अंधकार को निमंत्रण दिया है, आपने दुख को बुलावा दिया है। आपके देखने का ढंग, आपके मन के द्वार सूरज के लिए नहीं खुले, बल्कि सूरज जब आया तब आप अपने द्वार बंद करके बैठ गए।

ऐसे लोग हैं कि अगर फूल के पास उन्हें खड़ा किया जाए तो उन्हें फूल नहीं दिखाई पड़ेंगे, उन्हें कांटे दिखाई पड़ेंगे, और वे कांटों की गिनती करेंगे। और फिर कहेंगे कि बेकार है सब! इतनी बड़ी झाड़ी में एक गुलाब का फूल लगा है और लाख कांटे लगे हुए हैं। सब बेकार है, असार है जीवन, कुछ सार नहीं इसमें, कहीं मुश्किल से एक फूल खिलता है और लाख कांटे लग जाते हैं, फूल को तोड़ने जाओ तो कांटे ही कांटे मिलते हैं। और फिर फूल को तोड़ भी लो तो फायदा क्या है? थोड़ी देर में कुएहला जाता है। और कांटे कभी नहीं कुएहलाते, कांटे हमेशा ही तैयार रहते हैं। वे कहेंगे कि फूल में कोई सार्थकता नहीं। वैसे लोग हैं। और आप हंसना मत कि वैसा आदमी आपका पड़ोसी आदमी है। सौ में निन्यानबे मौके ये हैं कि आप ही वैसे आदमी हों। क्योंकि सौ में निन्यानबे से भी ज्यादा आदमी दुखी, उदास और पीड़ित हैं। उनके जीवन को देखने की सारी दृष्टि गलत और भ्रांत है।

एक कवि को किसी अपराध में एक कारागृह में बंद कर दिया गया था। उसका एक मित्र भी उसी अपराध में बंद किया गया था। वे दोनों जिस दिन कारागृह में बंद किए गए--पूर्णिमा की रात--वे दोनों सींकचों पर आकर खड़े हो गए। आकाश चांद से भरा, चांदनी बरसती हुई, ऐसी सुंदर रात, इतना सन्नाटा उस कारागृह का। लेकिन उसका साथी क्रोध से बोला कि कहां के रद्दी कारागृह में हमें बंद किया है! देखते हो तुम सामने, पानी भरा हुआ है, डबरा है, मच्छर पल गए हैं, गंदगी है।

उस दूसरे व्यक्ति ने कहा, दोस्त, तुमने याद दिलाया तो मुझे दिखाई पड़ा; मैं तो चांद को देखने में तल्लीन हो गया था, मुझे तो ख्याल भी नहीं था कि यहां कोई डबरा है। लेकिन चांद के होते हुए तुमने डबरा देख कैसे लिया? तुएहें डबरा दिखाई कैसे पड़ा? इतने बड़े चांद के होते हुए, इतने बड़े आकाश के होते हुए, इतनी चांदनी बरसती हो अनंत तक, तब तुएहें एक छोटा सा डबरा कैसे दिखाई पड़ा?

और उस दूसरे आदमी ने कहा कि तुमने कहा तो मैं डबरे को देख रहा हूं, लेकिन मुझे डबरे में भी चांद का प्रतिबिंब दिखाई पड़ रहा है। और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि आकाश का चांद होगा सुंदर, लेकिन डबरे का चांद भी अपने तरह का अनूठा है। और डबरे का चांद डबरे के कारण गंदा नहीं हो गया है; कोई चांद डबरे में जाने से गंदा नहीं हो जाता। यह तो सच है कि चांद जब डबरे में प्रतिफलित होता है तो डबरा पवित्र हो जाता है; लेकिन चांद गंदा नहीं हो जाता।

पर वह आदमी पूछने लगा कि मैं हैरान हूं, तुएहें चांद नहीं दिखाई पड़ा, आकाश नहीं दिखाई पड़ा; यह छोटा सा डबरा दिखाई पड़ा! कोई अनुपात भी नहीं है दोनों में। इतना बड़ा आकाश, इतनी चांदनी, इतना सा डबरा वह तुएहें दिखाई पड़ा!

लेकिन उस आदमी ने कहा, छोड़ो तुएहारा चांद और छोड़ो तुएहारी चांदनी! इस डबरे की वजह से आज रात भर मेरा सोना मुश्किल है।

ऐसे लोग हैं, सौ में निन्यानबे लोग ऐसे हैं। हम सब की जीवन को देखने की दृष्टि अंधेरी है, निगेटिव है, नकारात्मक है। वहां से देखते हैं जहां व्यर्थता है, वहां से देखते हैं जहां कांटे हैं, वहां से देखते हैं जहां बुरा है।

वर्धा में एक आदमी गांधी जी के आश्रम नया-नया आना शुरू हुआ था। आश्रम में रहने वाले भले सज्जन लोग थे। और सज्जनों को उसका आना अच्छा नहीं लगा। और सज्जनों ने गांधी को जाकर कहा कि यह आदमी अच्छा नहीं है; कोई कहता है मांस खाता है, कोई कहता है जुआ खेलता है, कोई कहता है शराब पीता है; यह आदमी संदिग्ध है। इसका यहां आना उचित नहीं है। गांधी ने कहा, यह आश्रम किसके लिए है? जो अच्छे हैं उनकी तो यहां आने की कोई जरूरत भी नहीं। एक डाक्टर अस्पताल खोले और कहे कि मरीज यहां नहीं आने देंगे, क्योंकि मरीज बीमारियां लाते हैं; यहां तो सिर्फ स्वस्थ आदमी आ सकते हैं। तो गांधी ने कहा, यह है किसके लिए? अगर तुम अच्छे हो तो तुम जाओ! लेकिन कोई बुरा है इस कारण उसको यहां से नहीं हटाया जा सकता।

उस दिन तो वे चुप हो गए। लेकिन मन ही मन में उन्हें बहुत बुरा लगा, इस तलाश में रहे कि उस आदमी के बाबत कोई ठोस सबूत मिले तो फिर गांधी को कहा जाए। फिर एक दिन ठोस सबूत भी मिल गया। वह आदमी शराबघर में बैठा हुआ शराब पी रहा था। गांधी टोपी लगाए हुए है खादी की, खादी के कपड़े पहने हुए है, शराब पी रहा है।

वे लोग भागे हुए आए और गांधी को आकर कहा कि अब आप... अब क्षमा कर दीजिए, अब बहुत हो चुका, वह आदमी शराबघर में शराब पी रहा है! और देख कर हमें इतना क्रोध आया कि खादी के कपड़े पहन कर शराबघर में बैठा हुआ है--खादी बदनाम हो रही है और आश्रम बदनाम हो रहा है और आप बदनाम हो रहे हैं!

गांधी कुछ सोचने लगे, और उनकी आंखें बंद हो गईं, और फिर उन्होंने आंखें खोलीं और कहा, अगर मुझे वह शराबघर में खादी पहने हुए शराब पीता दिखाई पड़ता तो मेरा हृदय खुशी से भर जाता और मैं भगवान को कहता कि मालूम होता है इस देश के अच्छे दिन आने वाले हैं, क्योंकि अब शराब पीने वाले लोगों ने भी खादी पहननी शुरू कर दी।

लेकिन वे लोग तो यह कहते थे कि एक खादी पहनने वाला शराब पी रहा है और गांधी कहने लगे कि एक शराब पीने वाला खादी पहन रहा है। और ये दोनों बातें एक ही आदमी कर रहा था। लेकिन देखने वाले दो तरफ से देख रहे थे--एक निगेटिव था देखना, एक पाजिटिव था; एक विधायक था, एक नकारात्मक था।

हम कहां से जिंदगी को देखते हैं?

और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि दुनिया के बहुत से अच्छे लोगों ने जिंदगी को गलत तरह से देखना सिखाया है। जिन लोगों ने भी कहा जिंदगी असार है, जिन लोगों ने कहा जीवन दुख है, जिन लोगों ने कहा जीवन छोड़ देने जैसा है, जिन लोगों ने कहा जीवन पाप है और जिन लोगों ने कहा कि जीवन कुछ भी नहीं, सब माया है, सब व्यर्थ है, सब असार है, उन सारे लोगों ने आपके मन में एक निगेटिव, एक नकारात्मक दृष्टि को जगह बना दी है, उन सारे लोगों ने मनुष्य को धार्मिक होने से रोका है। जिन लोगों ने भी जीवन का विरोध सिखाया है, जिन लोगों ने भी लाइफ निगेटिव आदतें डालीं हमारी और जिन्होंने जीवन के सब रस को, सब आनंद को निषेध किया, इनकार किया, उन सारे लोगों ने मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने वाली कड़ी से वंचित किया है। क्योंकि मनुष्य तो केवल पाजिटिविटी में--जब वह परिपूर्ण विधायक रूप से जीवन के रस को देखता

है, जब वह घने से घने अंधकार में एक प्रकाश की ज्योति को देखता है, जब वह कांटों से भरी झाड़ी में एक गुलाब के फूल को देखता है और यह कह पाता है भगवान को कि धन्यवाद, तू अदभुत है, यह जीवन चमत्कार है, इतने कांटों के बीच भी फूल पैदा हो जाता है, यह मिरेकल है! जब वह यह कह पाता है भगवान से तब वैसा आदमी जीवन के वे द्वार खोलता है जहां से अमृत का प्रवेश होगा।

अंधकार से मृत्यु का प्रवेश होता है, उदासी से मृत्यु का प्रवेश होता है, निषेध से मृत्यु का प्रवेश होता है। क्योंकि अगर हम ठीक से समझें तो मृत्यु जो है वह निगेटिविटी है, मृत्यु जो है वह परिपूर्ण नकार है, वह न हो जाना है। लेकिन जो जीवन के प्रति नकार का दृष्टिकोण लिए है, वह मृत्यु को ही उपलब्ध होगा, अमृत को नहीं। अमृत को पाना हो तो विधायक! विधायक दृष्टि चाहिए--प्रकाश को देखने वाली, आलोक को देखने वाली, आनंद को देखने वाली।

मैं अगर आपके पास आऊं और कहूं कि भावनगर में मेरे एक मित्र हैं, वे बहुत अच्छी बांसुरी बजाते हैं। तो हजार में से हजार ही मौके इस बात के हैं कि आप कहेंगे, अरे वह आदमी, वह क्या बांसुरी बजाएगा! वह शराब पीता है साहब, झूठ बोलता है, चोर है। वह क्या बांसुरी बजा सकता है! और अगर मैं आकर यहां कहूं कि फलां आदमी शराब पीता है, चोर है, झूठ बोलता है, तो इसकी बहुत कम संभावना है कि आपके नगर में एकाध आदमी मुझसे कहे कि मैं नहीं मान सकता कि वह शराब पीता होगा, चोरी करता होगा। वह इतनी अच्छी बांसुरी बजाता है कि मैं कैसे मानूं कि वह शराब पीता होगा और चोरी करता होगा! हम नहीं मान सकते, वह बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है। शायद ही एक आदमी भावनगर में यह कहने को तैयार हो।

लेकिन अगर हो तो उस आदमी को मैं धार्मिक कहता हूं। उस आदमी ने जीवन को वहां से देखना शुरू किया, जहां से धीरे-धीरे पत्थर में परमात्मा प्रकट होगा। उसने वहां से जीवन को देखना शुरू किया, जहां से शुभ की छोटी सी किरण दिखाई पड़ती है, फिर धीरे-धीरे-धीरे उसे शुभ का पूरा सूरज दिखाई पड़ेगा।

लेकिन हम अंधकार से शुरू करते हैं, नकार से शुरू करते हैं, असार से शुरू करते हैं। और फिर हम चाहते हैं कि जीवन मिल जाए, आनंद मिल जाए, अमृत मिल जाए। असंभव है, बिल्कुल असंभव है, यह हो नहीं सकता!

इसलिए दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूंः अगर दृष्टि आपकी नकारात्मक है तो आप कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते। हालांकि यह आश्चर्य की बात है कि जिनको हम धार्मिक कहते हैं उनकी दृष्टि अक्सर नकारात्मक होती है। उनका चित्त अक्सर जीवन के प्रति विरोध से भरा होता है। वे अक्सर जीवन को व्यर्थ सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। वे हर मौके की इस तलाश में होते हैं कि वे कह सकें कि लाइफ इ.ज कंडेएड, वे इस कोशिश में होते हैं कि मिल जाए कोई मौका और कह दें कि देखो यह बेकार, जीवन असार, यह सब माया है, इसमें कुछ सार नहीं है।

लेकिन अगर जीवन में सार नहीं है, तो परमात्मा में भी कभी सार नहीं खोजा जा सकता। क्योंकि परमात्मा तक जाने के जो भी रास्ते हैं वे जीवन से होकर जाते हैं, वे जीवन से ही जाते हैं, वे जीवन के ही रास्ते हैं। इसलिए जीवन की तरफ पीठ करने वाला आदमी परमात्मा की तरफ भी पीठ कर लेता है। हालांकि वह सोचता यह है कि जीवन की तरफ पीठ करके मैं परमात्मा की खोज में जा रहा हूं। जीवन में डुबकी चाहिए परिपूर्ण, जीवन में डुबकी चाहिए, तो आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। जीवन की गहराइयों में ही उस प्रभु का राज भी छिपा हुआ है।

तो दूसरा सूत्र आपसे यह कहना चाहता हूंः जीवन के प्रति विरोध का, शिकायत का, निंदा का, कंडेमनेशन का भाव छोड़ दें, वह हममें कूट-कूट कर भरा हुआ है, वह हममें इतनी गहराई तक भरा हुआ है जिसका कोई हिसाब नहीं है। हम आदमी को देखते हैं तो उस नजर से, जीवन को देखते हैं तो उस नजर से, फूल को देखते हैं तो उस नजर से, आकाश को देखते हैं तो उस नजर से। हमें सब तरफ कांटे ही कांटे दिखाई पड़ जाते हैं। और जरा से दृष्टि के भेद से सब कुछ बदल जाता है। जरा सा फर्क, और जीवन दूसरा दिखाई पड़ने लगता है।

मुझे दो यहूदी फकीरों की घटना याद आती है। एक बहुत बड़ा यहूदी फकीर, जोसुआ लिएबमेन, अपने गुरु के आश्रम में साधना के लिए गया। युवा था, उसे धूम्रपान की आदत थी, सिगरेट पीने की आदत थी। उसका एक मित्र भी उसी के साथ मोनेस्ट्री में भरती हुआ था, आश्रम में, गुरुकुल में, उसको भी आदत थी। लेकिन आश्रम में मनाही थी सिगरेट पीने की। तो वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए, क्या करें? सिर्फ एक घंटे के लिए आश्रम के बाहर जाने की आज्ञा मिलती थी, सांझ को, नदी के तट पर घूमने के लिए। वह भी आज्ञा घूमने के लिए नहीं मिलती थी, ईश्वर-चिंतन का मौका मिलता था कि घंटे भर नदी के किनारे ईश्वर-चिंतन करो। तो उन्होंने सोचा कि अगर कोई भी रास्ता बन सकता है तो वह एक घंटे जब नदी के किनारे हों तभी हम सिगरेट पी सकते हैं। लेकिन झूठ बोलना, चोरी करना ठीक नहीं; एक दफे गुरु से आज्ञा ले लें। अगर वे खुद ही आज्ञा दे दें तो बड़ी कृपा होगी, नहीं तो फिर सोचेंगे।

वे दोनों अपने गुरु के पास गए। जोसुआ लिएबमेन जब गुरु के पास से लौटा तो बहुत क्रोधित लौटा; गुरु ने साफ इनकार कर दिया--कि नहीं, बिल्कुल नहीं पी सकते हो। उसने सुना भी नहीं, एक क्षण भी रुका नहीं और कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं, सिगरेट बिल्कुल नहीं पी जा सकती है। वह दुखी, क्रोध से भरा हुआ नदी के किनारे लौटा। लेकिन देख कर उसका क्रोध और बढ़ गया। उसका मित्र उसके पहले लौट आया है और सिगरेट बैठ कर पी रहा है! उसे हैरानी हुई कि क्या गुरु ने उसे आज्ञा दे दी या उसने आज्ञा की फिकर नहीं की! वह आकर बोला कि क्या हुआ, तुएहें आज्ञा दी? उसने कहा, हां, मैंने पूछा; उन्होंने कहा कि हां, बिल्कुल पी सकते हो। तो लिएबमेन ने कहा, यह तो हद अन्याय हो गया, इसकी आशा न थी। मुझे बिल्कुल इनकार किया गया है।

उसके मित्र ने हंसते हुए कहा, मैं तुमसे पूछना चाहता हूं, तुमने गुरु से पूछा क्या था? क्योंकि मुझे तो उन्होंने हां भरा है। उसने कहा, पूछने की बात क्या थी, मैंने यह पूछा कि क्या मैं ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकता हूं? उन्होंने कहा, नहीं, बिल्कुल नहीं। तुमने क्या पूछा था? वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा, बस ठीक है, समझ में आ गया। मैंने पूछा था, क्या मैं सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन कर सकता हूं? उन्होंने कहा, हां, कर सकते हो।

ये दोनों बातें तो बिल्कुल एक हैं। लेकिन कौन आदमी होगा जो कहेगा कि ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकते हो! और कौन आदमी है जो इनकार करेगा कि अगर मैं सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन करना चाहूं तो कौन कहेगा कि मत करो! कम से कम ईश्वर-चिंतन तो कर रहे हो, ठीक है, करो। इतना सा फर्क, और उत्तर विपरीत हो गए! एक के उत्तर में नहीं, एक के उत्तर में हां।

जीवन के पास हम कौन सा दृष्टिकोण लेकर जाते हैं, उससे जीवन का उत्तर बदल जाता है। अगर हम उदास और निराश दृष्टिकोण लेकर गए तो जीवन भी कहता है, नहीं-नहीं! और अगर हम प्रफुल्लता से, अहोभाव से, कृतज्ञता से, ग्रेटीट्यूड से, आशा से, प्रेम और प्रार्थना से भरा हुआ दृष्टिकोण लेकर गए, तो जीवन कहता है, हां! तो जीवन की बांहें हमारे चारों तरफ फैल जाती हैं और अपने आलिंगन में ले लेती हैं। और जब हम गलत कोण से जीवन के पास पहुंचते हैं तो द्वार बंद हो जाते हैं।

जीवन के अगर द्वार बंद हैं तो हमारे अतिरिक्त और कोई जिएमेवार नहीं, हम जिएमेवार हैं। और जिनके जीवन के द्वार खुले, और जिन्होंने अमृत के दर्शन किए, और जो प्रभु के चरणों को उपलब्ध हुए, उनके लिए भी कोई और जिएमेवार नहीं, वे स्वयं ही जिएमेवार थे। और यह इतना ही छोटा फासला है, यह फासला बड़ा नहीं, यह शायद इंच भर की दूरी का फासला है।

यह फासला उतना ही है कि एक आदमी आंख बंद किए खड़ा है और कह रहा है, मैं अंधकार में हूं, और बाहर सूरज की रोशनी बरस रही है। और उसके चारों तरफ सूरज की किरणें नाच रही हैं, और वह आंख बंद किए कह रहा है कि मैं अंधकार में हूं। और हम कहेंगे कि सूरज में और तेरे अंधकार में जरा सा फासला है--तेरी पलक बंद है या खुली, इतना सा फासला है, ज्यादा फासला नहीं--तू पलक खोल! और अंधकार नहीं है, सूरज है। इतना सा ही फासला है--निराश, दुखी चित्त में और अहोभाव से, कृतज्ञता से भरे चित्त में। लेकिन हम सबके चित्त जीवन के प्रति नकार और निंदा से भरे हुए हैं।

तो दूसरा सूत्र आपसे मैं यह कहना चाहता हूं कि जीवन के प्रति अत्यंत विधायक होने की जरूरत है। जीवन में बहुत संपदा छिपी है, लेकिन वह उन्हीं की हो सकती है जो विधायक भाव की झोलियां लेकर जीवन के पास पहुंचें। जो पहले से ही यह कहते हुए पहुंचते हैं कि नहीं कुछ रखा है जीवन में, वे झोलियां घर ही रख जाते हैं।

पांचवां प्रवचन

तीन असत्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक अंधेरी रात में, एक निर्जन रेगिस्तान में, एक काफिला एक सराय में आकर ठहरा। रात थी, अंधेरा था और काफिला रास्ता भटक गया था। आधी रात गए खोजते-खोजते वे उस सराय के पास पहुंचे। यात्री थके थे, उनके ऊंट भी थके थे। उन्होंने जल्दी से खूंटियां गाड़ीं, रस्सियां निकालीं और ऊंटों को बांधा। सौ ऊंट थे उस काफिले के पास। लेकिन शायद जल्दी में रात के अंधेरे में एक ऊंट की खूंटी और रस्सी खो गई। एक ऊंट अनबंधा रह गया। अंधेरी रात थी और ऊंट को अनबंधा छोड़ना ठीक न था, उसके भटक जाने की संभावना थी। उस काफिले के मालिकों ने सराय के बूढ़े मालिक को जाकर कहा कि अगर एक खूंटी मिल जाए और एक रस्सी, तो बड़ी कृपा होगी। एक ऊंट हमारा खुला रह गया, रस्सी-खूंटी कहीं खो गई है।

उस बूढ़े ने कहा, रस्सी और खूंटी की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम तो जाओ, खूंटी गाड़ दो और रस्सी बांध दो। यह बात इतनी नासमझी की थी, इतनी व्यर्थ थी। खूंटी और रस्सी होती तो--उन मालिकों ने कहा--हम खुद ही बांध देते। खूंटी और रस्सी नहीं है, यही तो हम पूछने आए हैं। पर उस बूढ़े ने कहा, तुम झूठी खूंटी ही गाड़ दो। अंधेरे में ऊंट को क्या पता चलेगा कि सच्ची खूंटी गाड़ी गई है या झूठी। तुम झूठी रस्सी ही बांध दो।

उन्हें बात समझ में नहीं पड़ी, लेकिन और कोई रास्ता भी न था। सोचा एक प्रयोग करके देख लेना उचित है। वे गए और उन्होंने अंधेरे में खूंटी ठोंकी, जो खूंटी थी ही नहीं। सिर्फ ठोंकने की आवाज, ऊंट खड़ा था, वह बैठ गया, उसने सोचा कि शायद खूंटी बांध दी गई। और फिर उन्होंने रस्सी बांधने का उपक्रम किया। रस्सी तो थी नहीं, लेकिन जैसे रस्सी होती तो बांधते, उसी तरह का उपक्रम किया। और फिर जाकर सो गए।

सुबह उन्होंने देखा--ऊंट अपनी जगह बैठा है; बंधे हुए ऊंट भी बैठे हैं, अनबंधा ऊंट भी बैठा है। उन्होंने बंधे हुए ऊंटों को खोल दिया, उन्हें नई यात्रा पर निकलना था। अनबंधे ऊंट को तो खोलने का कोई सवाल न था, वे उसे बिना खोले ही उठाने की कोशिश करने लगे। लेकिन उस ऊंट ने उठने से इनकार कर दिया। वह बंधा था। वे उस सराय के मालिक के पास गए और कहा, कैसा आश्चर्य! वह ऊंट उठता नहीं है। क्या जादू किया आपने? शक तो हमें रात भी हुआ था कि न मालूम क्या जादू किया जा रहा है। झूठी खूंटी से कहीं ऊंट बंधे हैं! असत्य रस्सी से कभी कोई बांधा गया है! और अब तो और मुश्किल हो गई कि उस ऊंट ने उठने से इनकार कर दिया। उस बूढ़े ने कहा, पहले खूंटी उखाड़ो और रस्सी खोलो। पर वे कहने लगे, खूंटी हो तब हम उखाड़ें! उस बूढ़े ने कहा, जब बांधते समय खूंटी थी, तो खूंटी अब भी है।

मजबूरी थी। बिल्कुल पागलपन का काम था। लेकिन जाकर उन्होंने खूंटी उखाड़ी, रस्सी खोली, और ऊंट उठ कर खड़ा हो गया। उन्होंने उस बूढ़े को धन्यवाद दिया और कहा, बहुत-बहुत धन्यवाद। मालूम होता है, आप ऊंटों के संबंध में बहुत बड़े जानकार हैं। उस बूढ़े ने कहा, क्षमा करना! ऊंटों से मेरी कोई पहचान नहीं है। आदमियों के संबंध में जरूर मैं बहुत कुछ जानता हूं। फिर मैंने सोचा कि जब आदमी तक झूठी खूंटियों और रस्सियों से बंध जाता है, तो बेचारा ऊंट, वह तो बंध ही सकता है।

इस कहानी से आज की मैं दूसरी चर्चा शुरू करना चाहता हूं। क्यों इस कहानी से शुरू करना चाहता हूं? क्योंकि आदमी का सारा जीवन, झूठी रस्सियों और झूठी खूंटियों से बंधा हुआ जीवन है। आदमी का सारा दुख,

असत्य और कल्पना से बंधा हुआ दुख है। आदमी की सारी चिंता आदमी की अपनी ही कल्पना से निर्मित है। और आदमी ने इतनी झूठी खूंटियां और इतनी रस्सियां बांध रखी हैं कि आज वह झूठी रस्सियों और खूंटियों के अतिरिक्त उसका जीवन कुछ भी नहीं रह गया।

कल मैंने आपसे कहा था कि मनुष्य अपने को व्यर्थ की चीजों से भर लेता है। मैं किस चीज को व्यर्थ कहता हूं? मैं किस चीज को कूड़ा-कर्कट कहता हूं? असत्य को मैं कूड़ा-कर्कट कहता हूं, व्यर्थ कहता हूं। और हम सबने असत्य से अपने को भर लिया है।

हम भर सके हैं अपने को असत्य से--एक तरकीब के द्वारा, एक सीक्रेट, एक राज! वह ऊंट बंध सका झूठी खूंटी से, क्यों? उसने अपने तरफ से उस खूंटी को सत्य ही मान लिया, इसलिए। ऊंट तो सत्य खूंटी से ही बंधा अपनी तरफ से, उसने असत्य को भी सत्य स्वीकार कर लिया, जो नहीं था उसे भी मान लिया कि है, इसलिए बंध सका। अगर ऊंट आंख खोल कर देखता कि खूंटी नहीं है, तो बंधना असंभव था।

हम भी जिन असत्यों से बंध जाते हैं और जिस कूड़े-कर्कट को अपने सिर पर ढोते हैं, उसे हम कूड़ा-कर्कट नहीं समझते हैं और असत्य भी नहीं समझते हैं। अगर हमें दिखाई पड़ जाए कि वह असत्य है, मिथ्या है, झूठ है, तो शायद हम तत्क्षण उसे छोड़ दें और उसके बाहर हो जाएं। असत्य दिखाई पड़ते ही व्यर्थ हो जाता है और आदमी उससे मुक्त हो जाता है। असत्य को छोड़ने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता सिवाय इसके कि हम जान लें कि वह असत्य है। असत्य को असत्य की तरह जान लेना ही असत्य से मुक्त हो जाना है। काश! उस ऊंट को पता चल जाता कि खूंटी नहीं है, तो रात भर वह मुक्त था। लेकिन नहीं; उसे ख्याल था कि खूंटी है।

आदमी भी ऐसी ही व्यर्थता, असार, असत्य से बंधा है, जिसे वह समझता है सार है, सत्य है, संपदा है। कोई कचरे को नहीं ढोता, जब तक उसे संपदा का ख्याल न हो।

हमने किन-किन असत्यों से अपने जीवन को भर लिया है?

तीन असत्यों के संबंध में मैं आपसे बात करना चाहता हूं। और जो मनुष्य उन तीन असत्यों के आस-पास घूमता है, उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। असत्य के पास सार्थकता कैसे उपलब्ध होगी? जो नहीं है, उससे जीवन का अनुभव कैसे आएगा? जो स्वप्न है, उससे सत्य की उपलब्धि कैसे होगी?

कौन से तीन असत्य हैं, जिनके आस-पास आदमी घूमता है, भटकता है और नष्ट हो जाता है?

पहला असत्यः मनुष्य का अहंकार पहला असत्य है। हम सब एक अजीब सी खूंटी के पास बंधे हुए हैंः "मैं" की खूंटी, ईगो, अहंकार। और इस मैं की खूंटी के आस-पास ही जीते हैं पूरे जीवन, इसी के आस-पास समाप्त कर देते हैं। और हमें ख्याल भी नहीं आता कि जिसके आस-पास हम सारे जीवन को समर्पित कर रहे हैं, वह है भी?

एक सुबह, एक सम्राट रात जंगल में शिकार खेलने निकला था। राह भटक गई, मार्ग खो गया, सुबह-सुबह वह एक गांव में पहुंचा। एक छोटे से झोपड़े के सामने उसने अपने घोड़े को रोका। वह थका था, भूखा-प्यासा था। और उसने उस झोपड़े के मालिक से पूछा कि क्या मुझे थोड़ा सा दूध या थोड़े से अंडे मिल सकते हैं? मैं बहुत भूखा और थका हूं। वह बूढ़ा मालिक तीन अंडे लेकर बाहर आया, थोड़ा दूध। उस सम्राट ने सुबह का नाश्ता किया। और फिर उस बूढ़े को पूछा कि कितने दाम हुए? उस बूढ़े ने कहा, ज्यादा नहीं, सिर्फ सौ रुपये। सम्राट ने बहुत महंगी चीजें खरीदी थीं जीवन में, लेकिन तीन अंडों के दाम सौ रुपये हो सकते हैं। हैरान हो गया! उसने कहा, मजाक करते हैं! आर एग्स सो रेयर हियर? क्या अंडे मिलना इतने मुश्किल हैं यहां? उस बूढ़े ने कहा

कि नहीं, एग्स आर नाट रेयर सर, बट किंग्स आर! अंडे मिलना तो मुश्किल नहीं; लेकिन राजा बहुत मुश्किल से मिलते हैं। सम्राट ने सौ रुपये निकाल कर उसे दे दिए।

उस बूढ़े की पत्नी बहुत हैरान हो गई यह देख कर कि तीन अंडों के दाम सौ रुपये प्राप्त किए जा सकते हैं! उसने अपने पति को कहा कि तुमने क्या जादू किया? सौ रुपये तीन अंडों के! तीन पैसे कोई मुश्किल से देता है। कौन सी तरकीब से तुमने सौ रुपये निकाल लिए? उस बूढ़े ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। कमजोरी को छू दो और कुछ भी निकाल लो।

उस बुढ़िया ने कहा, मैं समझी नहीं कि आदमी की कमजोरी क्या है?

उस बूढ़े ने कहा, तुझे मैं अपने जीवन की एक और घटना बताता हूं। उससे तुझे शायद ख्याल आ सके कि आदमी की कमजोरी क्या है, ह्यूमन वीकनेस क्या है। उसी कमजोरी के आस-पास आदमी जीता और मरता है।

उस बूढ़े ने कहा, जब मैं जवान था और धन की खोज में निकला, लेकिन मेरे पास सिर्फ पांच रुपये थे। और पांच रुपयों से कहां धन कमाया जा सकता था! सिवाय इसके कि आदमी की कमजोरी का शोषण किया जाए। मैंने एक पांच रुपये की पगड़ी खरीदी, और एक बहुत बड़े सम्राट के दरबार में गया। पगड़ी बहुत रंगीन थी। जैसी कि सभी चीजें बहुत रंगीन और चमकदार होती हैं। असल में सस्तेपन को छिपाने के लिए चमक और रंग देना जरूरी हो जाता है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह अत्यंत सीधा-सादा होता है। जीवन में जो व्यर्थ है, बहुत चमकदार, बहुत रंगीन होता है।

उसने चमकदार रंगीन पगड़ी खरीदी और सम्राट के दरबार में मौजूद हो गया। सम्राट ने जैसे ही देखा, वह पगड़ी इतनी रौनक से भरी थी कि स्वभावतः उसने पूछा कि इस पगड़ी के दाम क्या हैं? उस बूढ़े ने कहा, इस पगड़ी के दाम मत पूछिए, शायद आप विश्वास न कर सकें। सम्राट ने कहा, फिर भी, क्या दाम हैं इस पगड़ी के? तुम घबड़ाओ मत, तुम जिसके सामने खड़े हो, तुएहें पता नहीं वह कौन है। उसकी तिजोरियों में अकूत खजाने भरे हैं। तुम बोलो कि कितने हैं दाम? उस बूढ़े ने कहा, दाम? दस हजार रुपये! सम्राट हंसने लगा, बूढ़ा पागल मालूम होता है।

लेकिन तभी वजीर झुका सम्राट के कान में कुछ कहने को। उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को बताया कि मैं फौरन समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि जो लोग किसी को लूटते रहते हैं, वे दूसरे लूटने वाले को बीच में आना पसंद नहीं करते। वजीर क्या कह रहा है, मैं समझ गया। और मैंने तभी जोर से कहा, तो मैं जाऊं? मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी है, उसने कहा है कि तू घबड़ा मत! इस पृथ्वी पर अब भी एक ऐसा सम्राट है जो इसके दस हजार रुपये दे सकता है। मैं उसी सम्राट की खोज में निकला हूं। क्षमा करें, मैं गलत जगह आ गया मालूम होता है। यह वह दरबार नहीं, यह वह सम्राट नहीं।

उस सम्राट ने कहा कि पगड़ी खरीद ली जाए, और दस हजार में नहीं, पंद्रह हजार में। और पगड़ी खरीद ली गई।

उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को कहा, तू समझी, आदमी की कमजोरी क्या है?

आदमी की कमजोरी अहंकार है। और सबसे बड़ी कमजोरी है, क्योंकि सबसे असत्य भी वही है। जीवन भर हम इस कोशिश में जीते हैं कि मैं सिद्ध कर दूं कि मैं कुछ हूं। बिना इस बात को जाने कि मैं कौन हूं, मैं इस कोशिश में लगा रहता हूं कि मैं सिद्ध कर दूं कि मैं कोई हूं, कुछ हूं। किसी आदमी को धक्का लग जाए तो वह कहता है, जानते नहीं! अंधे हैं? जानते नहीं मैं कौन हूं! और आश्चर्य यह है कि शायद उसे खुद भी पता न हो कि वह कौन है। किसको पता है कि कौन कौन है?

लेकिन जीवन भर एक ही चेष्टा है मनुष्य की यह सिद्ध करने की कि मैं कुछ हूं--बिना इस बात को जाने कि मैं क्या हूं, बिना पहचाने कि कौन है मेरे भीतर। जीवन भर हम इस असत्य के आस-पास जीते हैं कि मैं हूं--कुछ विशिष्ट, समबडी, कोई खास। और जीवन भर एक ही चेष्टा होती है कि मैं पत्थरों पर हस्ताक्षर कर दूं, ताकि जीवन कभी मुझे भूल न सके। छोटे बच्चे जाकर समुद्र के किनारे रेत पर हस्ताक्षर करते हैं, तो बूढ़े उन्हें समझाते हैं कि पागलो, रेत पर हस्ताक्षर करने से क्या फायदा? हवाएं आएंगी और रेत उड़ जाएगी और हस्ताक्षर मिट जाएंगे। लेकिन बूढ़े भी चट्टानों पर हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करते। और बड़ा आश्चर्य यह है कि शायद उन्हें पता नहीं कि जिसे वे रेत कह रहे हैं, वह कभी चट्टान थी। और जिसे वे चट्टान कह रहे हैं, वह कभी रेत हो जाएगी। मजबूत से मजबूत चट्टान पर खोदे गए नाम भी रेत पर लिखे गए नामों से ज्यादा नहीं हैं; क्योंकि चट्टान रेत के जोड़ से ज्यादा नहीं है, और रेत चट्टान की टूटी हुई हालत है।

लेकिन आदमी इसी कोशिश में जीता है कि मैं हस्ताक्षर कर दूं। किसके लिए? किसको दिखलाना चाहते हैं? सारे जीवन को मिटा कर यह बात सिद्ध कर देना चाहते हैं कि मैं कुछ हूं। लेकिन किसके सामने और किसलिए और किस प्रयोजन से? और कभी पीछे घूम कर कोई नहीं सोचता कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं से ज्यादा असत्य, झूठ, फाल्स एनटाइटी और कोई हो ही नहीं!

लेकिन हमने झूठों को ऐसा सत्य मान रखा है... एक बच्चा पैदा होता है, और हम उसका एक नाम रख देते हैं--राम, कृष्ण या कुछ और। कोई आदमी नाम लेकर पैदा नहीं होता, सब आदमी बिना नाम के पैदा होते हैं। नाम बिल्कुल असत्य है। लेकिन हमने एक दफा नाम दे दिया किसी को--राम! वह जीवन भर यही मान कर जीता है कि मैं राम हूं।

नाम बिल्कुल झूठा है, चिपकाया हुआ है। आदमी अनाम है। लेकिन अगर उसके नाम को आप गाली दे दें, तो वह मरने-मारने को तैयार हो जाएगा; जो बिल्कुल झूठ है, उसके लिए जान लेने को और देने को तैयार हो जाएगा। अगर उसके नाम की प्रशंसा करें, वह फूल कर आकाश में खिल जाएगा। वह नाम जिससे कोई संबंध नहीं है।

दुनिया हमें बुला सके इसलिए हम नाम को जोड़ देते हैं। और हम खुद अपने को बुला सकें इसलिए हम अपने को मैं कहना शुरू कर देते हैं। मैं भी स्वयं को पुकारने के लिए दिया गया नाम, संज्ञा से ज्यादा नहीं है। मैं की कोई असलियत नहीं, कोई सत्य नहीं। मैं का कोई आधार, कोई भूमि, मैं की कोई बुनियाद, मैं का कोई सत्य, कुछ भी नहीं है। दूसरे बुला सकें इसलिए नाम है, और मैं खुद को बुला सकूं, इसलिए मैं! मैं एक संज्ञा मात्र है। लेकिन हमारे जीवन में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण वही है।

एक छोटी सी घटना से मैं समझाने की कोशिश करूं। एक राजमहल के पास पत्थरों का एक ढेर लगा हुआ था। कुछ बच्चे वहां से खेलते निकले और एक बच्चे ने एक पत्थर उठा कर महल की तरफ फेंक दिया। पत्थरों का ढेर नीचे था, एक पत्थर आकाश की तरफ उठने लगा। पत्थरों के मन में भी इच्छा होती है कि हम आकाश की यात्रा करें। जहां भी अहंकार है, वहीं आकाश की यात्रा का मन पैदा होता है। जब पत्थर ऊपर उठने लगा, तो वह खुशी से भर गया। और अहंकार से और उसने नीचे पड़े पत्थरों से कहा, दोस्तो, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं।

उसके शब्दों को थोड़ा ध्यान दे लेना! उसने कहा कि मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। उसे फेंका गया था। लेकिन वह कहने लगा, मैं जा रहा हूं। असलियत यह न थी, वह पत्थर जा नहीं रहा था, फेंका गया था--किसी अनजान बच्चे के हाथ ने उसे फेंका था। लेकिन उसने कहा, मैं जा रहा हूं।

इन दोनों बातों में थोड़ा ही फर्क मालूम पड़ता है। मैं फेंका गया हूं, मैं जा रहा हूं, ये दोनों बातें एक सी मालूम पड़ती हैं। अंतर थोड़ा है, लेकिन अंतर बहुत बड़ा है--उतना ही अंतर जितना निर-अहंकार में और अहंकार में है। अहंकार पैदा हो गया। जब मैं जा रहा हूं, जब जाना मैं कर रहा हूं, तो फिर मैं कुछ विशिष्ट हो गया। जो पत्थर नहीं जा पा रहे हैं आकाश की तरफ, वे व्यर्थ हो गए, ना-कुछ हो गए। मैं कुछ हो गया, समबडी पैदा हो गया। बाकी जो नीचे पड़े हैं वे नो-बडी हैं, वे आकाश में नहीं उड़ सकते, उनके पास पंख नहीं; मैं उड़ रहा हूं, मैं साधारण नहीं, असामान्य हो गया, विशिष्ट हो गया।

वह पत्थर ऊपर उठा। नीचे के पत्थर ईर्ष्या से जल गए। लेकिन इनकार करना भी असंभव था, वह पत्थर जा ही रहा था। यह भी कहना मुश्किल था कि तुम झूठ बोलते हो, तथ्य गवाही था कि वह जा रहा है। फिर वह पत्थर ऊपर उठा और महल की कांच की खिड़की से टकराया। टकराते ही कांच चकनाचूर हो गया। जब पत्थर कांच से टकराता है तो कांच चकनाचूर हो जाता है, इट जस्ट हैपेन्स। पत्थर कांच को चकनाचूर करता नहीं; यह कांच का स्वभाव है, यह पत्थर का स्वभाव है। दोनों टकराते हैं, कांच चकनाचूर हो जाता है। लेकिन जब कांच चकनाचूर हो गया तो उस पत्थर ने हंस कर कहा, मूर्ख! जानता नहीं, मेरे रास्ते में जो आता है मैं चकनाचूर कर देता हूं!

कांच चकनाचूर हो गया था, पत्थर ने किया नहीं था। उसे कुछ भी नहीं करना पड़ा था कांच को चकनाचूर करने में, उसे जरा भी हाथ-पैर नहीं हिलाने पड़े थे। कांच बस चकनाचूर हो गया था। वह कांच का जैसा होना है, उसका जैसा स्वभाव है, वह टकरा कर टूट गया था। उसे पत्थर ने तोड़ा नहीं था। लेकिन पत्थर ने कहा, मैं चकनाचूर कर देता हूं!

अहंकार इसी भाषा में बोलता है। मेरे बीच में कोई न आए, अन्यथा चकनाचूर कर दूंगा! कांच के टुकड़े रोते रह गए होंगे। वे कुछ कहना भी चाहते थे, लेकिन कहने की कोई गुंजाइश न थी। झूठ भी न थी यह बात, कांच टूट ही गया था। किस मुंह से कहता कि तुम गलत कहते हो।

पत्थर जाकर महल के ईरानी कालीन पर गिरा, बहुमूल्य कालीन बिछा था महल में। पत्थर ने राहत की सांस ली और कहा, मालूम होता है इस घर के लोग बड़े समझदार हैं। मेरे आने की खबर दिखता है पहले से ही पता चल गई, कालीन वगैरह सब बिछा रखे हैं।

घर के लोगों को पता भी नहीं होगा कि एक पत्थर मेहमान बनने वाला है। वे ईरानी कालीन किसी पत्थर की प्रतीक्षा में नहीं बिछाए गए थे। लेकिन पत्थर ने कहा--और पत्थर को कौन इनकार करता, वहां कोई था ही नहीं--पत्थर ने अपने मन में कहा, निश्चित ही घर के लोगों को पता चल गया है कि मैं आता हूं। फिर क्यों न हो, मैं कोई साधारण पत्थर नहीं, आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। स्वाभाविक है कि वे मेरे स्वागत की व्यवस्था करें।

और तभी महल के पहरेदार ने सुना होगा कि कांच टूटा है, पत्थर आया है, आवाज हुई है, वह भागा हुआ भीतर आया, उसने पत्थर को हाथ में उठाया। पत्थर ने अपनी भाषा में कहा, धन्यवाद, बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। प्रतीत होता है महल का मालिक अपने हाथ में लेकर सएमान प्रकट कर रहा है। वह पहरेदार फेंकने को था पत्थर को, लेकिन पत्थर ने कहा कि मालूम होता है मालिक सएमान प्रकट कर रहा है।

अहंकार अपने भीतर ही सोचता है और जीता है, अपने भीतर ही पुष्ट करता है अपने को और बलिष्ठ होता चला जाता है। वह भीतर ही चलने वाली प्रक्रिया है जो धीरे-धीरे अपने आप को मजबूत करती चली

जाती है। वह पत्थर अपने अहंकार को मजबूत करता चला जा रहा है। सब तथ्य उसके पोषण बनते जा रहे हैं--जिन तथ्यों का उसके अहंकार से कोई भी संबंध नहीं, कोई दूर का भी नाता नहीं।

पहरेदार ने पत्थर को उठा कर वापस फेंक दिया। लेकिन पत्थर ने यह नहीं कहा कि मुझे महल से वापस फेंका जा रहा है। जब भी कोई महल से वापस फेंका जाता है, कोई कभी कहता है कि मैं महल से वापस फेंका गया? वह कहता है, मैंने महल का त्याग कर दिया। दिल्ली से किसी को फेंक देते हैं भावनगर की तरफ, वह यह कहता है कि मैं दिल्ली से फेंक दिया गया? वह कहता है कि मुझे घर की बहुत याद आती थी, भावनगर बहुत अच्छा लगता है।

उस पत्थर ने भी अपने मन में कहा कि बहुत रह चुका महल में, सएहालो अपने महल! मुझे होम सिकनेस मालूम होती है, मैं घर जाना चाहता हूं। मुझे पत्थरों की याद आती है, मुझे घर की याद आती है, मुझे मित्रों की याद आती है। रखो अपने महल! होंगे तुएहारे महल अच्छे! लेकिन वह बात ही और है। खुले आकाश के नीचे, चांद-तारों के नीचे जीना, वह मजा ही और है। मैं वापस जाता हूं।

पत्थर फेंका जा रहा था, लेकिन उसने कहा, मैं वापस जा रहा हूं। वह जब अपनी ढेरी पर वापस गिरने लगा तो नीचे के पत्थर टकटकी लगाए देख रहे थे। उस पत्थर ने आते ही और गिरते ही कहा, दोस्तो, तुएहारी बहुत याद आती थी। बड़े-बड़े महलों में समारंभ-स्वागत हुए, बड़े-बड़े सम्राटों ने हाथ से उठा कर सएमान और आदर दिया। लेकिन नहीं, घर की याद इतनी सताती थी कि मेरा मन हुआ कि वापस लौट चलूं। मैं वापस आ गया हूं, तुम सब का बहुत स्मरण आता था। पत्थरों ने फूलमालाएं पहनाई होंगी, सएमान किया होगा और कहा होगा उस पत्थर को कि तुम हमारे बीच अवतारी पत्थर हो, महापुरुष हो, महात्मा हो, हम धन्यभाग हुए कि तुम हमारे बीच पैदा हुए। हमारी पीढ़ियां कृतकृत्य हो गईं। तुम अपनी आत्मकथा, आटोबायोग्राफी जरूर लिखो, ताकि बच्चों के काम आ सके, वे पढ़ें और तुएहारे जीवन से सीखें।

मैंने सुना है, वह पत्थर अपनी आत्मकथा लिख रहा है।

अहंकार सारे जीवन को अपनी यात्रा बना लेता है। हम अपने से पूछें कि क्या हमारे मैं की जन्म की शुरुआत उस पत्थर की यात्रा से बहुत भिन्न है? कहते हैं हम--मेरा जन्म! आपसे किसी ने पूछा था कि आप जन्म लेना चाहते हैं? आपसे किसी ने पूछा था कि कहां जन्म लेना चाहते हैं? आपकी कोई च्वाइस, आपका कोई चुनाव है? आपसे जन्म के पहले कोई निर्णय लिया गया है, जो आप कहते हैं मेरा जन्म! कोई अज्ञात हाथ फेंक देता है और हम कहते हैं--मेरा जन्म! कोई अज्ञात शक्ति फेंक देती है, और हम कहते हैं--मेरा जन्म!

हवाओं की अज्ञात लहरें समुद्र में लहरें उठा देती हैं। शायद लहरें भी कहती होंगी--मेरा जन्म! जीवन की अज्ञात शक्तियां मिट्टी को खड्ड बना देती हैं, पहाड़ उठा देती हैं। पहाड़ भी कहते होंगे--मेरा जन्म! अज्ञात शक्तियां बीज को तोड़ कर अंकुर बना देती हैं। वृक्ष भी कहते होंगे--मेरा जन्म! आदमी भी अज्ञात शक्तियों के हाथ से पैदा होता है। मेरे जन्म की कोई जरूरत नहीं है, मेरे जन्म का कोई सवाल नहीं है। सागर में जैसे लहरें हैं, वैसे मैं हूं, वैसे आप हैं। लहर उठती है और गिर जाती है। हम उठते हैं और मिट जाते हैं। एक अनंत शक्ति के सागर पर लहरों से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन घोषणा हमारी यह है कि मैं हूं! मैं की घोषणा का अर्थ क्या होता है? मैं की घोषणा का अर्थ होता हैः पृथकता की घोषणा, भेद की घोषणा, सबसे अलग होने की घोषणा।

आप अलग हैं? क्षण भर को अलग हो सकते हैं? एक क्षण को जीवन से टूट कर जी सकते हैं? एक क्षण भी नहीं जी सकते। एक पत्ता जैसे वृक्ष से बंधा है, वृक्ष जैसे जड़ों से बंधा है, जड़ें जैसे बड़ी पृथ्वी से बंधी हैं, बड़ी पृथ्वी जैसे बड़े सूरज से बंधी है, और बड़ा सूरज जैसे और महासूर्यों से बंधा है, वैसे ही एक-एक आदमी भी बंधा

है एक-एक पत्ते की तरह। एक क्षण को भी अलग होने की न संभावना है, न जीने की कोई संभावना है। फिर मैं की घोषणा की कहां संभावना है?

लेकिन हम कहते हैं, मेरा जन्म! हम कहते हैं, मेरा बचपन! हम कहते हैं, मेरी जवानी! जैसे हमने कोशिश करके बचपन को जवानी बना लिया हो। जैसे हमारा कोई प्रयास हो, हमारा कोई प्रयत्न हो, जैसे हमारा कोई संकल्प हो कि मैं जवान बनना चाहता हूं इसलिए जवान बन गया हूं। बचपन वैसे ही जवानी बन जाता है जैसे कली फूल बन जाती है। आपका क्या है, मेरा क्या है? जवानी वैसे ही बुढ़ापा बन जाती है, जैसे बीज अंकुर बन जाता है। मेरा क्या है, आपका क्या है? मेरे मैं की घोषणा के लिए कौन सी जगह है, कौन सा अर्थ है, कौन सा प्रयोजन है?

लेकिन हम तो ऐसे हैं कि हम तो श्वास तक को कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। शायद ही कभी आपने सोचा होगा कि आज तक दुनिया में कभी किसी ने श्वास नहीं ली है। श्वास आती है, जाती है, इट जस्ट हैपेन्स, आप श्वास लेते नहीं। अगर आप श्वास लेते हों तब तो मरना मुश्किल हो जाएगा। मौत दरवाजे पर खड़ी है और आप श्वास लेते ही चले गए तो मौत को वापस लौट जाना पड़ेगा। लेकिन हम भलीभांति जानते हैं कि जो श्वास बाहर रह गई और अगर भीतर न आई, तो हमारी कोई सामर्थ्य नहीं कि हम उसे भीतर बुला लें। सच तो यह है कि श्वास के बाहर होते ही हम भी बाहर हो जाएंगे, उसे बुलाने के लिए हम भीतर शेष भी नहीं होंगे। श्वास हम नहीं ले रहे हैं; लेकिन अहंकार कहता है, मैं श्वास ले रहा हूं, मैं जी रहा हूं। और इस भांति एक झूठी इकाई को हम मजबूत किए चले जाते हैं, मजबूत किए चले जाते हैं।

इस अहंकार के असत्य से जो अपने जीवन के भवन को भर लेता है, वह प्रभु के सत्य से वंचित रह जाता है। यह पहली खूंटी है और सबसे मजबूत खूंटी है। इस खूंटी के न होने को समझ लेना जरूरी है, इस खूंटी के असत्य को समझ लेना जरूरी है। इस खूंटी की जो फाल्सिटी है, वह जो मिथ्यात्व है, वह समझ लेना जरूरी है। और यह समझ में आ जाए कि मैं एक झूठी इकाई है, तो तत्क्षण जीवन अनंत की ओर उन्मुख हो जाता है। व्यर्थ से हट कर सार्थक की खोज में संलग्न हो जाता है। यह पहली खूंटी है, यह पहली व्यर्थता है, यह पहला कूड़ा-कर्कट का ढेर है, जो आदमी इकट्ठा करता है, मेहनत करता है इसी ढेर को इकट्ठा करने को। फिर इसी की दुर्गंध से पीड़ित और परेशान होता है, फिर दुखी और चिंतित होता है। फिर पूछता फिरता है कि मैं दुख से कैसे बचूं? मैं चिंता से कैसे बचूं? मैं परेशान हूं, मैं अशांत हूं! और कभी नहीं पूछता कि यह परेशानी, यह अशांति और यह चिंता मेरे अहंकार के अतिरिक्त और कहां से पैदा होती है!

क्या आप कह सकते हैं कि जिस आदमी के पास अहंकार नहीं है, वह भी अशांत हो सकता है? क्या आप जानते हैं कि जिस आदमी के पास अहंकार नहीं है वह भी चिंतित हो सकता है? क्या आप जानते हैं, जिसके पास अहंकार नहीं है वह भी मृत्यु से भयभीत हो सकता है? चिंता, भय, संताप, सब अहंकार की बाइ-प्रोडक्ट्स, अहंकार की उत्पत्तियां हैं, उसकी छायाएं हैं। अहंकार से जो मुक्त नहीं, वह जीवन के दुख और अंधकार से मुक्त नहीं हो सकता है।

दूसरी खूंटी क्या है? दूसरी खूंटी भी बहुत अदभुत है। वह अहंकार से ठीक उलटी खूंटी है। वह अहंकार से ठीक उलटी खूंटी है, उसे पहचानना और भी कठिन है। अहंकार बहुत ग्रॉस, बहुत स्थूल है। अहंकार से एक उलटी खूंटी भी हैः निर-अहंकार। वह खूंटी अहंकार से भी ज्यादा बारीक और सूक्ष्म है। अगर कोई आदमी अहंकार से बचने की कोशिश करता है तो वह एक निर-अहंकार की धारणा को पकड़ लेता है। वह इस बात की घोषणा करने लगता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, मैं तो विनम्र हूं, मैं तो ना-कुछ हूं, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं, मैं तो

कुछ भी नहीं हूं। उसे ख्याल नहीं आता कि जब हम इस बात की घोषणा करते हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूं, तब भी मैं की ही घोषणा प्रतिध्वनित होती है; तब भी हम सूक्ष्मतम तलों पर यह कह रहे हैं कि मैं हूं; तब भी हम कह रहे हैं कि मैं विनम्र हूं, मैं पैरों की धूल हूं, मैं ना-कुछ हूं। अहंकार से जो लोग भागते हैं वे निर-अहंकार का एक अदभुत केंद्र खड़ा करना शुरू कर देते हैं।

एक संन्यासी के पास मैं कुछ दिनों तक था। वहां मुझे कहा कि मेहमान हो जाऊं उनके आश्रम में, तो मैं मेहमान हो गया। कभी वे बहुत बड़े समृद्ध और धनी व्यक्ति थे। वे मुझसे कभी भी बात करते, थोड़ी-बहुत बात के बाद यह बात जरूर निकल आती किसी भी बहाने से, किसी भी खूंटी पर वे यह बात जरूर टांग देते कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। एक बार, दो बार, दस बार मैंने उनको सुना होगा यह कहते कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। फिर जिस दिन मैं बिदा होने लगा तब भी वे यही कह रहे थे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। मैंने उनसे पूछा, अगर आप नाराज न हों...

और संन्यासियों से पूछ लेना बहुत जरूरी है कि कहीं आप नाराज तो नहीं हो जाएंगे, क्योंकि संन्यासी जितने क्रोध से भरे होते हैं उतने सामान्य लोग क्रोध से भरे हुए नहीं होते। मैंने उनसे पूछा, आप कहीं नाराज तो नहीं हो जाएंगे, एक बात मुझे पूछनी है।

नाराज तो वे तभी हो गए। उन्होंने कहा, पूछिए क्या पूछना है! मैंने उनसे कहा, मैं यह पूछना चाहता हूं, यह लात जो आप कहते हैं लाखों रुपयों पर मारी, यह आपने कब मारी थी? उन्होंने कहा, कोई तीस साल हो गए। मैंने कहा, मैं यह कहने में परेशान हो रहा हूं और इसी से डर रहा हूं कि आप नाराज न हो जाएं। मैं यह कहना चाहता हूं, यह लात ठीक से लग नहीं पाई, अन्यथा तीस साल तक उसे याद रखने की कोई भी जरूरत न थी। तीस साल से इस बात को क्यों ढोए चले जा रहे हैं कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। लाखों रुपये आपके पास रहे होंगे तो यह अहंकार रहा होगा कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। फिर जब उनको छोड़ा तो एक नया और सूक्ष्म और विपरीत अहंकार पैदा हो गया कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मारी। मैंने! वे लाखों रुपये मेरे पास थे--यह स्थूल अहंकार था; यह सब को दिखाई पड़ सकता था। लेकिन मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है, यह बहुत सूक्ष्म अहंकार है; यह विनम्रता की शक्ल लेकर खड़ा हो गया है, यह त्याग के वस्त्रों को पहन कर खड़ा हो गया है। इसे देखना बहुत मुश्किल है। दूसरे तो देख ही नहीं पाएंगे, खुद भी देखना मुश्किल है।

त्यागी को उतनी ही धन की पकड़ होती है जितनी धनी को; धनी इकट्ठा करता है, त्यागी छोड़ता है, लेकिन दोनों की आंख धन पर ही अटकी रहती है, धन पर ही अटकी रहती है।

मैं जयपुर में था। कुछ मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा, एक बहुत बड़े मुनि हैं, आप उनसे नहीं मिले? मैंने उनसे कहा कि जरूर मिलूंगा, लेकिन एक बात पूछना चाहता हूं कि वे बहुत बड़े मुनि हैं, यह तुएहें कैसे पता चला? किस तराजू से तुमने तौला? तुएहें पता कैसे चल गया कि बहुत बड़े मुनि हैं? उन्होंने कहा, इसमें क्या पता चलने की बात है, खुद जयपुर महाराज उनके चरण छूते हैं! तो मैंने उनसे कहा, इज्जत तुएहारे मन में जयपुर महाराज की है या मुनि की? तौलने का मापदंड क्या है? क्राइटेरियन क्या है?

क्राइटेरियन है कि जयपुर के महाराज उनके चरण छूते हैं। क्राइटेरियन धन है। त्याग को भी तौलने का रास्ता धन है। यही तो वजह है कि हिंदुस्तान में अगर आप देखें, हिंदुओं के भगवान राजाओं के पुत्र, जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र, बुद्ध के चौबीस अवतार राजाओं के अवतार। आज तक हिंदुस्तान में एक गरीब आदमी परम संन्यास के लिए उपलब्ध होने की हैसियत नहीं कमा पाया है। क्यों?

इसलिए नहीं कि गरीब आदमी संन्यासी नहीं हो सकता है। लेकिन गरीब आदमी संन्यासी हो जाए तो उसे तौलने के लिए हमारे पास कोई मापदंड नहीं होता। उसको बड़ा संन्यासी कैसे कहा जाए, उसने कुछ छोड़ा ही नहीं! छोड़ता तो बड़ा हो सकता था। जितना बड़ा छोड़ता उतना बड़ा हो सकता था। संन्यास भी आखिर में तुलता है धन से! तो फिर वह संन्यास न रहा, वह धन की ही घूम कर प्रतिष्ठा हो गई।

विनम्रता भी घोषणा बनती है अहंकार की। अगर कोई आदमी किसी गांव में हो और कहता हो कि मैं तो बिल्कुल विनीत आदमी हूं, मेरे भीतर तो अहंकार है ही नहीं; और आप उससे कह दें कि एक आदमी को मैं जानता हूं, वह आपसे भी ज्यादा विनीत है; तो वह तत्काल दुखी हो जाता है। अपने से ज्यादा किसी को भी देख कर अहंकार दुखी होता है। एक संन्यासी को कह दें कि आप तो ठीक हैं, लेकिन फलां संन्यासी और भी बड़ा संन्यासी है। फिर संन्यासी दुखी हो जाता है। क्यों?

अगर अहंकार नहीं है तो दुख का कोई भी कारण शेष नहीं रहा। जहां अहंकार नहीं है, वहां तुलना और कंपेरिजन का ही कोई सवाल नहीं रहा। क्योंकि अहंकार है तभी तक तुलना हो सकती है--कि मैं किसी से छोटा हूं, मैं किसी से बड़ा हूं। जहां अहंकार नहीं है वहां आदमी अतुलनीय हो गया, इनकंपेरेबल हो गया। अब उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। जहां अहंकार है वहां हम यह भी कहते हैं कि मैं बड़ा हूं, वहां हम यह भी कह सकते हैं कि मैं छोटा हूं, लेकिन अहंकार की सीढ़ियां वही की वही हैं--चाहे नीचे से ऊपर की तरफ जाओ, चाहे ऊपर से नीचे की तरफ आओ। अहंकार तो उसी दिन छूटता है जिस दिन हमें यह ख्याल ही नहीं रह जाता कि मैं हूं भी--छोटा और बड़ा नहीं; महान और तुच्छ नहीं; अभिमानी और विनम्र नहीं--जहां मुझे यह ख्याल ही मिट जाता है कि मैं हूं भी। मेरे होने का बोध ही जहां विसर्जित हो जाता है वहां व्यक्ति कचरे से बच पाता है। अन्यथा हम उलटा कचरा पैदा कर लेते हैं।

हम उलटे ढंग से जीवन को बांधने में बड़े कुशल हो गए हैं। खाई से बचते हैं तो कुआं पकड़ लेते हैं, कुएं से बचते हैं तो खाई पकड़ लेते हैं। एक आदमी भोग से बचता है तो त्याग पकड़ लेता है--उतने ही जोर से जितने जोर से भोग को पकड़ा था। एक आदमी धन छोड़ता है तो निर्धनता को पकड़ लेता है--उतने ही जोर से जितने जोर से धन को पकड़ा था। लेकिन क्लिंगिंग, पकड़ उतनी ही कायम रहती है, पकड़ में कोई फर्क नहीं पड़ता है।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा संन्यासी था। वह नग्न ही रहता। उसकी दूर-दूर देशों में ख्याति फैल गई। पृथ्वी के कोने-कोने तक उसके यश का गान होने लगा, उसके त्याग की चर्चा होने लगी। वह अत्यंत निस्पृह, अपरिग्रही, नग्न ही, एक वस्तु भी उसके पास नहीं, एक वस्त्र भी उसके पास नहीं। फिर वह अपने देश वापस लौटा, अपनी राजधानी वापस लौटा। जिस राजधानी का वह निवासी था, उस राजधानी का सम्राट उसका बचपन का मित्र था, वे दोनों एक ही साथ पाठशाला में पढ़े थे। सम्राट ने सोचा कि मेरा मित्र वापस लौटता है--यश, कीर्ति अर्जित करके; परम संन्यास को उपलब्ध करके; सब कुछ त्याग कर; तो मैं उसके स्वागत का इंतजाम करूं। उसने सारी राजधानी को सजाया, उसने सारी राजधानी को रौनक, रोशनी और खुशबू से भर दिया। जिस दिन संन्यासी आने को था उस दिन रास्तों पर फूल बिछाए गए; सारे गांव में दीये जलाए गए।

रास्ते में ही संन्यासी को कुछ यात्रियों ने कहा कि आपको पता है? आप राजधानी जा रहे हैं, लेकिन आपका जो बचपन का मित्र है, जो अब सम्राट है, वह अपनी धन-दौलत का दिखावा दिखाना चाहता है। उसने राजधानी को चमकाया है। राजधानी में रोशनी है, रास्तों पर फूल डाले हैं। वह आपको हतप्रभ करना चाहता है यह दिखा कर कि तुम क्या एक नंगे फकीर! देखो, मैंने क्या कर लिया है जीवन में! इतना धन, इतना वैभव, ऐसी स्वर्ण की राजधानी बसा दी है! तो वह तुएहें अपना स्वर्ण, अपना वैभव दिखा कर हतप्रभ करना चाहता है,

हीन करना चाहता है। संन्यासी की आंखें क्रोध से भर गईं और उसने कहा, कोई फिकर नहीं, देख लेंगे कि वह क्या दिखाना चाहता है।

फिर दिन भी आ गया, सांझ आ गई और संन्यासी का आगमन हुआ। सम्राट नगर के द्वार पर उसके स्वागत को खड़ा है। सारा नगर करबद्ध प्रणाम करने को रास्तों के किनारे खड़ा है। लेकिन सम्राट हैरान हो गया! संन्यासी आया, सूखे दिन थे, वर्षा की कहीं कोई खबर न थी, कहीं पानी न पड़ा था, नंगे संन्यासी के पैर लेकिन घुटने तक कीचड़ से भरे थे। सम्राट हैरान हुआ! रास्ते सूखे हैं, धूल से भरे हैं, कीचड़ तो कहीं भी नहीं, घुटने तक कीचड़! लेकिन सबके सामने कुछ पूछना उचित न था। फिर राजमहल की सीढ़ियों पर बहुमूल्य कालीनों पर वह कीचड़ से भरे हुए पैरों से वह नंगा संन्यासी चला।

फिर जब वे दोनों कक्ष के भीतर अकेले रह गए तो सम्राट ने कहा--कुशलक्षेम पूछी और कहा--मैं बहुत दुखी हूं, मैं बहुत चिंतित हूं, मालूम होता है रास्ते में तकलीफ हुई है। लेकिन वर्षा के तो कोई आसार नहीं, आकाश में बदलियों का कोई पता नहीं, सड़कें सूखी पड़ी हैं, आपके पैर कीचड़ से कैसे भर गए? घुटने तक कीचड़ से?

उस संन्यासी ने कहा, तुम क्या समझते हो? अगर तुम अपनी दौलत को दिखाने के लिए बहुमूल्य कालीन सड़क पर बिछा सकते हो, तो हम भी संन्यासी हैं, हम नंगे पैर, कीचड़ से भरे पैर तुएहारी लाखों की चीजों पर चल सकते हैं!

वह सम्राट तो एकदम चौंक कर रह गया। उसने दौड़ कर संन्यासी को गले लगा लिया और कहा, मैं भूल में था, मैं सोचता था तुम बदल गए होओगे। लेकिन तुम वही के वही हो--जब मैंने तुएहें छोड़ा था बचपन में। वही अहंकार! वही कि हम संन्यासी हैं, हम नंगे पैर कीचड़ भरे पैर चल कर दिखा देंगे तुएहारे महल में। हम लात मारते हैं तुएहारी दौलत को। हम दो कौड़ी का समझते हैं तुएहारी दौलत को। क्या फर्क हुआ? कौन सा भेद हुआ? कौन सा अंतर हुआ? अहंकार ने नई गांठ पकड़ ली, नया रूप ले लिया--विनम्रता का, त्याग का, संन्यास का। लेकिन वह अपनी जगह मौजूद है। उसने जगह नहीं छोड़ी। उसने त्याग से ही अपने पोषण को पाना शुरू कर दिया।

तो मैं आपको कहना चाहता हूं, दो खतरनाक खूंटियों के बीच बचना है। अभिमान की खूंटी, विनम्रता की खूंटी, दोनों अहंकार की ही खूंटियां हैं। लेकिन पहले अहंकार की खूंटी से हम सारे लोग परिचित हैं, दूसरी खूंटी से हम बहुत अपरिचित हैं। इसीलिए जगत में ठीक-ठीक संन्यासी पैदा नहीं हो सके।

संन्यासी भी कहता है, मैं हिंदू हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं मुसलमान हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं जैन हूं। आश्चर्य की बात है! जिसका मैं ही खो गया अब उसके पास हिंदू, मुसलमान और जैन होने की कहां गुंजाइश है? अब वह किसके दावे कर रहा है कि मैं कौन हूं? संन्यासी भी दावा करता है कि मैं जगतगुरु हूं, मेरे इतने शिष्य हैं, मेरे इतने अनुयायी हैं। कौन दावा कर रहा है इन सारी बातों का?

ये सब दावे अहंकार के ही दावे हैं। विनम्रता की शक्ल में ये खड़े हो गए हैं। अक्सर भेड़िए भेड़ की खाल ओढ़ कर खड़े हो जाते हैं, लेकिन इससे उनके स्वभाव में कोई फर्क नहीं पड़ता है। अक्सर अहंकारी हाथ जोड़ कर विनम्र बन कर जनसेवक बन जाता है, लेकिन इससे कोई भेद नहीं पड़ता है।

दूसरी यह जो विनम्रता की झूठी खूंटी है, इससे मुक्त होना उतना ही जरूरी है जितना जरूरी अभिमान की खूंटी से मुक्त होना है। और इन दोनों खूंटियों से मुक्त होते ही आपके पास कोई मैं नहीं बच रहता। आप बच

रहते हैं, लेकिन मैं नहीं बच रहता। और वह जो आप हैं--मैं से मुक्त--उसका नाम ही आत्मा है। जिस दिन मैं नहीं है, अहंकार नहीं है, उसी दिन आत्मा के द्वार खुल जाते हैं।

तीसरी खूंटी और आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं। तीसरी खूंटी ज्ञान की खूंटी है, तीसरी खूंटी ज्ञान की खूंटी है। हम सारे लोग इस भांति चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, जीवन में ऐसे व्यवहार करते हैं जैसे हम जानते हैं, आई नो, ऐसा कुछ ख्याल हम सबको है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो कहे--मैं नहीं जानता हूं। हम सब जानते हुए मालूम पड़ते हैं। अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है? तो आप कहेंगे, हां, हम जानते हैं। कोई कहेगा कि ईश्वर नहीं है, मैं जानता हूं। कोई कहेगा, ईश्वर है, मैं जानता हूं। लेकिन शायद ही कोई कहे कि मुझे पता नहीं है, मैं नहीं जानता हूं, मैं अज्ञानी हूं। ज्ञान का कचरा हम इकट्ठा कर लेते हैं उधार--शास्त्रों से, किताबों से, सिद्धांतों से। उस कचरे को पकड़ कर बैठ जाते हैं और समझ लेते हैं कि यह संपदा हो गई ज्ञान की।

एक अनाथालय में मैं गया। वहां के संयोजकों ने कहा कि हम अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। मैं बहुत हैरान हो गया! क्योंकि मेरी दृष्टि में, धर्म की साधना हो सकती है, शिक्षा नहीं। विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, साइंस की शिक्षा हो सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि शिक्षा बाहर से दी जाती है, और जो भी बाहर से दिया जाता है वह भीतर जो छिपा है उसके प्रकट होने में बाधा हो जाता है। धर्म भीतर छिपा है, वह स्वभाव है, वह प्रत्येक के प्राणों का अंतर-निगूढ़ तत्व है, उसे बाहर से नहीं लाना है। बाहर से इसलिए कोई शिक्षा धर्म की नहीं हो सकती। फिर भी मैंने कहा, आप देते हैं तो आश्चर्य, मैं जरूर देखना चाहूंगा। वे अपने बच्चों के पास मुझे ले गए। सौ बच्चे थे। और उन्होंने बच्चों से पूछा कि ईश्वर है? उन बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए कि हां, ईश्वर है।

वे हाथ बिल्कुल झूठे हाथ थे या कि सच? बूढ़ों को पता नहीं कि ईश्वर है, बच्चों को कैसे पता चल गया कि ईश्वर है!

वे बच्चों ने हाथ उठा दिए, सौ हाथ ऊपर उठ गए कि ईश्वर है। ये हाथ सच्चे नहीं हैं, ये हाथ बिल्कुल झूठे हैं। ये हाथ सिखाए हुए हाथ हैं, कल्टीवेटेड हैं। इन बच्चों को बताया गया है कि जब हम कहें--ईश्वर है? तब तुम हाथ ऊपर उठाना कि हां, ईश्वर है। बच्चे बेचारे भय के कारण हाथ ऊपर उठा रहे हैं कि ईश्वर है।

उनसे पूछा, आत्मा है? और उन्होंने हाथ उठा दिए कि आत्मा है। उनसे पूछा, आत्मा कहां है? उन्होंने अपने हृदय पर हाथ रख दिए कि यहां।

मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा कि क्या तुम बताओगे कि हृदय कहां है? उसने कहा, यह तो हमें बताया ही नहीं गया, जो बताया गया था वह हमने बता दिया है।

मैंने उन संयोजकों को कहा कि तुम इन बच्चों की हत्या कर रहे हो; इन बच्चों के जीवन में झूठ की पहली शिक्षा दे रहे हो; जो उन्हें ज्ञात नहीं है, तुम भ्रम पैदा कर रहे हो उन्हें कि उन्हें ज्ञात है; जिस संबंध में वे बिल्कुल अज्ञान में हैं, तुम उन्हें यह धोखा पैदा कर रहे हो कि वे जानते हैं। इससे बड़ा झूठ और कुछ भी नहीं हो सकता कि जिसे हम न जानते हों, उसे जानने का ख्याल पैदा हो जाए। सत्य की यात्रा में यह सबसे बड़ी बाधा हो जाती है। क्योंकि जब हमें यह ख्याल हो जाता है कि हम जानते ही हैं तो खोज बंद हो जाती है, इंक्वायरी बंद हो जाती है, जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, यात्रा समाप्त हो जाती है।

अज्ञान का बोध हो तो यात्रा हो सकती है, ज्ञानी होने का ख्याल पैदा हो जाए तो फिर यात्रा की कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसीलिए पंडित शायद ही कभी परमात्मा को उपलब्ध होते हों। पंडित बहुत कठिन है

कि परमात्मा को उपलब्ध हो जाएं। मैं आपसे कहता हूं कि पापी भी परमात्मा को पा सकते हैं, लेकिन पंडित परमात्मा को नहीं पा सकते, क्योंकि पंडित को यह ख्याल है कि मैं जानता हूं।

मैंने उन संयोजकों को कहा कि ये बच्चे कल बड़े हो जाएंगे, बचपन के सिखाए हुए हाथ ये भूल जाएंगे कि सच है या झूठ; सिखाई गई बात इनके अनकांशस तक, इनके अचेतन तक बैठ जाएगी। ये कल बूढ़े हो जाएंगे। और जब भी जिंदगी में सवाल उठेगाः ईश्वर है? तो इनके हाथ मेकेनिकली, मशीनों की तरह ऊपर उठ जाएंगे और ये कहेंगे कि हां, ईश्वर है। ये ईश्वर के लिए मर सकेंगे, मार सकेंगे, मंदिर जला सकेंगे, मस्जिद में आग लगा सकेंगे। लेकिन ये ईश्वर को जानेंगे नहीं। वह झूठा हाथ हमेशा इनको भ्रम पैदा करेगा कि हम जानते हैं।

मैं आपसे पूछता हूं, आप जो भी जीवन-सत्य के संबंध में जानते हैं, वह जानते हैं या आपके भी हाथ बचपन में सिखाए गए हाथ हैं? एक-एक आदमी को अपने से पूछ लेना जरूरी है कि मेरा ज्ञान जाना हुआ है या सीखा हुआ? सीखा हुआ ज्ञान झूठा होता है। सीखे हुए ज्ञान का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। सीखा हुआ ज्ञान मुक्ति के मार्ग पर साधक नहीं, बाधक है। पूछें अपने से कि क्या मैं जो जानता हूं वह जानता हूं? या कि मुझे कुछ लोगों ने कुछ बातें सिखा दी हैं?

हिंदुस्तान में आप पैदा हुए हैं, तो आपको सिखा दिया गया कि ईश्वर है। अगर आप रूस में पैदा होते, और वहां भी बीस करोड़ लोग हैं, वे वहां पैदा हुए हैं, उनको बचपन से सिखाया जा रहा है कि ईश्वर नहीं है। बीस करोड़ का मुल्क कहता है कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि उसको सिखाया गया है कि ईश्वर नहीं है। आप कहते हैं कि ईश्वर है, आपको सिखाया गया है कि ईश्वर है। और आप समझते हों कि आप उनसे बेहतर हालत में हैं, तो आप गलती में हैं। हमारी और उनकी हालत बिल्कुल एक सी है। क्या सिखाया गया है, यह सवाल नहीं है; जो भी सिखाया गया है वह झूठा है, वह सिखाया हुआ सत्य कभी भी नहीं हो सकता। जाना हुआ नहीं है वह। न तो रूस का बच्चा जानता है कि ईश्वर नहीं है, न भारत का बच्चा जानता है कि ईश्वर है। लेकिन दोनों को प्रपोगेट किया जा रहा है, दोनों को सिखाई जा रही हैं बातें, पिलाई जा रही हैं बातें, कि सीखो कि यह है, यह है। जैन घर में बच्चा पैदा होता है तो एक तरह के विचार उसको सिखाएं जाते हैं, हिंदू घर में तो दूसरे तरह के, मुसलमान घर में तो तीसरे तरह के; आस्तिक के घर में तो एक तरह के, नास्तिक के घर में तो दूसरे तरह के; लेकिन सभी सिखाई गई बातें बाहर से आती हैं। और जीवन का जो वास्तविक अनुभव है वह भीतर से आता है, वह बाहर से नहीं आता। सारा तथाकथित ज्ञान, सो-काल्ड नालेज बाहर से आती है, इसलिए दो कौड़ी की है, कचरा है। भीतर से कुछ आता है, उसे हम आने ही नहीं देते। इस बाहर से आए हुए कचरे को हम इतना भर लेते हैं कि भीतर के झरने फूट नहीं पाते, सब तरफ से अवरुद्ध हो जाते हैं।

एक छोटी सी बात से समझाने की कोशिश करूं, इस तीसरी खूंटी को। एक आदमी कुआं खोदता है, एक दूसरा आदमी हौज बनाता है। हौज में भी पानी दिखाई पड़ता है, कुएं में भी पानी दिखाई पड़ता है। लेकिन दोनों में बुनियादी भेद है, पृथ्वी और आकाश जितना अंतर है। क्या अंतर है दोनों में? कुआं जब हम खोदते हैं तो कुआं खोदना पड़ता है नीचे की तरफ, गहराई में। हौज जब हम बनाते हैं, हौज उठानी पड़ती है ऊपर की तरफ, उथले की तरफ। हौज ऊपर की तरफ उठानी पड़ती है; कुआं नीचे की तरफ खोदना पड़ता है। उनकी दिशाएं भिन्न हैं।

कुएं में जो कंकड़-पत्थर, मिट्टी-चट्टानें हैं, उनको निकाल-निकाल कर बाहर फेंक देना पड़ता है। फिर पानी अपने आप प्रकट होता है, पानी को लाना नहीं पड़ता; सिर्फ बाधाएं हटानी पड़ती हैं, पानी आ जाता है। पानी हमेशा मौजूद है; बीच की मिट्टी की पर्तें तोड़ दें, और पानी प्रकट हो जाता है। कुएं में पानी लाकर भरना नहीं

पड़ता, पानी आता है भीतर से, सिर्फ बीच की बाधाएं हटा देनी पड़ती हैं। मिट्टी, पत्थर, चट्टानें अलग कर देनी पड़ती हैं। हौज में? हौज में मिट्टी-पत्थर लाकर दीवाल जोड़नी पड़ती है; मिट्टी-पत्थर हटाना नहीं पड़ता, लाकर बनाना पड़ता है। फिर भी हौज बन कर तैयार हो जाती है, लेकिन खाली होती है, उसमें कोई पानी अपने आप नहीं आ जाता। फिर पानी भी उधार मांगना पड़ता है किसी कुएं से। उस उधार पानी को लाकर भरना पड़ता है। हौज के पास उधार पानी होता है, अपना नहीं।

पंडित हौज की तरह होता है, ज्ञानी कुएं की तरह। पंडित के पास सब उधार है, सब बासा, सब बारोड। ज्ञानी के पास कुछ अपना है, स्वयं से आया हुआ, खोदा हुआ, पाया हुआ। सिर्फ बाधाएं हटा दी हैं उसने और भीतर के प्राणों के केंद्र से ज्ञान की धाराएं बहनी शुरू हो गई हैं।

फिर कुएं और हौज में और भी भेद होते हैं। कुएं के पास जल के स्रोत होते हैं जो दूर सागर से जुड़े होते हैं। कुआं अपने में क्लोज्ड और बंद नहीं होता, कुआं खुला होता है सागर की तरफ, दूर अज्ञात झरने उसे अज्ञात सरोवरों से जोड़े रहते हैं। हौज? हौज क्लोज्ड और बंद होती है, उसका किसी से कोई संबंध नहीं होता। इसलिए हौज एक अहंकार बन जाती है। कुएं का अपना कोई अहंकार नहीं होता।

फिर कुआं हमेशा चिल्लाता रहता है कि मुझे उलीचो, खाली करो, मेरे पानी को ले जाओ, बांट लो। हौज दान के लिए कभी उत्सुक नहीं होती। हौज कहती है, लाओ, और लाओ, और मुझे भरते रहो। हौज संग्रह के लिए उत्सुक होती है, कुआं दान के लिए उत्सुक होता है। हौज अगर कहेगी कि मुझे बांट लो, तो हौज तो खत्म हो जाएगी, आत्महत्या होगी उसका दान, क्योंकि उसके पास अपना कुछ भी नहीं है। यह बड़े मजे की बात है, अपना कुछ हो, तो कितना ही बांटो, समाप्त नहीं होता। यही अपने होने का सबूत है। अपना कुछ न हो, तो बांटो तो खत्म हो जाता है। हौज अगर बांट दे तो खाली और रिक्त हो जाएगी। इसलिए हौज डरती है कि कोई पानी ले न जाए। पानी आ जाए, आ जाए, आ जाए। कुआं चिल्लाता है, मुझे उलीचो! क्योंकि कुआं जितना खाली होता है, उतने ही नये जल के स्रोत उसे ताजा और जवान कर देते हैं, वह उतना ही नये जल से भर जाता है।

पंडित संग्रह करता है ज्ञान का। ज्ञानी? ज्ञानी संग्रह नहीं करता। संग्रह से जो मिलता है वह पराया ही होगा। ज्ञानी अपने भीतर खोदता है और जो बंद है उसे मुक्त करता है, जो छिपा है उसे प्रकट करता है, जो गुप्त है उसे मुक्त आकाश की दिशा देता है। ज्ञानी के भीतर से कुछ बाहर की तरफ आता है, पंडित के बाहर से कुछ भीतर की तरफ जाता है।

और अंतिम रूप से मैं आपसे कहना चाहता हूं, कल मैंने कहा था, कुछ लोग अपने को कचरे से भर लेते हैं। कचरे की एक ही परिभाषा हैः जो बाहर से भीतर की तरफ आता है वह कचरा है; जो भीतर से बाहर की तरफ जाता है वह संपदा है। क्योंकि जो भीतर से बाहर की तरफ जाता है वह स्वरूप है, वह हमारा वास्तविक होना है, वह हमारी आथेंटिक बीइंग है, वह हमारी आत्मा है। और जो बाहर से भीतर की तरफ आता है वह उधार है, बासा है, मृत है।

इसलिए बाहर से अपने भीतर ज्ञान को मत भर लेना, वह झूठा ज्ञान है, वह तीसरी मिथ्या खूंटी है, उससे मुक्त होना। और उसकी प्रतीक्षा करना जो भीतर छिपा है और प्रकट हो। और जब तक वह भीतर का प्रकट न हो तब तक जानना कि आपने कुछ न कुछ बाहर का पकड़ रखा है, जिसके कारण वह प्रकट नहीं हो रहा है। जब तक वह प्रकट न हो तब तक जानना कि झरनों के द्वार पर कोई पत्थर की चट्टानें अटकी हुई हैं। और उन चट्टानों को अलग कर देना जरूरी है तब झरने प्रकट होंगे।

ये तीन बातें स्मरणीय हैं। यह दूसरा सूत्र पूरा हुआ। मनुष्य अपने को कचरे से भर ले, तो सत्य की संपदा को पाने का अधिकारी नहीं हो सकता है। कल हम तीसरे सूत्र की रात्रि में बात करेंगे।

हमने दो सूत्रों की बात की। कल पहले सूत्र की बात की कि कुछ लोग जीवन को छूते ही नहीं और व्यर्थ मर जाते हैं। आज दूसरे सूत्र की बात की कि कुछ लोग जीवन को छूते हैं तो कचरे से भर लेते हैं और दीन और दरिद्र रह जाते हैं। कल हम उन तीसरी दिशा की बात करेंगे कि व्यक्ति जीवन को छुए भी और कचरे से नहीं, प्रकाश से; व्यर्थ से नहीं, सार्थक से अपने को कैसे भर ले। जीवन कैसे आलोकित हो सकता है, वह जीवन की बुझी ज्योति कैसे जल सकती है, जीवन कैसे एक आनंद, एक संगीत और एक नृत्य बन सकता है, उस तीसरे सूत्र की बात कल रात्रि हम करेंगे। और कल सुबह, आज जो मैंने कहा है इस संबंध में कोई प्रश्न आपके होंगे, तो सुबह उनकी बात करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

नई दृष्टि का जन्म

मेरे प्रिय आत्मन्!

बीती चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न उपस्थित हुए हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि मैंने कल कहा कि अतीत में ऐसे शिक्षक हुए हैं जिन्होंने जीवन को असार बताया। उन मित्र ने कहा है कि जीवन को असार किसी ने भी नहीं बताया, संसार को असार बताया है।

संसार को भी असार बताया हो तो गलत बताया है, संसार असार नहीं है। संसार को देखने की दृष्टि गलत हो तो संसार असार दिखाई पड़ेगा। संसार को देखने की दृष्टि सएयक हो तो संसार ही प्रभु के रूप में परिवर्तित हो जाता है। दृष्टि ही गलत हो सकती है, और कुछ भी गलत नहीं है।

लेकिन आदमी की पुरानी कमजोरी है, और वह यह कि दोष कभी वह अपने ऊपर नहीं लेना चाहता है, दोष सदा किसी और पर डाल देना चाहता है। संसार असार है, यह कहना सुविधापूर्ण मालूम होता है, बजाय इसके कि मेरी दृष्टि अंधी है, मेरी दृष्टि गलत है। संसार को असार कहने से मुझे स्वयं को नहीं बदलना पड़ता; लेकिन मेरे देखने को ढंग गलत है, तो मुझे स्वयं को बदलने की जरूरत आ जाती है।

एक छोटी सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूं। एक गांव में सुबह सूरज निकलता था, और एक घुड़सवार आकर रुका गांव के बाहर, गांव के द्वार पर। द्वार पर बैठे हुए एक बूढ़े आदमी से उसने पूछा कि मैं एक बात जानना चाहता हूंः इस गांव के लोग कैसे हैं? मैंने अपना पुराना गांव छोड़ दिया और मैं नये गांव की तलाश में हूं जहां निवास कर सकूं। मैं जानना चाहता हूंः इस गांव के लोग कैसे हैं? यह गांव कैसा है? अगर अच्छा हो तो मैं यहां बस जाऊं।

उस बूढ़े ने उस घुड़सवार को नीचे से ऊपर तक गौर से देखा, और फिर कहा कि इस प्रश्न का उत्तर मैं तभी दे सकता हूं जब मेरे एक प्रश्न का उत्तर आप पहले दे दें। मैं जानना चाहता हूं कि उस गांव के लोग कैसे थे जिसे आप ने छोड़ दिया है?

यह बात सुनते ही उस आदमी की आंखें क्रोध के अंगारों से भर गईं। और उसने कहा कि उस दुष्ट गांव का स्मरण भी न दिलाना। उस गांव से बदतर लोग जमीन पर कहीं भी नहीं हो सकते। उन्हीं दुष्टों के कारण मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा है। और यह आशा और प्रार्थना लेकर गांव छोड़ा है कि जिस दिन मेरे हाथ में शक्ति होगी, उन्हें बताऊंगा। मेरे साथ जो दुर्व्यवहार किया गया है उसका फल उन्हें निश्चित चखाना है।

उस बूढ़े आदमी ने कहा कि फिर क्षमा करें! मैं आपसे कहता हूं कि मैं सत्तर वर्षों से इस गांव में रह रहा हूं, इस गांव के लोग उस गांव से भी बुरे हैं। आप कोई और गांव खोज लें, इस गांव के लोग अच्छे नहीं हैं।

वह घुड़सवार जा भी नहीं पाया था कि पीछे से एक बैलगाड़ी आकर रुकी और उसमें सवार आदमी ने पूछा कि बाबा, क्या मैं पूछ सकता हूं, इस गांव के लोग कैसे हैं? मैंने अपना गांव छोड़ दिया है।

उस बूढ़े ने कहा, बड़े आश्चर्य की बात, बड़े संयोग की बात, अभी मैं इसका उत्तर दिया ही हूं! लेकिन फिर मुझे पूछना पड़ेगा, तुएहारे गांव के लोग कैसे थे जिसे तुमने छोड़ दिया?

उस बैलगाड़ी के सवार की आंखें खुशी के आंसुओं से भर गईं। और उसने कहा, उनकी स्मृति भी मुझे आनंद से भर देती है। उतने प्यारे लोग शायद पृथ्वी के किसी गांव में खोजने से न मिलें। दुर्भाग्य मेरा कि किसी मुसीबत में मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा। और यह ही आशा लेकर गांव छोड़ा हूं कि जब भी सौभाग्य होगा तब वापस उसी गांव में जाकर बस जाऊंगा। कैसे हैं इस गांव के लोग?

उस बूढ़े ने कहा, बैलगाड़ी गांव के भीतर मोड़ लो। मैं तुएहारा स्वागत करता हूं और विश्वास दिलाता हूं, मैं सत्तर वर्षों से इस गांव में हूं, इस गांव से प्यारे और अच्छे लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं खोजे जा सकते हैं।

मैं भी उस गांव के दरवाजे पर था और मैंने उस बूढ़े की ये दोनों बातें सुनीं। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अगर मैंने एक ही बात सुनी होती तो ठीक था। पहले आदमी से उसने कहा था कि इससे बुरे आदमी कहीं भी खोजने कठिन हैं और दूसरे आदमी से उसी ने कहा कि इस गांव से अच्छे आदमी खोजने कठिन हैं। जब वह बैलगाड़ी गांव के भीतर चली गई, तो मैंने उस बूढ़े से पूछा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं, इस गांव के लोग आखिर कैसे हैं?

उस बूढ़े ने कहा, हर गांव के लोग वैसे ही होते हैं जैसे आप होते हैं। गांव के लोग आपके ऊपर निर्भर करते हैं कि आप कैसे हैं। गांव स्वर्ग हो जाता है अगर आपके भीतर प्रेम है; गांव नरक हो जाता है अगर आपके भीतर घृणा है।

संसार तो बड़ा गांव है। थोड़ी देर के लिए हम उसमें मेहमान होते हैं। और उन लोगों को मैं अधार्मिक कहता हूं जो संसार को असार कहते हैं। धार्मिक आदमी मैं उसको कहता हूं जो असार को खोजता हो तो अपनी दृष्टि में, अपने मन में, अपने में। अगर संसार बुरा दिखाई पड़ता हो, असार दिखाई पड़ता हो, शत्रु दिखाई पड़ता हो, तो जान लेना ठीक से कि वह उसी बात का प्रक्षेपण है जो आपके भीतर छिपी है, वह उसी का प्रोजेक्शन है। हम दूसरे में उसी को खोज लेते हैं जो हम हैं। आप होंगे असार, तो संसार असार हो जाता है। जिस दिन आप सार को उपलब्ध होंगे, उस दिन इस जगत में कुछ भी असार नहीं रह जाता।

मूलतः व्यक्ति है महत्वपूर्ण, मूलतः हम भीतर जो हैं वह है महत्वपूर्ण। और सारा जगत हमारे भीतर जो है उसी रूप में दिखाई पड़ता है। असार चित्त को, गलत देखने की दृष्टि को सारा जगत कांटों से भरा हुआ मालूम पड़ता है। ठीक दृष्टि को, सएयक दृष्टि को सारा जगत फूल से भरा हुआ दिखाई पड़ता है। न जगत फूल है, न जगत कांटा है; आप क्या हैं, जगत वही हो जाता है।

इसलिए मैं न तो जीवन को असार कहने के पक्ष में हूं, न संसार को। सारी जिएमेवारी मेरे ऊपर है; मैं कैसे देखता हूं, इस पर सब कुछ निर्भर है। और इस बात पर इसलिए जोर देना चाहता हूं कि संसार को आप नहीं बदल सकते हैं, लेकिन अपने को बदल सकते हैं। संसार से आप भाग भी नहीं सकते हैं। जो संसार से भागने के ख्याल में होते हैं वे गलती में होंगे। जितना गृहस्थ संसार में रहता है उतना ही संन्यासी भी संसार में रहता है। कोई संसार के बाहर जा नहीं सकता। जीते जी संसार के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। गृहस्थ एक ढंग से रहता है संसार में, संन्यासी दूसरे ढंग से रहता है संसार में। लेकिन संसार के बाहर कोई भी नहीं जा सकता है। रहने का ढंग बदल सकता है, देखने की दृष्टि बदल सकती है, लेकिन संसार से भाग कर जाइएगा कहां? जहां भी आप पहुंचेंगे वहीं जो है वह संसार है।

घर में भी संसार उतना ही है जितना आश्रम में है। और सफेद वस्त्रों में भी संसार उतना ही है जितना गैरिक वस्त्रों में है। गेरुआ वस्त्र पहन लेने से संसार कुछ कम नहीं हो जाता। संसार तो वह परिस्थिति है जिसके भीतर हम जीते हैं। श्वास-श्वास संसार है; उठना, बैठना संसार है; आंख खोलना, बंद करना संसार है। जीवन ही संसार है। भाग कर जाइएगा कहां? भागने का कोई उपाय नहीं।

लेकिन जो लोग इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि संसार से भागना है, वे अपने को बदलने का ख्याल ही भूल जाते हैं; और संसार से भागते रहते हैं, भागते रहते हैं, और पाते हैं कि वे वही के वही हैं, कोई अंतर नहीं पड़ा।

एक संन्यासी हिमालय पर तीस वर्ष तक रहा। बहुत क्रोधी व्यक्ति था। बहुत अहंकारी व्यक्ति था। अहंकार और क्रोध से पीड़ित होकर ही वह हिमालय चला गया। सोचा उसनेः छोड़ दें संसार को, तो क्रोध भी छूट जाएगा, अहंकार भी छूट जाएगा। संसार बुरा है। हिमालय पर चला गया। वहां कोई समाज न था। वहां कोई मनुष्य न थे। धीरे-धीरे उसे लगा कि अब क्रोध नष्ट हो गया, अहंकार नष्ट हो गया।

असल में, मनुष्य न हों तो हमारे भीतर जो है उसके प्रकट होने के द्वार बंद हो जाते हैं। वह जो भीतर है, नष्ट नहीं होगा। एक कुएं में पानी भरा होता है, पानी को बाहर निकालने के लिए बाल्टी और रस्सी चाहिए। अगर बाल्टी और रस्सी न हो तो इसका यह मतलब नहीं कि कुएं का पानी खतम हो गया। एक-एक आदमी के भीतर क्या भरा हुआ है, उसे निकालने के लिए दूसरे मनुष्यों की मौजूदगी चाहिए। अगर आपके भीतर क्रोध है तो दूसरे आदमी की मौजूदगी आपके क्रोध को बाहर निकाल लेती है। दूसरे आदमी की मौजूदगी रस्सी और बालटी का काम करती है। लेकिन अगर दूसरा आदमी मौजूद नहीं है तो आपके कुएं में जो भी भरा है--क्रोध, अहंकार या जो भी, वह निकलता नहीं, वह भीतर ही पड़ा रह जाता है। उससे यह भ्रम पैदा होता है कि मेरा क्रोध समाप्त हो गया।

तीस वर्ष हिमालय के एकांत में उस आदमी को पक्का विश्वास आ गया कि अब न क्रोध है, अब न अहंकार है। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति नीचे पहाड़ों पर उतरने लगी। एक बहुत बड़ा कुंभ का मेला था। और कुछ लोग उसके पास गए और उन्होंने निवेदन किया कि आप नीचे चलें और लोगों को दर्शन दें। उसने भी सोचा कि अब तो मैं क्रोध को जीत लिया, अहंकार को जीत लिया, अब चलूं, अब कोई हर्ज नहीं है।

वह उन लोगों के साथ पहाड़ से नीचे उतरा। मेले में तो लाखों लोग थे। जब वह मेले की भीड़ में अंदर चलने लगा, भीड़-भड़क्का था, भारी भीड़ थी, पागल की तरह लोग भागे चले जा रहे थे। और उसे कोई पहचानता भी नहीं था। एक आदमी का जूता उसके पैर पर पड़ गया। और एक सेकेंड में बीच के तीस साल मिट गए और वह वही आदमी हो गया जो तीस साल पहले था। उसने कहा, अंधे, दिखाई नहीं पड़ता? क्रोध वापस खड़ा हो गया वहीं के वहीं! वह तो हैरान रह गया! उसे तो ख्याल था क्रोध मिट गया है।

वह वहीं से वापस लौट पड़ा। और जो उसे ले गए थे, उनसे उसने कहा कि अब मैं हिमालय नहीं जा रहा हूं, अब मैं वापस संसार में जा रहा हूं। क्योंकि हिमालय की शांति भी तीस वर्षों में जिस सत्य का मुझे दर्शन नहीं करा पाई, वह एक आदमी के जरा से संपर्क से मुझे दिखाई पड़ गया। मैं तो सोचता थाः क्रोध समाप्त हो गया। लेकिन शायद क्रोध के प्रकट होने की परिस्थितियां भर मौजूद नहीं थीं, क्रोध समाप्त नहीं हुआ था। अब मैं वापस जाता हूं लोगों के बीच में। और अगर लोगों के बीच रह कर ही मेरा क्रोध मिटे तो मैं समझूंगा कि वह मिटा। अन्यथा एकांत धोखा दे देता है, एकांत बहुत डिसेप्टिव है।

अकेले में तो हर आदमी महात्मा हो जाता है, सवाल तो भीड़ के बीच में होने का है। अकेले में महात्मा होने में कौन सी कठिनाई है। अकेले में महात्मा होने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई

आल्टरनेटिव नहीं है, महात्मा होना ही पड़ता है। दूसरे की मौजूदगी, वह जो दि अदर है, वह जो दूसरा है, वही मुझे कसौटी पर कसता है कि मैं कहां हूं। उसकी मौजूदगी मुझे खोलती है और प्रकट करती है।

कोई संसार से भाग कर सत्य को उपलब्ध नहीं होता, संसार के बीच जीवन की दृष्टि को बदलने से जरूर सत्य को उपलब्ध होता है। जिस सत्य को उपलब्ध होता है वह संसार का विरोधी सत्य नहीं होता, सच्चाई यह है कि जब उसकी आंख खुलती है तो सारा संसार ही परमात्मा के रूप में प्रकट हो जाता है।

मेरी दृष्टि में, जिसे हम संसार कहते हैं वह हमारे अंधेपन में देखा गया सत्य है; और जिसे हम परमात्मा कहते हैं वह खुली आंख से देखा गया संसार है। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं, न उनके बीच कोई विरोध है, न कोई खाई है। वही संसार है, वही सत्य है; वही संसार है, वही मोक्ष है; फर्क जो पड़ता है वह मेरे देखने में, मेरी दृष्टि में। मैं कैसे देखता हूं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।

इसलिए अगर किसी ने कहा हो, संसार असार है, तो गलत कहा है। और संसार की असारता की बात करने वाले लोगों ने ही मनुष्य के आत्म-परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा डाली है। सारी एंफेसिस, सारा जोर इस बात पर दिया जाना जरूरी है कि गलत है, तो आदमी गलत है। सारा जोर इस बात पर दिया जाना जरूरी है कि गलत हैं, तो आप गलत हैं। और जीवन में कुछ भी गलत नहीं है। जिस दिन आप ठीक हैं उस दिन सारा जीवन ठीक हो जाता है।

पत्नियों को छोड़ कर भाग रहे हैं लोग, बच्चों को छोड़ कर भाग रहे हैं। सोच रहे हैं कि संसार असार है, उसे छोड़ रहे हैं। मस्तिष्क विक्षिप्त होगा ऐसे लोगों का, पागल होंगे। पत्नी किसे बांधती है? बच्चे किसे रोकते हैं? और अगर बच्चे और पत्नी बांध सकते हैं, इतना कमजोर जो आदमी है, वह किसी से भी बंध जाएगा, वह भाग कर कहीं भी पहुंच जाएगा। चेले-चाटी बांध लेंगे, शिष्य-शिष्याएं बांध लेंगे, आश्रम की भीड़ बांध लेगी, अनुयायी बांध लेंगे, कोई भी बांध लेगा। जो इतना कमजोर है कि पत्नी और बच्चे जिसे बांध लेते हैं, वह भाग कर कहीं भी जाए, उसे कोई भी बांध लेगा। पत्नी से भाग कर अगर परमात्मा मिलता हो तो परमात्मा पत्नी से बहुत भयभीत मालूम होता है। और दो कौड़ी का है ऐसा अनुभव जो कि पत्नी को छोड़ कर भागने से मिल जाता है। बड़ी सस्ती कीमत चुकानी पड़ती है।

आज तक जमीन पर जिन लोगों ने अधिकतम दुख पैदा किया है, वे लोग हत्यारे, डाकू, चोर और बेईमान लोग नहीं हैं; जिन लोगों ने सर्वाधिक दुख पैदा किया है, वे वे लोग हैं जो जीवन को छोड़ कर भागने की शिक्षा देते रहे। कितनी पीड़ा उन्होंने पैदा की है और कितने घर और कितने जीवन बर्बाद किए हैं, इसका जिस दिन भी हिसाब लगाया जाएगा, उस दिन बदमाश और गुंडे तराजू में नहीं बिठाए जा सकेंगे। लेकिन उसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि वे परमात्मा के नाम पर किए गए पाप हैं।

गांधी श्रीलंका गए थे। कस्तूरबा भी उनके साथ थीं। गांधी भी कस्तूरबा को बा ही कहते थे। उम्र में भी एक वर्ष बड़ी थीं। देखने में भी ज्यादा उम्र की मालूम होती थीं। जिस सभा में बोलने गए थे, उसके संयोजकों ने समझा कि गांधी आए हैं और साथ में उनकी मां भी आई हैं। फिर गांधी को बा कहते सुना तो वह पक्का हो गया कि उनकी मां हैं। किसी से पूछा-ताछा नहीं। फिर जब परिचय दिया संयोजक ने सभा में, तो उसने यह कहा कि हम बड़े सौभाग्यशाली हैं, गांधी तो आए ही, और बड़ा सौभाग्य कि उनकी मां भी साथ आई हुई हैं, वे उनके बगल में बैठी हैं।

गांधी के सेक्रेटरी घबड़ा गए कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई--पत्नी को मां बताते हैं! गांधी बहुत नाराज होंगे। शायद कहेंगे कि यह तो सेक्रेटरियों की गलती है, उनको बताना चाहिए था कि साथ में कौन है। लेकिन अब तो बहुत देर हो गई थी, संयोजक परिचय भी दे चुके और गांधी बोलने के लिए भी बैठ गए।

लेकिन गांधी जी ने जो कहा वह सोचने जैसा है। गांधी ने कहा कि मेरे मित्रों ने मेरी पत्नी को भूल से मां बता दिया है। लेकिन उन्होंने भूल से एक सत्य बात की घोषणा कर दी है; बा इधर कई वर्षों से मेरी मां हो गई है, मेरी पत्नी नहीं। उन्होंने भूल से एक सत्य ही कह दिया है; कस्तूरबा कभी मेरी पत्नी थी, अब मेरी मां है।

पत्नी को छोड़ कर नहीं भागा यह आदमी, लेकिन पत्नी मां में परिवर्तित हो गई। इसे मैं दृष्टि का बदलना कहता हूं, यह संन्यासी का रुख है। पत्नी को छोड़ कर भागना बड़ी साधारण चीज है। लेकिन पत्नी मां बन जाए, सवाल यह है, असाधारण यह है। पत्नी को छोड़ कर भागने में कोई दृष्टि की क्रांति नहीं है, केवल परिस्थिति बदलती है, मनोस्थिति नहीं। पत्नी मां बन जाए तो दृष्टि बदलती है, मनोस्थिति बदलती है, मैं बदलता हूं। पत्नी को छोड़ कर भागने में सिर्फ एक स्थिति बदलती है। स्थिति बदलने से मन कब बदला है और कैसे बदल सकता है? वह जो पत्नी बनाने वाला मन है वह फिर किसी और स्त्री को पत्नी की तरह देखना शुरू कर देगा। वह मन मेरे साथ है! जो एक स्त्री को पत्नी बना लेता है, वह कोण मेरे साथ है, वह दृष्टि मेरे साथ है, वह मैं हूं। एक पत्नी को छोड़ कर भागूंगा, कल सड़क पर एक दूसरी स्त्री दिखाई पड़ेगी और मन मेरा उसे पत्नी बना लेगा, दुनिया जाने या न जाने।

स्त्रियों को छोड़ कर भागने वाले लोग दिन-रात स्त्रियों के ही सपने देखते हैं। चौबीस घंटे स्त्री उनका पीछा करती है। जागते, सोते, राम का स्मरण करते भी स्त्री की तस्वीर पीछे पड़ी रहती है। स्त्री से घबड़ा कर इन लोगों ने नहीं कहा है कि स्त्री नरक है; स्त्री की जो कल्पना और कामना पीछा करती है, उससे घबड़ा कर कहा है कि स्त्री नरक का द्वार है। न कोई स्त्री पुरुष को छोड़ कर पुरुष से बच सकती है, न कोई पुरुष स्त्री को छोड़ कर बच सकता है। लेकिन अगर दृष्टि बदल जाए, तो न कोई स्त्री रह जाती है, न कोई पुरुष रह जाता है।

संसार असार नहीं है, और न परिवार असार है, और न बच्चे और पत्नियां असार हैं। असार अगर है तो मेरी दृष्टि, मेरी दृष्टि का बिंदु, मेरे देखने का ढंग। लेकिन बहुत मजा आता है कि दूसरे पर दोष थोप दें और खुद को बचा लें।

यह मजा धार्मिक आदमी का मजा नहीं है। जिन लोगों ने स्त्रियों को गालियां दी हैं आज तक, इस कारण ही वे धार्मिक नहीं रह गए कि वे स्त्री को गाली दे रहे हैं। स्त्री को गाली देने का मतलब यह है कि अब तक उनके मन से सेक्स का छुटकारा नहीं हुआ है। स्त्री उन्हें खींच रही है। और जो खींच रहा है, गुस्से में उसे वे गाली दे रहे हैं, क्रोध में, प्रतिशोध में गाली दे रहे हैं। असल में, जिस चीज से भी हम बचना चाहते हैं और छूटना चाहते हैं उसी में ग्रसित हो जाते हैं।

एक मुसलमान फकीर था, एक बहुत अदभुत आदमी था--नसरुद्दीन। एक दिन सांझ की बात है, वह अपने घर से बाहर निकला, और देखा कि घोड़े पर सवार उसके बचपन का एक मित्र चला आ रहा है। मित्र द्वार पर रुका तो नसरुद्दीन ने उसका स्वागत किया और कहा, दोस्त, तुम घर में विश्राम करो, मैं बहुत जरूरी काम से दो-तीन मित्रों से मिलने जा रहा हूं। घंटे, आधा घंटे में वापस लौट आऊंगा। या तुएहारी मर्जी हो तो साथ चले चलो, रास्ते में कुछ बातचीत भी हो लेगी, बहुत दिन बाद मिले हो। और सूने घर में तुएहें छोड़ जाऊं, यह अच्छा भी नहीं लगता। और फिर मुझे जाना भी अत्यंत जरूरी है, मैं वचन दे दिया हूं। उस मित्र ने कहा कि मैं

चल सकता हूं, लेकिन मेरे कपड़े सब धूल-धूसरित हो गए हैं, अगर तुएहारे पास कोई अच्छे कपड़े हों तो मुझे दे दो, तो मैं बदल लूं और तुएहारे साथ चल पड़ूं।

नसरुद्दीन ने एक बहुत कीमती कोट, एक पगड़ी बचा रखी थी, कभी जरूरत पड़ती थी तो पहनता था। उसने मित्र को लाकर दे दिए। जब दोनों चले तो उसे बड़ी मुश्किल मालूम हुई। अच्छे कपड़े तो मित्र ने पहन लिए थे, वह साधारण कपड़े पहने हुए था। मित्र बहुत शानदार मालूम होने लगा और उसके साथ वह बिल्कुल नौकर-चाकर दिखने लगा। और उसे कठिनाई यह होने लगी कि मेरे ही वस्त्र हैं और मैं ही नौकर-चाकर दिखता हूं। लेकिन उसने अपने मन को समझाया कि यह क्या बात है! मित्र है अपना, पहन लिए हैं वस्त्र तो हर्ज क्या है? यह बात भूल जानी चाहिए कि वस्त्र मेरे हैं।

फिर वे पहले मकान में गए मिलने के लिए। उसने जाकर अपने मित्र का परिचय दिया उस घर के लोगों को। कहा, ये मेरे मित्र हैं जमाल। बचपन के साथी हैं, बड़े प्यारे आदमी हैं, बहुत ही अच्छे आदमी हैं, अभी-अभी आए हैं। रह गए वस्त्र, सो वस्त्र मेरे हैं, कपड़े मेरे हैं।

वह मन में दबाता रहा, दबाता रहा... कि कपड़े मेरे हैं--क्या हर्जा है? मित्र पहने हुए है, पहने हुए है! लेकिन वह जब परिचय देने बैठा तो वह दबाई हुई बात उभर कर बाहर आ गई और उसके मुंह से निकल गया कि ये हैं मित्र जमाल, रह गए कपड़े, कपड़े मेरे हैं। फिर वह पछताया कि यह क्या गलती हो गई, यह तो बड़ा मुश्किल हो गया, यह कपड़ों की बात क्यों उठा दी! मित्र भी बहुत हैरान हुआ। बाहर आकर उसने कहा कि दिमाग तो तुएहारा दुरुस्त है? यह तुमने क्या कहा? कपड़े की क्या बात उठाने की जरूरत थी? उन लोगों ने क्या सोचा होगा कि कैसा आदमी है, उधार कपड़े पहने हुए है! नसरुद्दीन ने कहा, बड़ी गलती हो गई, बड़ी भूल हो गई। क्षमा करें! आगे ऐसा नहीं होगा।

वह पछताता हुआ दूसरे घर में मित्र को ले गया। वहां जाकर परिचय दिया कि ये रहे मेरे मित्र, बचपन के दोस्त हैं, जमाल इनका नाम है। रह गए कपड़े, सो कपड़े इन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं।

लेकिन इससे भी घर के लोग बड़े हैरान हुए कि कपड़े इन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं, इसको कहने की जरूरत क्या थी। यह अनावश्यक था। जरूर कपड़े में कोई गड़बड़ है। मित्र भी थोड़ा परेशान हुआ कि यह फिर वही की वही बात हो गई। बाहर आकर उसने कहा कि अब मैं तुएहारे साथ नहीं जाऊंगा, यह क्या कपड़ों की बात उठाते हो? कपड़े की बात ही उठाने की कोई जरूरत नहीं है। लोग क्या सोचते होंगे? उसने कहा कि माफ करो। असल में, वह पहली गलती जो हो गई उसकी प्रतिक्रिया में यह दूसरी गलती हो गई। दबाया मैंने मन को, उससे सब गड़बड़ हो गया। माफ करो, ऐसा आगे नहीं होगा।

तीसरे घर में गए। और जाकर उसने कहा कि ये रहे मेरे मित्र जमाल, बचपन के दोस्त हैं। रह गई कपड़े की बात, सो कपड़े की बात करनी ही नहीं है, चाहे किसी के भी हों।

यह जो मन सप्रेस करता है, जो मन दबाता है, जिस बात को दबाता है, वही बात घेर-घेर कर उसके मन का चक्कर काटने लगती है। स्त्री से बचिए, और स्त्री ही पीछा करेगी। पुरुष से बचिए, और पुरुष पीछा करेगा। जिस बात से भागिए, भागिए, वही पीछा करेगी। क्योंकि भागना कमजोरी का लक्षण है, भागना भय का लक्षण है। और जिससे भयभीत होकर हम भागते हैं वह मजबूत हो जाता है, ताकतवर हो जाता है; हम कमजोर हो जाते हैं। फिर कमजोर का पीछा किया जा सकता है।

ये संसार से भागने वाले लोगों ने आदमी को तो बदला ही नहीं, खुद भी संसार से घिर कर ही जीए। चौबीस घंटे मन वहीं घूम रहा है, वहीं चक्कर काट रहा है। नई-नई शक्लों में वहीं घूम रहा है।

आपको पता है, जिन लोगों ने स्वर्ग की कल्पना की उन्होंने स्वर्ग में क्या व्यवस्था की है? यहां तो वे लोग सिखाते हैं कि निष्काम हो जाओ, कामना छोड़ दो, इच्छा छोड़ दो, डिजायरलेस हो जाओ। लेकिन वे कहते हैं कि डिजायरलेस होने से, इच्छारहित होने से स्वर्ग मिलेगा; और स्वर्ग में कल्पवृक्ष हैं, उन कल्पवृक्षों के नीचे बैठ जाओ और जो भी कामना करो वह तत्काल पूरी हो जाती है। बड़ा मजा है! बड़ा आश्चर्यजनक है! इच्छा छोड़ कर जहां पहुंचेंगे वहां मिलेगा कल्पवृक्ष; और उसके नीचे बैठ कर इच्छा करनी मात्र--पूर्ति हो जाती है।

यह सप्रेस्ड माइंड है, इच्छाओं को दबा रहा है, तो स्वर्ग में इच्छाओं को पूरा करने की व्यवस्था कर रहा है। यहां कह रहा है, स्त्रियों को छोड़ो, शरीर तो असार है, सौंदर्य व्यर्थ है। और स्वर्ग में? स्वर्ग में ऐसी अप्सराओं की व्यवस्था कर रहा है जिनकी उम्र सोलह वर्ष से कभी ज्यादा होती ही नहीं; बस वह सोलह वर्ष पर रुक जाती है, उसके बाद उम्र आगे नहीं बढ़ती। वहां अप्सराओं की व्यवस्था कर रहा है--चिर-सुंदर! अजीब मन है यह। यहां कह रहा है, रूप असार है, व्यर्थ है, छोड़ो इसे। किसलिए छोड़ो? अगर अप्सराओं को भोगना हो तो इसे छोड़ना जरूरी है। यहां कह रहा है, शराब मत पीओ! स्वर्ग में व्यवस्था कर रहा है कि वहां शराब दुकानों में नहीं बिकती, वहां झरने बहते हैं शराब के, चश्मे बहते हैं शराब के। यहां एक-एक कुल्हड़ में शराब पीने को मना कर रहा है और वहां कह रहा है कि नदियां बह रही हैं शराब की--डूबो, नहाओ, पीओ, जो भी करना है।

आप तो हैरान होंगे, स्वर्ग दमित इच्छाओं का प्रोजेक्शन है। जिन-जिन इच्छाओं को यहां दबा लिया है, मन कह रहा है कि कहीं इंतजाम करो उनको पाने का, पूरा करने का। तो यहां तो नहीं किया जा सकता, यह तो माया, और संसार बुरा है, असार है। फिर स्वर्ग में इंतजाम कर लो।

यह जो जिन लोगों ने नरक की कल्पना की है, यहां तो वे कहते हैं कि किसी को शत्रु मत मानो, किसी का बुरा मत करो; लेकिन वे कहते हैं, जो हमारी बात नहीं मानेगा, नरक में कढ़ाहों में चुड़ाया जाएगा, आग में डाला जाएगा। बड़े मजे के लोग हैं! यहां तो कहते हैं, किसी का बुरा मत सोचो, किसी को चोट मत पहुंचाओ, दुश्मन को भी दोस्त समझो; जो तुएहारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर दो। लेकिन वे कहते हैं कि जो हमारी बात नहीं मानेगा और हमारे शास्त्र को नहीं मानेगा, नरक में जलते हुए तेल के कढ़ाहों में उसे डाला जाएगा, आग में उसे झोंका जाएगा। और एक-दो दिन के लिए नहीं, अनंतकाल तक उसे नरक में सड़ाया जाएगा।

बड़े अजीब लोग हैं! इन भले लोगों को नरक की योजना करने की जरूरत क्या है? यहां भी उनका मन यही हो रहा है कि जो हमारी नहीं मानता उसको कढ़ाहों में जलाएं। लेकिन यहां जलाएंगे तो कौन महात्मा कहे, कौन संत कहे, कौन साधु कहे! तो नरक में इंतजाम कर रहे हैं--सड़ाए जाने का, जलाए जाने का। अपने लिए स्वर्ग का इंतजाम कर रहे हैं, अप्सराओं का, हूरों का, कल्पवृक्षों का; और शत्रुओं के लिए इंतजाम कर रहे हैं कढ़ाहों का, जलती हुई आग का, नरक के कुंडों का। सप्रेस्ड माइंड जो दबा रहा है, वह निकलना शुरू हो रहा है नये-नये रूपों में, वह नये-नये बदले ले रहा है।

मैं नहीं कहता हूं कि संसार से भागें, क्योंकि संसार से भागने का एक ही मतलब है--दमन। संसार से भागने का एक ही मतलब है--मन को दबाओ, जबरदस्ती करो। मन दबाने से कभी भी परिवर्तित नहीं होता, बल्कि मन का नियम यही है कि जिस बात के लिए आप मन को रोकना चाहते हैं, मन उसी बात के लिए आमंत्रण स्वीकार कर लेता है।

इस भवन के दरवाजे पर हम एक तख्ती लगा दें कि यहां झांकना मना है! फिर भावनगर में शायद ही एकाध ऐसा संयमी आदमी हो जो बिना झांके निकल जाए। या कि कोई आदमी है भावनगर में? हो सकता है

कोई आदमी बिना झांके निकलने की कोशिश करे, लेकिन तब वह और मुसीबत में पड़ जाएगा। भवन के आगे से निकल जाएगा, दुकान पर अपने काम में लग जाएगा, लेकिन मन उसका इसी भवन के आस-पास मंडराएगा कि पता नहीं उस तख्ती के भीतर क्या था? क्या था उस भवन के भीतर जहां लिखा था कि झांकना मना है? मंदिर में चला जाएगा और गीता रटने लगेगा, और मन उसका इसी मकान के आस-पास घूमेगा कि पता नहीं उस तख्ती के भीतर क्या था जहां लिखा था कि झांकना मना है?

बहुत संभावना तो यह है कि दिन के किसी मौके में जब कि यहां भीड़-भाड़ नहीं होगी, इस मकान के आस-पास वह आएगा। पीछे के किसी दरवाजे से आकर वह मकान में झांकने की कोशिश करेगा। दुर्जन सीधे झांक लेते हैं, सज्जन पीछे की तरफ से आकर झांकते हैं। जो सीधे-सादे लोग हैं वे वहीं पर खड़े होकर तख्ती उठा कर देखने लगेंगे, जो कनिंग हैं, जो चालाक हैं, हिपोक्रेट हैं, पाखंडी हैं, वे वहां से नहीं झांकेंगे, वहां से वे अकड़ कर आंख बंद किए भगवान के ध्यान में निकल जाएंगे, वे यहां पीछे के दरवाजे से आएंगे और झांकने की कोशिश करेंगे। और अगर बहुत भयभीत हुए कि कोई देख न ले पीछे के दरवाजे से--क्योंकि देख लें तो लोग वोट नहीं देते, देख लें तो लोग गुरु नहीं बनाते, देख लें तो लोग महात्मा नहीं कहते--तो फिर और मुसीबत शुरू हो जाएगी। दिन भर इसी मकान के संबंध में सोचेगा और रात सपने में इस मकान के दरवाजे में आकर झांकेगा, बच नहीं सकता। भागने वाला कभी नहीं बच सकता। क्योंकि जिससे हम भागते हैं उसे हमने अपने से ताकतवर समझ लिया, मान लिया, स्वीकार कर लिया। और जो हमसे ताकतवर हो गया उससे हमें पराजित होना ही पड़ेगा, उससे हम जीत नहीं सकते हैं।

संसार से भागने का सूत्र हैः दमन। और दमन निमंत्रण है, मुक्ति नहीं। दमित आदमी से ज्यादा बंधन में ग्रस्त और कोई भी नहीं होता।

सिग्मंड फ्रायड का नाम आपने सुना होगा। इस अकेले आदमी ने मनुष्य की मुक्ति के लिए जितना काम किया, उतना हजारों ऋषि-मुनियों ने मिल कर भी नहीं किया। एक दिन सांझ सिग्मंड फ्रायड, विएना के एक बगीचे में, अपनी पत्नी और अपने बच्चे के साथ घूमने गया था। रात हो गई, घंटी बज गई, बगीचा बंद होने लगा। फ्रायड अपनी पत्नी के साथ दरवाजे से निकलने लगा, तब उसकी पत्नी को ख्याल आया कि बच्चा न मालूम कहां चला गया! वे दोनों तो बातचीत में लग गए और बच्चा कहीं बगीचे में न मालूम कहां चला गया! बड़ा बगीचा है, बंद होने का समय आ गया। उसे कहां खोजेंगे? छोटा बच्चा, पत्नी बहुत घबड़ा गई कि बच्चे को कहां खोजें?

फ्रायड ने कहा, घबड़ाओ मत, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे दो, सौ में निन्यानबे मौके ये हैं कि हम तत्काल उसे खोज लेंगे। तुमने उस बच्चे को कहीं जाने को मना तो नहीं किया था? किसी खास जगह पर जाने से रोका तो नहीं था? उसकी पत्नी ने कहा, मैंने रोका था कि बड़े फव्वारे पर मत जाना। फ्रायड ने कहा, अगर तुएहारे बच्चे में थोड़ी-बहुत भी बुद्धि है तो सौ में से निन्यानबे मौके इस बात के हैं कि वह फव्वारे पर बैठा होगा। और अगर बिल्कुल निर्बुद्धि हो तुएहारा बच्चा तो खोजने में जरा तकलीफ हो जाएगी।

वे गए फव्वारे पर, अंधेरे में पैर लटकाए हुए पानी में बच्चा बैठा हुआ है। पत्नी बहुत हैरान हुई कि तुमने किस जादू से पता लगा लिया, किस ज्योतिष से, कि बच्चा फव्वारे पर होगा? फ्रायड ने कहा, पागल, मनुष्य के मन का सीधा नियम है--जहां जाने से उसे रोका जाए, वह वहीं पहुंच जाता है।

मनुष्य को अनीति में ले जाने वाले लोग, मनुष्य को दुश्चरित्रता में ले जाने वाले लोग, मनुष्य को व्यभिचार सिखाने वाले लोग वे हैं जिन्होंने मनुष्य के चित्त को किन्हीं चीजों की तरफ जाने से जबरदस्ती रोकने

की सलाह दी है। आदमी वहीं पहुंच कर खड़ा हो गया है जहां हम सोचते थे कि उसे नहीं पहुंचना है, नहीं पहुंचना चाहिए। यह जगत जो इतना विकृत और विक्षिप्त हो गया है, यह अच्छे शिक्षकों की बदौलत।

मनुष्य के मन के कीमती नियम को आज तक ठीक से समझा ही नहीं जा सका। दमन मुक्त नहीं करता, बांधता है। फिर मुक्त क्या करेगा?

मुक्त करती है समझ, अंडरस्टैंडिंग; दमन नहीं। जिस चीज से मुक्त होना है उसे पूरी तरह समझें। अगर पत्नी से मुक्त होना है तो पत्नी को समझें पूरी तरह, पत्नी के प्रति अपनी दृष्टि को समझें। और उस समझ को जितना आप गहरा करेंगे उतना ही आप पाएंगे कि आप मुक्त होते चले जा रहे हैं। सेक्स से मुक्त होना है, यौन से मुक्त होना है, तो यौन को समझें, उसके पर्त-पर्त रहस्य को समझें, उसको पूरा उघाड़ कर देखें, उसको पूरा डिस्कवर कर लें, उसका सारा आवरण तोड़ डालें--पहचानें; खोजें; समझें। जितनी समझ गहरी होगी उतना ही मनुष्य मुक्त होता है। जिस चीज से भी मुक्त होना है, उसकी समझ, उसका ज्ञान चाहिए, उसका परिपूर्ण परिचय चाहिए। संसार से मुक्त होना है तो संसार का परिपूर्ण परिचय चाहिए। और परिचय के लिए बड़ा शांत चित्त, समझपूर्वक भरी हुई प्रज्ञा, बोध, अवेयरनेस चाहिए, होश चाहिए कि हम जीवन को देखें और समझें। जिस चीज को आप समझ लेंगे, उसी से आप मुक्त हो जाते हैं। और जिस चीज से आप भागेंगे, आप उसी से बंध जाते हैं। संसार जिस दिन समझ लिया जाता है उसी दिन परमात्मा प्रकट हो जाता है। पत्नी जिस दिन समझ ली जाती है उसी दिन वह जो पत्नी का आकर्षण है, वह जो तीव्र लालसा है, वह विलीन हो जाती है।

लेकिन हमने अब तक उलटा किया है। दो छोटी बातों से मैं समझाने की कोशिश करूं। एक बहुत संयमी पिता ने यह सोचा कि मेरा जीवन तो ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो सका, लेकिन अपने बेटे को मैं ब्रह्मचारी बना कर ही रहूंगा।

पहली तो बात यह है कि कोई दूसरा किसी को बिल्कुल भी बना नहीं सकता है। इसलिए जो लोग भी किसी को बनाने की जिद्द में पड़ जाते हैं, वे उसे मिटाने और बिगाड़ने वाले सिद्ध होते हैं। लेकिन पिता अक्सर तय करता है कि बच्चे को बना कर छोडूंगा। इसीलिए अच्छे बाप के घर में अच्छा बेटा पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है। बुरे बाप के घर में कभी अच्छा बेटा पैदा भी हो सकता है, लेकिन अच्छे बाप के घर में अच्छे बेटे का पैदा होना बड़ा असंभव हो जाता है। वह अच्छा बाप इतनी चेष्टा में संलग्न हो जाता है, इतनी जबरदस्ती... और सारी जबरदस्ती सप्रेशन बनती है, सारी जबरदस्ती दमन बनती है। और दमन जिस दिन फूटता है उस दिन बिल्कुल आदमी को बेहोशी में बहा ले जाता है।

उस बाप ने तय किया कि बेटे को तो कभी वासना की झलक भी नहीं मिलने देनी।

अब बड़ी मुश्किल बात है। परमात्मा मनुष्य के भीतर वासना रखता है। लेकिन ये संयमी और शिक्षक और नैतिक, ये मारेलिस्ट, ये परमात्मा से भी ज्यादा समझदार हैं। ये वासना को मनुष्य से बिल्कुल मिटा देना चाहते हैं। कोई आदमी थोड़े ही वासना पैदा कर लेता है अपने भीतर, प्रकृति के और परमात्मा के अनिवार्य नियमों से वासना पैदा होती है। इसलिए वासना को रूपांतरित करना तो अर्थपूर्ण है, लेकिन वासना से लड़ना और वासना को तोड़ने की सारी चेष्टा मूढ़तापूर्ण है। वह परमात्मा के विरोध में लड़ाई है जो कभी नहीं जीत सकती।

लेकिन उस बाप ने तय किया कि इस बच्चे में वासना का बीज भी पैदा नहीं होने देना। जब वह एक महीने का था तभी उसने कहा अपनी पत्नी से कि मैं इसको लेकर जंगल जाता हूं। और तुएहें भी मैं साथ नहीं ले जाऊंगा, क्योंकि स्त्री अगर मौजूद रही तो बच्चे के मन में ख्याल हो सकता है कि स्त्री भी है। मैं बीस वर्ष तक तो इसे पता भी नहीं चलने देना चाहता हूं कि स्त्री कहीं है। और फिर मैं देखना चाहता हूं कि बीस वर्ष तक जिस

बच्चे ने फिल्म नहीं देखी, अश्लील किताबें नहीं पढ़ीं, औरतें नहीं देखीं, उस बच्चे के मन में सेक्स और वासना पैदा होती है कि नहीं? कभी नहीं होगी! क्योंकि यह सब गलत शिक्षा की वजह से पैदा होती है, गलत फिल्मों की वजह से पैदा होती है।

ये सारे शिक्षक यही समझाते हैंः गलत फिल्मों की वजह से लोग वासना से भरे जा रहे हैं। मामला बिल्कुल उलटा है। लोग वासना से भरे हैं इसलिए गलत फिल्म निर्मित होती है, गलत फिल्म की वजह से कोई वासना से नहीं भर सकता है।

लेकिन उस बाप का भी तर्क यही था। वह अपने लड़के को लेकर जंगल चला गया। दूर जंगल में जहां स्त्री की कोई खबर न मिले, जहां कि संसार बिल्कुल दूर था, वहां उसने खुद मेहनत करके बच्चे को बड़ा किया। वह ऐसी किताब वहां नहीं ले गया जहां स्त्री की बात चले, ऐसा शब्द नहीं जहां स्त्री का ख्याल उस बच्चे को आए। बीस वर्ष तक उसे बिल्कुल पवित्रता में, इनोसेंस में वह बांधना चाहता था।

लेकिन जैसे ही लड़का चौदह-पंद्रह वर्ष का हुआ, बेचैनी शुरू हुई। बाप ने देखा कि लड़के में कुछ फर्क होने शुरू हो गए हैं। उसका मन पढ़ने में नहीं लगता है। वह बाप से बचना चाहता है, वह यहां-वहां भागना चाहता है। लेकिन बाप अभी निश्चिंत था, क्योंकि कोई स्त्री वहां नहीं थी, कोई फिल्म वहां नहीं चल रही थी, कोई गंदी किताबें वहां नहीं थीं, कुछ भी नहीं था, लड़का बिगड़ कैसे सकता है!

लड़का बीस वर्ष का हो गया, और बाप निश्चिंत था मन में कि अब उसके ब्रह्मचर्य की पूरी शिक्षा हो गई है। परमात्मा, और परमात्मा, और परमात्मा के सिवाय कोई बात कभी नहीं की गई। उपनिषद और गीता के सूत्र रटाए, धर्मग्रंथों के वचन सिखाए, और पता भी नहीं चलने दिया कि जीवन में वासना जैसी भी कोई चीज है। जब बीस वर्ष पूरे हो गए तो बाप उस लड़के को लेकर राजधानी वापस लौटा, अपने गांव वापस लौटा। जब वे गांव के भीतर प्रवेश कर रहे थे तभी एक लड़कियों के स्कूल की छुट्टी हुई और लड़कियों की भीड़ बाहर निकली। वह जो लड़का साथ में था, वह एकदम ठिठक कर खड़ा रह गया और पिता से पूछने लगा कि ये किस प्रकार के जानवर हैं? ये कौन प्रकार के पशु हैं?

पिता ने कहा, अगर बताए कि ये स्त्रियां हैं तो झंझट शुरू न हो जाए। पिता ने कहा कि बेटे, ये खास तरह के पशु हैं। इनका नाम राजहंस है। फिर लड़के को वह ले जाने लगा, लेकिन लड़का जा तो आगे की तरफ रहा है, लेकिन आंखें उसकी पीछे की तरफ, बार-बार लौट कर देख रहा है। पिता उससे कहने लगा, पीछे क्या देखता है? अरे वे पशु हैं, राजहंस हैं, चल आगे की तरफ! लेकिन उसके पैर ठिठक-ठिठक जाते हैं, वह पीछे लौट-लौट कर देखना चाहता है, वहां जहां लड़कियां हैं। पिता कुछ चिंतित हुआ और घबड़ाया। उसने कहा, यह तो बड़ी गलती हुई जा रही है, कहीं इसके मन में ख्याल तो पैदा नहीं हो रहा! वह लड़के को फिर गांव के भीतर नहीं ले गया, बाहर से उसने कहा, अच्छा वापस चलें हम, फिर कभी लौटेंगे।

लेकिन लौटते में लड़का एकदम उदास हो गया। बाप पूछने लगा कि बहुत सी दुकानें तुझे दिखाई पड़ी थीं, बहुत सा सामान तुझे दिखाई पड़ा था, कोई चीज खरीदने का मन तो नहीं हो गया, इसलिए तू इतना उदास है? उसने कहा कि जरूर एक चीज खरीदने का मन है, एक राजहंस खरीद दें; बहुत प्यारा जानवर था, बहुत ही अच्छा लगता था। एक राजहंस ले आएं पिताजी, तो वहां आश्रम में, जंगल में बहुत अच्छा लगेगा।

कोई फिल्म नहीं देखी, कोई किताब नहीं पढ़ी, और लड़का बिगड़ गया। भगवान ही बिगाड़ने को उतारू है, आप क्या करिएगा! भगवान की मर्जी कुछ बिगाड़ने की है।

नहीं, इस भांति दबा कर कुछ भी नहीं रोका जा सकता। यह बच्चा और भी तीव्रता से पीड़ित हो जाएगा।

जीवन भागना और दमन नहीं है। जीवन जानना और जागना है, पहचानना और परिचित होना है। मैं इस सूत्र के संबंध में आज रात आपसे बात करने को हूं--कि जीवन कैसे जाना, कैसे पहचाना जा सकता है, ताकि जीवन धीरे-धीरे परमात्मा में परिवर्तित हो जाए! सेक्स कैसे पहचाना और जाना जा सकता है कि धीरे-धीरे काम की वासना भी ब्रह्मचर्य बन जाए। जीवन एक रूपांतरण है--ज्ञान के माध्यम से। और कोई रूपांतरण, कोई ट्रांसफॉर्मेशन नहीं है।

एक आदमी खाद ले आए और अपने घर के बाहर ढेर इकट्ठा कर ले, तो सारे मोहल्ले में बदबू फैल जाएगी। और वही आदमी खाद को बगिया में डाल दे और बीज बो दे, तो फूल आएंगे और खाद फूलों के द्वारा सुगंध बन कर सारे गांव को खुशबू से भर देगी। खाद दुर्गंध पैदा करती है, लेकिन वृक्ष में से, पौधे में से गुजर कर ट्रांसफार्म हो जाती है, सुगंध बन जाती है।

जीवन में जो आपको बुरा मालूम पड़ रहा है, वह सब शुभ बन सकता है। जो असुंदर मालूम पड़ रहा है, वह सुंदर बन सकता है। जो अशुभ मालूम पड़ता है, वह शुभ बन सकता है। जो असत्य मालूम पड़ता है, वह सत्य बन सकता है। जो आपको असार मालूम पड़ रहा है, वह सारभूत हो सकता है। सिर्फ आपकी दृष्टि की कीमिया से गुजरने का सवाल है। सिर्फ आपकी दृष्टि के रूपांतरित, ट्रांसफार्म होने का सवाल है। और तब सब बदल जाता है, सब एकदम बदल जाता है।

एक छोटी सी घटना और मैं अपनी बात को पूरा करूं। जापान में एक मुकदमा चला। और उस मुकदमे की सारे उनके देश में चर्चा हुई। मुकदमे के चलने के तीन साल पहले, एक रात अंधेरी रात में, एक फकीर के झोपड़े पर, एक संन्यासी के झोपड़े पर एक चोर घुस गया। दरवाजा अटका हुआ था, अंधेरी रात थी, चोर ने हाथ लगाया, दरवाजा खुल गया। चोर ने सोचा होगा कि संन्यासी सो रहा है, लेकिन वह जाग रहा था और कोई पत्र लिख रहा था। चोर ने घबड़ाहट में छुरा निकाल लिया। संन्यासी सामने था, भागने का भी उपाय नहीं था एकदम से। संन्यासी ने आंख उठा कर देखा और कहा कि दोस्त, थोड़ा बैठ जाओ, मैं थोड़ा पत्र पूरा कर लूं। उससे कहा कि बैठ जाओ, खड़े मत रहो।

वह चोर घबड़ाहट में उसकी कुर्सी पर बैठ गया। और संन्यासी पत्र लिख कर पूरा किया और उसने कहा कि अब बोलो, कैसे आए? क्या काम है? छुरा किसलिए निकाले हुए हो, मेरी जान चाहते हो? उस चोर ने कहा कि नहीं, जान नहीं चाहता हूं। तो छुरा अपने भीतर रख लो! छुरे को बाहर निकालने की क्या जरूरत है? बेकार थक गए होओगे! मैं चिट्ठी लिख रहा हूं, तुम छुरा ही पकड़े बैठे हुए हो? पागल हो, उस छुरे को भीतर करो! घबड़ाहट में छुरा भी उस चोर ने भीतर कर लिया। अब संन्यासी ने पूछा, आए कैसे? इतनी रात आए हो तो जरूर कोई प्रयोजन होगा। मैं क्या सेवा कर सकता हूं, बोलो?

उस चोर को लगा कि बड़ा सीधा आदमी है, बड़ा भोला आदमी है। कुछ नहीं समझ रहा है कि मैं छुरा लिए आया हूं, आधी रात में घुसा हूं, तो चोरी के लिए घुसा हूं। उसने कहा कि शायद आप समझे नहीं, लेकिन आप इतने भोले और सीधे आदमी मालूम पड़ते हैं कि मैं भी असत्य बोलने का साहस नहीं जुटा पा रहा हूं, मैं सत्य ही बोल देता हूं, मैं चोरी करने आया हूं। संन्यासी खूब हंसने लगा कि बड़े पागल हो। अरे पागल, चोरी करने आए थे तो किसी महल में जाना था, यहां क्या हो सकता है! और अगर चोरी करने ही आना था तो एकाध-दो दिन पहले मुझसे कह जाता तो मैं कोई व्यवस्था कर रखता, जिसे तू चुरा सकता। इधर कुछ है नहीं, सिर्फ दस रुपये पड़े हैं। वे भी आज सुबह एक आदमी भेंट कर गया, मैं उसे मना करता रहा कि कोई जरूरत नहीं है, लेकिन वह दे गया। लेकिन दस रुपये लेकर तुम जाओगे तो मुझे बड़ा दुख होगा, कि इतनी आधी रात में

आदमी आया इतनी दूर, इतना परेशान हुआ, और सिर्फ दस रुपये लेकर जा सका! लेकिन फिर भी, और कुछ नहीं है, तुम दस रुपये ले जाओ। वह आले पर दस रुपये रखे हैं।

वह चोर उठा, उसने दस रुपये उठाए और जाने लगा, तो संन्यासी ने कहा, एक कृपा करो, सुबह से ही मुझे दूध या कुछ जरूरत पड़ेगी, एकाध रुपया छोड़ दोगे तो बड़ा धन्यवाद होगा। यह उधारी रही, एक रुपया मैं वापस लौटा दूंगा। यह मैं तुमसे उधार मांगता हूं। चोर ने एक रुपया वापस रख दिया और दरवाजे के बाहर निकलता था, तब संन्यासी ने कहा कि सुन, कैसा पागल आदमी है, धन्यवाद भी नहीं दिया! और याद रख, रुपये तो आज नहीं कल खत्म हो जाएंगे, लेकिन धन्यवाद पीछे भी काम पड़ सकता है। कम से कम धन्यवाद तो दे जा। इतना शिष्टाचार भी नहीं, इतना मैनर भी नहीं सीखा! उस चोर ने धन्यवाद दिया और भागा।

तीन साल बाद वह पकड़ा गया। और बहुत से चोरी के मामले थे उसके ऊपर, यह संन्यासी की चोरी का मामला भी था। संन्यासी अदालत में बुलाया गया। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि आप इस आदमी को पहचानते हो? उसने कहा, भलीभांति पहचानता हूं, यह मेरा दोस्त है। एक रात जब इस पर मुसीबत पड़ी तो इसने मुझको याद किया। मुसीबत में आदमी दोस्त को याद करता है। सारे गांव को छोड़ कर यह मेरे झोपड़े पर आ गया, आधी रात में। आधी रात में सिवाय दोस्त के और कौन किसके घर आता है! यह मेरा पुराना दोस्त है, भलीभांति जानता हूं। और भी एक बात आप से कह दूं कि मैं इसका ऋणी भी हूं, मुझे एक रुपया इसका लौटाना है, मैंने इससे एक रुपया उधार लिया था।

मजिस्ट्रेट ने कहा, हम यह बात नहीं जानना चाहते हैं, हम यह पूछना चाहते हैं, क्या इस आदमी ने कभी तेरे घर में चोरी की? उस संन्यासी ने कहा, चोरी! यह इतना प्यारा आदमी है कि चोरी कर कैसे सकता है? यह इतना प्यारा आदमी है कि एक रुपया मुझे उधार दे गया और तीन साल हो गए मुझसे मांगने नहीं आया। यह चोरी कर ही नहीं सकता। और अगर यह चोरी ही करने में कुशल होता तो यह मजिस्ट्रेट हो सकता था, साहूकार हो सकता था, इसे कटघरे में खड़े होने की जरूरत नहीं थी। यह कहीं दानपति हो सकता था, मंदिर बनवाने वाला हो सकता था, तीर्थ निर्माण करवाने वाला हो सकता था, अगर चोर ही होता। यह आदमी बड़ा सीधा-सादा है, यह चोर बिल्कुल नहीं है।

आदमी की दृष्टि पर निर्भर है कि चीजें कैसी दिखाई पड़ती हैं। एक संन्यासी को चोर भी चोर नहीं दिखाई पड़ सकता है। एक चोर को चारों तरफ चोर ही चोर दिखाई पड़ते हैं। जेब काटने वाला हमेशा अपनी जेब सएहाले रहता है, हमेशा! अगर किसी आदमी को जेब सएहाले देखें तो पक्का समझ लेना कि यह जेब काटने वाला है। और कोई जेब सएहालता ही नहीं, सएहालेगा किसलिए! वह जो आदमी जैसा भीतर होता है वैसा उसे सब कुछ बाहर दिखाई पड़ता है। प्रेम करने वालों को सारा जगत प्रेमियों का संसार हो जाता है। घृणा करने वालों को सारा जगत शत्रु हो जाता है।

हिटलर अपने दोस्त से दोस्त को भी रात अपने कमरे में नहीं सोने देता था। निकटतम मित्र भी हिटलर के कमरे में नहीं सो सकता था। क्योंकि डर कि कहीं रात को गर्दन न दबा दे। हिटलर सारी जिंदगी अकेला सोया। एक स्त्री को भी उसने कभी इतना प्रेम नहीं किया कि वह उसके पास अकेले में सो सके। कोई स्त्री भी जहर पिला सकती है, गर्दन दबा सकती है, गोली मार सकती है। इतना हृदय घृणा से भरा था। हिटलर ने--अकेले एक आदमी ने--एक करोड़ आदमियों की हत्या की जर्मनी में। तो जिस आदमी ने एक करोड़ आदमी मारे, वह किसी आदमी पर विश्वास कर सकता है? कैसे करेगा? उसे तो हर आदमी में दिखाई पड़ेगा हत्यारा, कि कहीं यह मार न डाले। हिटलर ने बारह वर्षों में एक बार खाना नहीं खाया जो पहले कुत्तों को न खिलाया गया हो। एक बार

पानी नहीं पीया जो पहले दूसरे आदमी को पिला कर न देखा गया हो। रात सारे ताले लगा कर चाबियां अपने बिस्तर के पास रख कर सोता रहा। रात भी डरा हुआ है, दिन भी डरा हुआ है। जिसके मन में घृणा और हिंसा है, सारा जगत उसके लिए शत्रु हो जाता है।

स्टैलिन ने रूस में अंदाजन तीस लाख से साठ लाख लोगों की हत्या की। फिर भय इतना पकड़ गया कि स्टैलिन को अपनी शक्ल-सूरत का एक आदमी खोजना पड़ा, एक डबल खोजना पड़ा। क्योंकि जब रास्तों पर निकले, सभाओं में जाए, मिलिट्री परेड में सलामी ले, तब कोई गोली न मार दे। तो बड़ी अदभुत बात, स्टैलिन तो अपने घर में ही बंद रहता था, उसकी शक्ल-सूरत का आदमी परेड में सलामी लेता था, मीटिंग में जाकर भाषण करता था। गोली लगे तो उसको लगे। भाषण स्टैलिन का तैयार किया हुआ होता था, भाषण देने वाला आदमी मंच पर दूसरा होता था। गोली लगे तो उसको लगे, मरे तो वह मरे। बड़ी हैरानी की बात है! आदमी... स्टैलिन जिंदगी भर यही कोशिश किया कि हजारों लोगों को ताली बजाते देखूं, लेकिन हिंसा और घृणा ने यह हालत कर दी कि तालियां बजाते हुए दूसरा आदमी देखता था। स्टैलिन खुद भीड़ में खड़ा नहीं हो सकता था जाकर।

जिस आदमी के भीतर घृणा है, उसके लिए सारा जगत शत्रु हो जाता है। जिस आदमी के भीतर प्रेम है, सारा जगत मित्र हो जाता है। जिस आदमी के भीतर प्रकाश है, उसके लिए सारा जगत परमात्मा हो जाता है। और जिस आदमी के भीतर अंधकार है, उसे सारा जगत असार हो जाता है। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, संसार असार नहीं, असार हैं तो हम, असार हूं तो मैं, असार हैं तो आप। और तब जो हम हैं वही दिखाई पड़ने लगता है।

मैं कैसे परिवर्तित हो सकता हूं, मैं कैसे नई दृष्टि और नई स्मृति और नई चेतना को उपलब्ध हो सकता हूं, उस संबंध में आज संध्या आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

धर्म जीवन की कला है

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी अंतिम चर्चा शुरू करना चाहता हूं। एक पूरे चांद की रात में, एक गांव में कुछ मित्रों ने आधी रात तक शराबघर में इकट्ठा होकर शराब पी ली। वे जब नशे में बिल्कुल डूब गए, तब उन्हें ख्याल आया कि पूर्णिमा की रात है, चलें नदी पर नौका-विहार करें।

वे नदी पर गए। मछुए अपनी नौकाएं बांध कर कभी के घर जा चुके थे। वे एक बड़ी नौका में सवार हो गए, उन्होंने पतवारें उठा लीं और नौका को खेना शुरू कर दिया। फिर वे तेजी से--नशे में--ताकत से नौका को खेते रहे, खेते रहे, खेते रहे। और फिर बाद में सुबह होने के करीब आ गई, उन्होंने आधी रात तक नौका चलाई, सुबह की ठंडी हवाओं ने उनके होश को थोड़ा वापस लौटाया और उन्हें ख्याल आया--हम न मालूम कितनी दूर निकल आए होंगे, अपने गांव से न मालूम कितनी दूरी पर आ गए होंगे, और न मालूम किस दिशा में आ गए हैं। अब उचित है कि हम वापस लौट चलें, सुबह होने के करीब है, और हमें वापस लौट जाना चाहिए।

उन्होंने सोचा कि एक आदमी उतर कर देख ले कि हम कहां पहुंच गए हैं--उत्तर में, दक्षिण में, कितने दूर हैं, किस गांव में हैं--किस तरह वापस लौटें?

एक मित्र नीचे उतरा, और नीचे उतर कर पागल की तरह हंसने लगा। दूसरे मित्रों ने पूछा, हंसते क्यों हो? यह बताओ हम कहां हैं? किस जगह हैं? कितने दूर हैं? लेकिन उसने कहा, तुम भी नीचे आ जाओ और तुम भी हंसोगे। उनमें से एक-एक उतरता गया और पागल होता गया और पागल की तरह हंसने लगा। आखिर वे सब नीचे उतर आए और सभी पागल की तरह हंसने लगे। अगर आप भी वहां होते तो आप भी पागल की तरह हंसने लगते। एक बड़ी अजीब बात घट गई थी, उन्होंने रात में कोई भी यात्रा नहीं की; वे वहीं खड़े थे, जहां रात नाव बंधी थी। वे असल में नाव को खोलना भूल गए थे, नाव की जंजीर तट से ही बंधी रह गई थी। रात भर पतवार चलाई व्यर्थ हो गई।

नौका तभी यात्रा करती है जब तट से उसकी जंजीर मुक्त हो। इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि आदमी भी जीवन के अंत में, आमतौर से यही पाता है कि जहां जन्म के समय था, वहीं मृत्यु के समय है, यात्रा नहीं हो पाई, वह कहीं भी नहीं पहुंच पाया है। जीवन भर श्रम किया, पतवार चलाई, दौड़ा, लेकिन कहीं भी पहुंच नहीं पाया है। मृत्यु के क्षण में पता चलता हैः हम अपने पुराने तट से ही बंधे रह गए हैं।

वे नाव की जंजीर खोलना क्यों भूल गए थे? बेहोश थे, इसलिए; होश में नहीं थे। कोई होश में भरा हुआ आदमी पतवार नहीं चलाएगा, पहले जंजीर खोलेगा, फिर पतवार चलाएगा। लेकिन बेहोश आदमी जंजीर खोलने का ख्याल ही भूल जाता है।

हम भी जीवन में कहीं नहीं पहुंच पाते हैं, इससे एक बात निश्चित होती है--हम भी शायद जीवन की जंजीर खोलना भूल गए हैं। और जंजीर खोलना हम तभी भूल सकते हैं जब हम होश में न हों, बेहोश हों, नींद में हों। और हम में से प्रत्येक आदमी करीब-करीब नींद में ही जीता है और नींद में ही समाप्त हो जाता है।

यदि हम जाग जाएं तो शायद मृत्यु से मुक्त हो जाएं। यदि हम जाग जाएं तो हम दुख से मुक्त हो जाएं। यदि हम जाग जाएं तो हम प्रभु को उपलब्ध हो जाएं।

लेकिन हम नींद में हैं और सपनों में हैं। हम चौबीस घंटे सपने देख रहे हैं। आप सोचते होंगे कि रात नींद में सपने देखते हैं, तो गलत है बात, दिन में जागते हुए भी हमारे भीतर सपने चलते रहते हैं। अभी हम यहां बैठे हैं, लेकिन बहुत थोड़े लोग यहां होंगे। कोई कहीं और होगा, कोई कहीं और होगा। मन न मालूम कहां-कहां होगा, मन का कोई ठिकाना नहीं कि वह वहीं हो जहां हम बैठे हैं। और अगर मन कहीं और है तो सपने में है।

एक आदमी मरणशय्या पर पड़ा हुआ है। उसकी मृत्यु करीब आ गई थी। चिकित्सकों ने कह दिया था कि अब बचने की कोई संभावना नहीं है। उसकी पत्नी उसके बिस्तर के पास बैठी थी। उसके बच्चे, उसके बेटे, उसके मित्र, उसके रिश्तेदार चारों तरफ से बैठे थे। सांझ हो गई थी, घर में अंधेरा था, और एक आदमी का जीवन दीया बुझने को था, तो घर में उस दिन कोई दीया भी नहीं जलाया गया था। सब उदास और दुखी थे। सांझ ढल गई, अंधेरा उतरने लगा, उस आदमी ने आंखें खोलीं और अपनी पत्नी से पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है?

उसकी पत्नी को अत्यंत खुशी हुई यह बात सुन कर कि उसका पति अपने बड़े बेटे को पूछ रहा है। उसने जीवन भर कभी किसी के लिए नहीं पूछा। वह पैसा जुटाने में इतना पागल था कि प्रेम के लिए पूछने की उसे फुर्सत भी नहीं मिली थी। जो लोग पैसे के लिए पागल होते हैं, उनका जीवन प्रेम से खाली रह जाता है। प्रेम और पैसे की यात्रा एक साथ नहीं हो सकती। पैसे के लिए चाहिए कठोर, क्रूर और हिंसक मन। प्रेम के लिए चाहिए विनम्र, कोमल, दया से भरा हुआ हृदय। तो जो पैसा इकट्ठा करने में लगते हैं, वे प्रेम को खोने की कीमत पर ही पैसा इकट्ठा कर पाते हैं। प्रेम की हत्या न हो तो पैसा इकट्ठा करना बहुत कठिन है, करीब-करीब असंभव है।

उस पति ने कभी पूछा ही नहीं था कि मेरा बेटा कहां है? वह जब भी पूछता था तो पूछता था, तिजोरी की चाबी कहां है? या इस तरह की और बातें पूछता था। आज मरते क्षण में उसने पूछा है कि मेरा बेटा कहां है? पत्नी बहुत खुश हो गई। उसने कहा, कोई हर्ज नहीं; मरते समय याद आई है प्रेम की तो भी ठीक है, प्रभु का धन्यवाद! उसने अपने पति को कहा, आप निश्चिंत रहें, आपका बड़ा बेटा पैरों के पास ही बैठा हुआ है। वह पति और उठ आया हाथ टेक कर, उसने पूछा, और उससे छोटा बेटा? वह भी वहीं मौजूद था। और उससे छोटा? वह भी वहीं मौजूद था। उसके पांच बेटे थे। और उसने पूछा कि सबसे छोटा बेटा? वह भी वहीं मौजूद था। पत्नी ने कहा, आप बिल्कुल बेफिक्र रहें! उसकी आंखों में खुशी के आंसू आ गए, जाते क्षणों में उसके पति का हृदय आज प्रेम से भर उठा है। लेकिन वह मरता हुआ आदमी उठ कर बैठ गया और उसने कहा, छोटा भी यहां है, इसका क्या मतलब है? फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है!

वह पत्नी भूल में थी, वह प्रेम की याद नहीं थी। मरते क्षण में भी वह सोच रहा था कि दुकान पर... दुकान चल रही है, बंद तो नहीं! कोई बैठा है कि नहीं बैठा है! यह आदमी मरणशय्या पर पड़ा हुआ भी दुकान का स्वप्न देख रहा था। वह वहां नहीं था जहां उसका शरीर था, उसका मन कहीं और था।

स्वप्न का अर्थ हैः हम जहां हैं वहां हमारा मन न हो, तो हम स्वप्न में जीते हैं, तो हम निद्रा में जीते हैं, तो हम बेहोश हैं। होश का अर्थ हैः मैं जहां हूं वहीं मेरी चेतना भी है। बेहोशी का मतलब हैः मैं जहां हूं वहां मेरी चेतना नहीं है।

हर एक आदमी को अपने से पूछना जरूरी है--मैं होश में जी रहा हूं? या बेहोशी में जी रहा हूं?

मेरे एक मित्र स्विटजरलैंड से यात्रा करके वापस लौटे हैं। वे एक बड़े कवि हैं। जब वे मेरे पास आकर मेहमान हुए तो मैंने उनसे कहा--बहुत खूबसूरत रात थी, पूरा चांद था--मैंने उनसे कहा, आप सारी दुनिया घूम कर लौटे हैं, स्विटजरलैंड घूम कर लौटे हैं। मैं भी एक अनूठी जगह दिखाने आपको ले चलता हूं। नर्मदा के तट

पर संगमरमर की चट्टानों में गिरते हुए प्रपात के पास आपको ले चलता हूं। उन्होंने कहा, मैंने बहुत प्रपात देखे हैं, बहुत नदियां देखी हैं, बहुत झीलें देखी हैं, बहुत सुंदर रातें देखी हैं। मुझे कोई खास प्रयोजन नहीं।

फिर भी मैं नहीं माना और उन्हें ले गया। क्योंकि मैंने उनसे कहा कि हर रात का अपना व्यक्तित्व है, और हर चांद की अपनी कहानी है, और हर पहाड़ का अपना गीत है। आपने कुछ भी देखा हो, लेकिन जो दिखाने मैं ले चल रहा हूं वह आपने नहीं देखा है, वह अपनी ही तरह की अलग बात है।

उन्हें मैं ले गया। चांदनी की उस रात में, एकांत में, नाव पर बिठा कर मैं उन्हें पहाड़ियों में ले गया--चांद की बरसती हुई चांदनी में पहाड़ दूध धोए हुए खड़े थे। उन्हें देख कर लगता कि जैसे स्वर्ग में पहुंच गए हैं। लेकिन उन्होंने, दो घंटे तक उन पहाड़ियों के बीच में हम नौका पर थे, एक क्षण को भी उन पहाड़ियों की तरफ न देखा जो मौजूद थीं, न उस चांद की तरफ देखा जो आकाश में हंस रहा था, न उस सन्नाटे को सुना जो चारों तरफ गीत गा रहा था। वे अपने स्विटजरलैंड की कथाएं ही मुझे सुनाते रहे--कि स्विटजरलैंड में इस तरह की झीलें हैं, इस तरह के पहाड़ हैं; मैंने यह देखा, मैंने वह देखा।

फिर हम वापस लौटने लगे, गाड़ी में बैठते समय उन्होंने मुझसे कहा, आप जिस जगह ले आए थे, वह बड़ी सुंदर थी। मैंने कहा, क्षमा करें! हम आए तो दो थे, लेकिन मैं अकेला ही वहां पहुंचा, आप पहुंच नहीं सके। उन्होंने कहा, मैं आपके साथ था पूरे वक्त, आप कैसी बातें करते हैं? मैं आपके पास ही तो बैठा था दो घंटे तक नाव पर! मैंने कहा, आप बैठे जरूर थे, लेकिन आप मेरे पास नहीं थे। आप स्विटजरलैंड में होंगे, मेरे पास आपकी मृत देह, मरा हुआ शरीर था। एक क्षण को भी आप वहां नहीं थे जहां मैं आपको ले गया था। और मैंने उनसे कहा, मैं निवेदन करता हूं कि अब मुझे आपकी स्विटजरलैंड में देखी गई बातों का भी कोई विश्वास न रहा, क्योंकि मैं आपके मन को पहचान गया। जब आप यहां नर्मदा पर बैठ कर स्विटजरलैंड में रहे, तो मैं जानता हूं, स्विटजरलैंड की झीलों में बैठ कर आप काश्मीर में रहे होंगे, या कहीं और रहे होंगे, स्विटजरलैंड में नहीं हो सकते!

इस स्थिति को मैं बेहोशी कहता हूं, नींद कहता हूं, सपना कहता हूं। यह स्थिति हम सबको एक अंधकार की तरह घेरे हुए है। और इसी स्थिति के बीच हम परमात्मा को खोजने की कोशिश करते हैं, इसी स्थिति के बीच हम आनंद को खोजने की कोशिश करते हैं, इसी स्थिति के बीच हम सत्य के निर्णय की चेष्टा करते हैं। वह सब चेष्टा व्यर्थ हो जाती है--उसी तरह जैसे उस रात उस गांव के शराबियों की चेष्टा व्यर्थ हो गई थी।

नींद में कोई सत्य का निर्णय कैसे कर सकता है? सोया हुआ कोई कैसे प्रभु को जान सकता है? बेहोशी में कोई कैसे आनंद को उपलब्ध हो सकता है? सपने में कोई यात्रा कैसे हो सकती है? और सपने में कोई यात्रा कर भी ले तो यात्रा झूठी होगी--सुबह जाग कर पाएगा कि मैं वहीं हूं जहां था, रात मैं कहीं भी नहीं गया हूं। आज रात आप सो जाएं भावनगर में, सपने में हो सकता है कि आप दिल्ली में हों, कलकत्ते में हों। ज्यादा संभावना है कि दिल्ली में हों, क्योंकि दिल्ली में ही होने का सपना हर आदमी देखता रहता है। रात सो जाएं तो यह हो सकता है कि आप दिल्ली पहुंच जाएं। लेकिन सुबह जाग कर आप पाएंगे कि आप कहीं भी नहीं गए थे, आप भावनगर में ही मौजूद थे।

सपने कहीं भी नहीं ले जाते हैं। लेकिन सपने में ही हम सब कर रहे हैं। और इसलिए हमारा सब किया हुआ व्यर्थ हो जाता है। सपने में ही हम पूछ रहे हैं कि परमात्मा क्या है? सपने में पूछ रहे हैं! सपने में एक आदमी हिंदू बना हुआ है, एक आदमी मुसलमान बना हुआ है, एक आदमी ईसाई, एक आदमी जैन बना हुआ है। सपने में! सपने में हमने तय कर लिया है कौन सी किताब सच्ची है, सपने में तय कर लिया है कौन सा भगवान

सच्चा है, सपने में तय कर लिया है कौन सा मंदिर सच्चा है, कौन सी मस्जिद सच्ची है। और एक बात हम भूल ही गए हैं कि सपने में तय की गई सारी बातें दो कौड़ी की हैं। सोए हुए आदमी के किसी निष्कर्ष का कोई भी मूल्य नहीं है। कोई भी मूल्य नहीं है--कि आप सोए में हिंदू हैं, कि मुसलमान हैं, कि जैन हैं; सब एक सी नासमझी की बातें हैं। और बड़ा मजा यह है कि जागा हुआ आदमी न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न जैन होता है। जागा हुआ आदमी सिर्फ आदमी होता है। जागा हुआ आदमी सिर्फ मनुष्य होता है।

हम सब सोए हुए हैं। दुनिया में कोई तीन सौ धर्म बना लिए हैं सोए हुए लोगों ने। और नींद में ही हम लड़ते भी हैं, हत्या भी करते हैं, मस्जिद में आग लगाते हैं, मंदिर की मूर्ति तोड़ते हैं, किताबें जलाते हैं, न मालूम क्या-क्या करते हैं। और यह सारा उपद्रव चलता रहता है। और नींद में हम बड़े-बड़े मेटाफिजिकल प्रश्न उठाते हैं और उनका निर्णय लेना चाहते हैं--स्वर्ग कैसा है? नरक कैसा है? जो लोग भावनगर की भूगोल भी ठीक से नहीं जानते होंगे, वे स्वर्ग और नरक के नक्शे बना कर बता देंगे। उन्होंने मंदिरों में नक्शे टांग रखे हैं--कि स्वर्ग कहां है, नरक कहां है; कितने नरक हैं, कितने स्वर्ग हैं। आदमी नींद में न मालूम क्या-क्या कर रहा है। बड़े-बड़े प्रश्न पूछे जा रहे हैं! और एक छोटा सा प्रश्न कोई भी नहीं पूछ रहा है--कि मैं जागा हुआ आदमी हूं या सोया हुआ आदमी हूं?

मेरी दृष्टि में, मनुष्य के समक्ष धर्म का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न एक ही है, सबसे महत्वपूर्ण जिज्ञासा यही है कि मैं जागा हुआ हूं या सोया हुआ हूं? और अगर सोया हुआ हूं, तो यह नींद कैसे टूट सकती है? यह तंद्रा कैसे मिट सकती है? ये सपनों के बाहर मैं कैसे उठ सकता हूं? ये बंद आंखें कैसे खुल सकती हैं? फिर एक ही महत्वपूर्ण प्रश्न रह जाता है। लेकिन शायद ही कोई पूछता है। क्योंकि हम यह मानने को राजी नहीं होना चाहते कि हम सोए हुए हैं। हमारे अहंकार को बड़ी चोट लगती है, कि कोई कहे कि आप सोए हुए आदमी हैं।

मैंने सुना है, एक फकीर एक गांव में गया। उस गांव के लोग उस फकीर को सुनने के लिए इकट्ठे हुए। गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था वह भी सुनने को आया। फकीर ने बोलना शुरू किया। वह जो धनपति था, वह फकीर के सामने ही बैठा हुआ था, वह सो गया! मंदिरों में लोग अक्सर नींद पूरी करते हैं। कुछ डाक्टर तो यह भी कहते हैं कि जिन लोगों को नींद नहीं आती, उनको वे सलाह देते हैं कि तुम मंदिर में चले जाओ, धर्मकथा सुनो! सब दवाएं असफल हो जाएं, लेकिन धर्मकथा की दवा जरूर कारगर होती है और आदमी को नींद आ जाती है! वह बेचारा धनपति दिन भर कमा-कमा कर थका हुआ लौटा था, वह आंख बंद किए झपकी ले रहा था। दूसरे संन्यासी आते थे, तब भी वह इसी तरह सोता था। लेकिन किसी संन्यासी ने कभी नहीं कहा था कि महाशय, आप सोते हैं! उस धनपति का नाम था आसोजी। यह घटना राजस्थान के एक गांव की है। तो किसी संन्यासी ने कभी नहीं कहा था कि आप सोते हैं, बल्कि संन्यासी तो यह कहते थे कि सेठ जी, आप बहुत ध्यानमग्न होकर सुनते हैं।

संन्यासियों और धनपतियों में कोई आंतरिक शड्यंत्र, साजिश और समझौता है। संन्यासी धनपतियों की प्रशंसा करते हैं, धनपति संन्यासियों के पैर छूते हैं। हमेशा से वह शड्यंत्र जारी है। तो संन्यासी तो धनपति के विरोध में बोल नहीं सकता कभी, क्योंकि धनपति अगर विरोध में हो जाए तो मंदिर कौन बनाए, तीर्थ कौन खड़ा करे, धर्मशालाएं कौन बनाए, दान कौन दे! सारा धर्म धनपति चलाता है। इसलिए वे संन्यासी कहते थे कि आसोजी, और सारे लोग इतने ध्यान से नहीं सुनते, आप तो इतने तल्लीन होकर सुनते हैं! आसोजी जानते थे कि वे सोते हैं, लेकिन मुस्कुराते थे, और कहते थे कि मेरी आदत हमेशा ध्यान से ही सुनने की है।

आदमी को झूठी बातें बड़ी प्रीतिकर लगती हैं, बस वे झूठी बातें उसके अहंकार की तृप्ति करती हों, तब! आदमी को सच्ची बात भी बुरी लगती है, अगर वह उसके अहंकार के विरोध में जाती हो। और झूठी बात भी अच्छी लगती है, अगर अहंकार की तृप्ति होती हो।

लेकिन यह जो फकीर आया हुआ था, यह कोई अनूठा ही फकीर था। जब इसने देखा कि धनपति सो गया है, उसने बोलना बंद कर दिया और जोर से कहा, आसोजी, सोते हैं? आसोजी ने घबड़ा कर आंख खोल दीं, और कहा, नहीं-नहीं, सोता नहीं हूं; आपको शायद पता नहीं है, आप नये-नये आए हैं, मैं ध्यानमग्न होकर सुन रहा हूं!

फकीर ने फिर बोलना शुरू कर दिया। सोए हुए आदमी की बात का बहुत विश्वास नहीं किया जा सकता। दस-पांच मिनट में आसोजी को फिर नींद आ गई। वह फकीर फिर रुक गया और उसने कहा, आसोजी, सोते हैं?

अब आसोजी को क्रोध आ गया। सारा गांव सुन रहा है, लोग कहेंगे, आसोजी कथा में सोते हैं! और गांव सुन ले, भगवान सुन ले कि कथा में सो रहे थे, तो स्वर्ग जाने तक में असुविधा हो सकती है। और इतने जोर से बोलता है यह फकीर। तो आसोजी को क्रोध आ गया, उन्होंने कहा, आप समझे नहीं, मैंने कहा नहीं कि मैं जाग रहा हूं! ध्यान से सुन रहा हूं, मैं सो नहीं रहा हूं। आप अपनी बातें जारी रखिए।

उस फकीर ने फिर बोलना शुरू कर दिया। आसोजी फिर सो गए। सोए हुए आदमी का कोई भरोसा नहीं; जो नींद में है उसकी बात का कोई पक्का नहीं। लेकिन वह संन्यासी भी एक था, उसने फिर बीच में बोलना बंद कर दिया। और अब की बार जो उसने कहा वह ठीक से सुन लेना। हो सकता है कुछ लोग यहां भी सो गए हों तो वे ठीक से न सुन पाएं। उसने जो कहा वह ठीक से सुन लेना। हर बार उसने कहा था, आसोजी, सोते हैं? और आसोजी ने फौरन कहा था, नहीं-नहीं, कौन कहता है? मैं तो जागा हुआ हूं। अब की बार उसने कहा, आसोजी, जीते हैं? और नींद में आसोजी ने समझा कि वही पुराना प्रश्न है, वे बोले कि नहीं-नहीं, कौन कहता है?

उस फकीर ने पूछा था, आसोजी, जीते हैं? आसोजी नींद में समझे कि वही पुराना प्रश्न है, वे कहने लगे, नहीं-नहीं, कौन कहता है?

उस फकीर ने कहा, अब तो निश्चित हो गया कि आप सोते थे। लेकिन यह भी उस फकीर ने कहा कि आपका उत्तर भी सही है, क्योंकि जो सोता है वह जी नहीं सकता है, जीने के लिए जागना जरूरी है। तो आप ठीक ही कहते हैं कि नहीं-नहीं; आप जी नहीं रहे हैं। सोता हुआ आदमी जी भी कैसे सकता है? सोया हुआ आदमी करीब-करीब मरा हुआ आदमी है। जीता हुआ आदमी तो जागता हुआ आदमी होगा।

तो मैं इस अंतिम चर्चा में आपसे यह कहना चाहता हूं कि साधारणतः हम सोए हुए लोग हैं। और जागने की प्रक्रिया, जागने का विज्ञान, जागने की जो कला है, वही धर्म है।

मैंने पीछे आपसे कहा कि धर्म जीवन की कला है। और जीवन की कला जागने की कला से उपलब्ध होती है। अवेकनिंग, अवेयरनेस, होश मिल जाए, प्राण पूरे जाग कर जीवन को अनुभव करने लगें, तो प्रतिक्षण प्रभु के दर्शन शुरू हो जाते हैं, प्रतिपल उसका संगीत सुनाई पड़ने लगता है, और कण-कण में उसकी मूर्ति उपलब्ध होने लगती है, सारा जीवन एक अमृतमय तरंगों में परिवर्तित हो जाता है।

लेकिन उसके लिए जागना जरूरी है। जागना कैसे हो सकता है, यह मैं पीछे आपसे बात करूं, पहले यह स्पष्ट रूप से आपको समझ लेना चाहिए कि अगर जागना हो तो एक निर्णय अपने मन में ले लेना जरूरी है कि मैं सोया हुआ हूं। जो आदमी यह मानने को राजी नहीं कि मैं सोया हुआ हूं, वह जागने की दिशा में कोई भी कदम कभी नहीं रख सकता है। जागने की दिशा का पहला सूत्र है कि मैं अनुभव करूं कि मैं सोया हुआ आदमी हूं। और अनुभव करने के लिए पूरा जीवन सबूत है, पूरा जीवन प्रमाण है।

आज आपने क्रोध किया होगा, और क्रोध करके पछताए होंगे और निर्णय किया होगा कि अब कभी क्रोध नहीं करूंगा। और घंटे भर बाद देखा जाता है, आप फिर क्रोध कर रहे हैं। वह घंटे भर पहले लिया हुआ निर्णय कहां गया? वह सोए में लिया गया निर्णय होगा, इसलिए व्यर्थ हो गया। उसकी कोई याद नहीं रही।

एक आदमी तय करता है कि आज सुबह चार बजे उठूंगा। रोज सुबह चार बजे उठना है, बहुत हो चुका प्रमाद, अब मैं सुबह चार बजे उठूंगा। वह कसम खाकर सोता है कि आज कुछ भी हो जाए, चार बजे मुझे उठना है। और चार बजे जब अलार्म बजता है तब वह अपने मन में कहता है, आज! आज रहने भी दो, कल देखेंगे! सो जाता है फिर। सुबह उठ कर फिर पछताने लगता है कि बहुत बुरा हो गया। कैसे सो गया मैं? मैंने तो तय किया था कि उठना है, निश्चित ही उठना है, मैं सो कैसे गया?

जिसने तय किया था वह भी सोया हुआ आदमी था। इसलिए निर्णय जीवन नहीं बन पाया, व्यर्थ हो गया। हम सभी शुभ-संकल्प करते हैं, लेकिन जीवन में वे शुभ-संकल्प चरितार्थ नहीं हो पाते हैं। नींद में लिए गए संकल्प का कोई भी मूल्य नहीं है। चौबीस घंटे हमारा जीवन कह रहा है कि हम सोए हुए बेहोशी में चल रहे हैं।

एक आदमी दफ्तर में काम कर रहा है। उसका बॉस, उसका मालिक क्रोधित हो जाता है, अपमानित कर देता है। उस आदमी के मन में भी क्रोध उठता है कि मैं भी जवाब दूं और गर्दन पकड़ लूं। कौन नौकर है जो मालिक की गर्दन नहीं पकड़ लेना चाहता है? लेकिन सामने वह हाथ जोड़ कर कहता है कि हुजूर, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, मैं बिल्कुल गलत हूं! भीतर क्रोध उबाल खाता है, लेकिन जिंदगी का सवाल है, ऐसे क्रोध प्रकट करना तो खतरनाक है। जैसे नदी नीचे की तरफ बहती है, ऐसे ही क्रोध भी नीचे की तरफ बहता है, कमजोर की तरफ। ताकतवर की तरफ क्रोध कभी नहीं बहता।

अब मालिक ऊपर है, उस पर क्रोध करना खतरनाक है, क्रोध उस तरफ बहा नहीं जा सकता। क्रोध को पी जाता है और हाथ जोड़ कर मुस्कुराता रहता है। लेकिन क्रोध भीतर चक्कर मारता है। घर लौट कर आता है और कोई बहाना खोजता है कि पत्नी पर क्रोध निकालने का मौका मिल जाए--रोटी जल गई, या सब्जी ठीक नहीं बनी, या कपड़े आज ठीक से नहीं धुले।

कल भी कपड़े ठीक नहीं धुले थे, और कल भी रोटी जली थी, और कल भी सब्जी ऐसी ही बनी थी, लेकिन कल उसके भीतर क्रोध उबलता हुआ नहीं था। आज क्रोध उबल रहा है, वह कोई भी बहाना ढूंढ कर पत्नी पर टूट पड़ता है। यह क्रोध निकलना था मालिक पर, निकल रहा है पत्नी पर। सोए हुए आदमी का सबूत है।

पत्नी क्या कर सकती है पति के साथ? पति ने उसे हजारों साल से समझाया है कि मैं परमात्मा हूं। यह बड़े मजे की बात है। पति खुद ही समझाता है कि मैं तुएहारा परमात्मा हूं। स्त्रियों ने तो अब तक एक भी शास्त्र नहीं लिखा, नहीं तो वे भी शायद यही समझातीं कि पत्नी परमात्मा है, पति चरणों में प्रणाम करो! लेकिन स्त्रियों ने किताबें नहीं लिखीं, उन्होंने कोई शास्त्र ही नहीं लिखा। सब शास्त्र पतियों ने लिखे हैं। तो उन्होंने लिख लिया है उनमें कि पति परमात्मा है। अब परमात्मा पर क्रोध नहीं किया जा सकता, लेकिन क्रोध तो पैदा होता है, पत्नी भी जल उठती है। और क्रोध इसलिए भी पैदा होता है कि उसे दिखाई पड़ता है कि मेरा कोई भी कसूर नहीं है और क्रोध किया जा रहा है! लेकिन पति के सामने वह किसी तरह क्रोध को पी जाएगी। स्कूल से लौटते हुए बेटे की प्रतीक्षा करेगी। थोड़ी-बहुत देर में लड़का स्कूल से लौट ही आएगा--किताब फाड़ कर ले आए हो, बस्ता खराब कर लाए हो, कपड़े खराब हो गए हैं। और बच्चे की पिटाई शुरू हो जाएगी। और बिना इस बात के ख्याल के कि बच्चे की शक्ल में पति को पीटा जा रहा है, बच्चे का कोई भी संबंध नहीं है। कल भी बच्चा इसी तरह

किताब फाड़ कर लाया था, कल भी बस्ता इसी तरह टूट गया था, लेकिन कल कोई क्रोध नहीं था इसलिए बच्चा बच गया था।

इसीलिए तो बच्चे वाली औरतें ज्यादा प्रसन्न मालूम होती हैं, बिना बच्चे वाली औरतें के। बच्चे वाली औरतों के क्रोध को निकलने के सुगम उपाय मिल जाते हैं बच्चों की शक्ल में। हजार बहाने निकाल कर बच्चों को दबाया और सताया जाता है।

बच्चा कुछ भी नहीं कर सकता है बेचारा। अब मां का क्या कर सकता है? करेगा कभी, जब मां बूढ़ी हो जाएगी और बच्चा जवान हो जाएगा। लेकिन अभी उस दिन को बहुत देर है। वह बदला बहुत डिलेड होगा, बहुत देर है अभी। अभी उसका कोई, अभी एकदम से नहीं कर सकता है कुछ। लेकिन कुछ तो उसे करना ही होगा। वह एकांत में जाकर अपनी गुड़िया की टांग तोड़ देगा। और क्या कर सकता है? यह सब नींद में चलता हुआ समाज है। ये सब बेहोशी में दौड़े हुए लोग हैं। यह हमारी सारी चर्या बिल्कुल ऐसी है, जैसे कोई नशे में हो।

अपने जीवन में खोजें, मैं सोया हुआ आदमी हूं या जागा हुआ आदमी हूं?

स्मरण रखेंः जागा हुआ आदमी क्रोध कैसे कर सकता है? स्मरण रखेंः जागा हुआ आदमी दुश्मन कैसे हो सकता है? स्मरण रखेंः जागा हुआ आदमी द्वेष से, अपमान से, घृणा से कैसे भर सकता है? ये सोए हुए आदमी के लक्षण हैं।

बुद्ध एक गांव के पास से निकलते थे। कुछ लोगों ने उन्हें घेर लिया और रास्ते पर रोक लिया, और बहुत गालियां दीं, बहुत अपमानजनक शब्द कहे। बुद्ध ने उन्हें चुपचाप सुना। जब वे सारी गालियां दे चुके तो बुद्ध ने कहा, अगर तुएहारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं? मुझे दूसरे गांव, दोस्तो, जल्दी पहुंचना है। उन लोगों ने कहा, यह कोई बातचीत नहीं थी जो हमने कही, सीधी स्पष्ट गालियां थीं, आपकी समझ में नहीं आईं? बुद्ध ने कहा, गालियां समझ में आ गईं। लेकिन मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है, मैं जाऊं? तुएहारी गालियां पूरी हो गई हों तो मुझे आज्ञा दो। उन्होंने कहा, गालियां पूरी हो गईं, लेकिन प्रत्युत्तर चाहिए! गालियों का उत्तर तत्काल दिया जाता है। आप उत्तर नहीं देना चाहते?

बुद्ध ने कहा, अगर तुएहें गालियों का उत्तर चाहिए था तो दस साल पहले आना था, जब मैं सोया हुआ आदमी था। तब तुम गाली दे भी न पाते और मेरे भीतर दुगने वजन की गाली पैदा हो जाती। लेकिन जब से मैं जाग गया हूं तब से बड़ी मुसीबत हो गई है। आज तुएहें खाली हाथ वापस लौटना पड़ेगा, मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे और मुझसे कहने लगे कि मिठाइयां स्वीकार कर लो। मैंने कहा, मेरा पेट भरा है। वे मिठाइयां वापस ले गए। उन्होंने उन मिठाइयों का क्या किया होगा? उस भीड़ में से एक आदमी ने कहा, उन्होंने बच्चों को बांट दी होंगी, गांव में बांट दी होंगी।

बुद्ध ने कहा, तुम बड़ी मुसीबत में पड़ गए। तुम मिठाइयां लाते तो ठीक था, तुम गालियां लेकर आए! और मैं कहता हूं, मैं लेने से मजबूर हूं, मैं लेने से इनकार करता हूं। अब तुम क्या करोगे? बच्चों को बांटोगे, गांव में प्रसाद बांटोगे, क्या करोगे? गालियां, मित्रो, तुएहें वापस ले जानी पड़ेंगी, क्योंकि मैं लेने से इनकार करता हूं।

गालियां सिर्फ सोया हुआ आदमी लेने के लिए तैयार होता है। जागा हुआ आदमी गालियां क्यों लेगा? जागा हुआ आदमी गड्ढों में क्यों गिरेगा? ठीक रास्ते पर चलेगा! जागा हुआ आदमी कांटों के रास्ते क्यों पकड़ेगा, जब फूलों के रास्ते मौजूद हैं! सोया हुआ आदमी कांटों के रास्ते चुनता है। नींद में चलता हुआ आदमी गड्ढों में गिरता है। होश से भरे आदमी के लिए गड्ढे में गिरने की कोई भी जरूरत नहीं।

आप गड्ढे में गिरते हैं? आप कांटों में उलझते हैं? क्रोध, घृणा, वैमनस्य आपको पकड़ता है? तो जान लेना कि आप सोए हुए आदमी हैं, जागे हुए आदमी नहीं हैं। सोया हुआ आदमी अधार्मिक आदमी है। और जागने के लिए पहला सूत्र है इस बात को स्वीकार कर लेना कि मैं सोया हुआ हूं; तो हम जाग सकते हैं।

मैं समझता हूं, आप सोचेंगे, समझेंगे, खोजेंगे, तो असंभव है यह बात कि आप पाएं कि आप सोए हुए नहीं हैं। सोए हुए हैं, इसकी स्वीकृति अगर स्पष्ट हो जाए--तो कैसे हम जागें? कैसे जाग सकते हैं? उसकी प्रक्रिया समझी जा सकती है। कैसे जाग सकते हैं? क्या रास्ता हो सकता है कि मेरा चित्त जाग जाए, मेरी कांशसनेस होश से भर जाए? मेरे जीवन में भीतर बेहोशी न रह जाए; सब बेहोशी टूट जाए; मैं आर-पार जीवन के देखने में समर्थ हो जाऊं; कैसे यह हो सकता है?

मैंने आपको कहा कि मैं सोएपन का, स्लीपीनेस का एक ही लक्षण मानता हूंः जहां आप हैं वहां आपका मन न हो तो आप सोए हुए हैं। जागने का लक्षण होगाः जहां आप हैं वहीं आपका मन हो। अगर आप भोजन कर रहे हैं, तो सारा जगत मिट जाए और आपका चित्त सिर्फ भोजन करता हो; एक ही कांशसनेस रह जाए, एक ही चेतना रह जाए कि मैं भोजन कर रहा हूं; और चित्त और भोजन के बीच कोई विचार, कोई कल्पना, कोई दर्शन, कोई दृश्य न रह जाए; तो आप जाग कर भोजन कर रहे हैं। अगर आप रास्ते पर चल रहे हैं, तो आपकी चेतना के समक्ष चलने के अतिरिक्त और कोई क्रिया न रह जाए, सिर्फ चलना ही रह जाए; तो आप जाग कर चल रहे हैं। अगर आप यहां मुझे सुन रहे हैं, तो सुनते समय सिर्फ सुनना रह जाए, और आपके मन में कोई भाव, कोई विचार न हो; तो आप जाग कर सुन रहे हैं। जो मैं कर रहा हूं, बस उतना ही करना रह जाए; और चित्त यहां-यहां भागता हुआ न हो, तो चेतना जागनी शुरू हो जाती है।

लेकिन सामान्यतया हमारा चित्त या तो अतीत में होता है, जो बीत गया; या भविष्य में होता है, जो अभी नहीं आया; वर्तमान में हम कभी भी नहीं होते। वर्तमान में होना जागना है। लेकिन हम या तो अतीत में होते हैं; बीत गए दिन हमारे मन को पकड़े रहते हैं। बूढ़े अतीत में जीते हैं, बच्चे भविष्य में जीते हैं। वर्तमान में कोई भी नहीं जीता! या तो हम सोचते हैं आने वाले क्षण की--कि क्या होगा? या हम सोचते हैं बीते क्षण की--कि क्या हो चुका है!

जो हो चुका है वह हो चुका, जो अभी नहीं हुआ है वह नहीं हुआ! जो अभी हो रहा है, वह जो इस क्षण मौजूद है, वही सत्य है। उस सत्य के साथ चेतना एक हो जाए तो व्यक्ति जाग जाता है। और उस जागरण के माध्यम से ही सत्य, परमात्मा, आनंद और सौंदर्य की उपलब्धि होती है। जैसे ही कोई वर्तमान के क्षण में जागता है, वैसे ही मृत्यु मिट जाती है। क्योंकि उस क्षण में जागते ही पता चलता है कि मेरे भीतर तो वह मौजूद है जिसका कोई अंत कभी नहीं हो सकता! वर्तमान के क्षण में जागना स्वयं में जाग जाना है। अतीत में होना स्मृति में होना है। भविष्य में होना कल्पना में होना है। सत्य में जो होना चाहता है, उसे वर्तमान के क्षण में ही जागना होगा।

एक छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं।

जापान में कोई दो सौ वर्ष पहले एक बहुत अदभुत संन्यासी हुआ। उस संन्यासी की एक ही शिक्षा थी कि जागो! नींद छोड़ दो! उस संन्यासी की खबर जापान के सम्राट को मिली। सम्राट जवान था, अभी नया-नया राजगद्दी पर बैठा था। उसने उस फकीर को बुलवाया। और उस फकीर से प्रार्थना की, मैं भी जागना चाहता हूं। क्या मुझे जागना सिखा सकते हैं?

उस फकीर ने कहा, सिखा सकता हूं, लेकिन राजमहल में नहीं, मेरे झोपड़े पर आ जाना पड़ेगा! और कितने दिन में सीख पाएंगे, इसका कोई निश्चय नहीं है। यह एक-एक आदमी की तीव्रता पर निर्भर करता है; एक-एक आदमी के असंतोष पर निर्भर करता है कि वह कितना प्यासा है कि सीख सके। तुएहारी प्यास कितनी है; तुएहारी अतृप्ति कितनी है; तुएहारा डिसकंटेंट कितना है; तो तुम सीख सकते हो। और उस मात्रा में निर्भर होगा कि तुम कितने जल्दी सीख सकते हो। वर्ष लग सकते हैं, दो वर्ष लग सकते हैं, दस वर्ष लग सकते हैं। और मेरी शर्त है कि बीच से कभी आने नहीं दूंगा; अगर सीखना हो तो पूरी तैयारी करके आना। और साथ में यह भी बता दूं कि मेरे रास्ते अपने ढंग के हैं। तुम यह मत कहना कि यह मुझसे क्या करवा रहे हो, यह क्या सिखा रहे हो! मेरे अपने ढंग हैं सिखाने के।

राजकुमार राजी हो गया और उस फकीर के आश्रम पहुंच गया। दूसरे दिन सुबह उठते ही उस फकीर ने कहा कि आज से तुएहारा पहला पाठ शुरू होता है। और पहला पाठ यह है कि मैं दिन में किसी भी समय तुएहारे ऊपर लकड़ी की नकली तलवार से हमला करूंगा। तुम किताब पढ़ रहे हो, मैं पीछे से आकर नकली तलवार से तुएहारे ऊपर हमला कर दूंगा। तुम बुहारी लगा रहे हो, मैं पीछे से आकर हमला कर दूंगा। तुम खाना खा रहे हो, मैं हमला कर दूंगा। दिन भर होश से रहना! किसी भी वक्त हमला हो सकता है। सावधान रहना! अलर्ट रहना! किसी भी वक्त मेरी तलवार--लकड़ी की तलवार--तुएहें चोट पहुंचा सकती है।

उस राजकुमार ने कहा कि मुझे तो जागरण की शिक्षा के लिए बुलाया गया था, और यह क्या करवाया जा रहा है? मैं कोई तलवारबाजी सीखने नहीं आया हूं।

लेकिन गुरु ने पहले ही कह दिया था कि इस मामले में तुम कुछ पूछताछ नहीं कर सकोगे। मजबूरी थी। शिक्षा शुरू हो गई, पाठ शुरू हो गया। आठ दिन में ही उस राजकुमार की हड्डी-पसली सब दर्द देने लगी, हाथ-पैर सब दुखने लगे। जगह-जगह से चोट! किताब पढ़ रहे हैं, हमला हो जाएगा। रास्ते पर घूमने निकला है, हमला हो जाएगा। दिन में दस-पच्चीस बार कहीं से भी हमला हो जाएगा।

लेकिन आठ दिन में ही उसे पता चला कि धीरे-धीरे एक नये प्रकार का होश, एक जागृति उसके भीतर पैदा हो रही है। वह पूरे वक्त अलर्ट रहने लगा, सावधान रहने लगा। कभी भी हमला हो सकता है! किताब पढ़ रहा है, तो भी उसके चित्त का एक कोना जागा हुआ है कि कहीं हमला न हो जाए! तीन महीने पूरे होते-होते, किसी भी तरह का हमला हो, वह रक्षा करने में समर्थ हो गया। उसकी ढाल ऊपर उठ जाती। पीछे से भी गुरु आए, तो भी ढाल पीछे उठ जाती और हमला सएहल जाता। तीन महीने बाद उसे चोट पहुंचाना मुश्किल हो गया। कितने ही अनअवेयर, कितना ही अनजान हमला हो, वह रक्षा करने लगा। चित्त राजी हो गया, चित्त सजग हो गया।

उसके गुरु ने कहा कि पहला पाठ पूरा हो गया; कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। दूसरा पाठ यह है कि अब तक जागते में मैं हमला करता था, कल से नींद में भी हमला होगा; सएहल कर सोना!

उस राजकुमार ने कहा, गजब करते हैं आप! कमाल करते हैं! जागने तक गनीमत थी, मैं होश में था, किसी तरह बचा लेता था। लेकिन नींद में तो बेहोश रहूंगा!

उसके गुरु ने कहा, घबड़ाओ मत; मुसीबत नींद में भी होश को पैदा कर देती है। संकट, क्राइसिस नींद में भी सावधानी को जन्म दे देती है।

एक मां सोती है, बच्चा उसके पास सोया है, बीमार बच्चा है। कितनी ही गहरी नींद हो, आकाश में बादल गरजते रहें, बिजली चमकती रहें, रास्तों पर युद्ध के टैंक गुजरते रहें, वह मां की नींद नहीं खुलेगी। लेकिन बच्चा जरा सा कराहा और मां जाग जाएगी। वह कराह भी सुनाई पड़ सकती है।

यहां कितने लोग हैं, हम सब सो जाएं रात और फिर कोई एक आदमी दरवाजे पर आकर चिल्लाए--राम! राम कहां है? किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा, लेकिन जिसका नाम राम है वह आंख खोल कर कहेगा, कौन है? कौन नींद गड़बड़ कर रहा है? कौन बुला रहा है? नींद में भी पता है आपको कि आप राम हैं। नींद में भी आवाज आपकी चेतना को स्पर्श करती और स्मरण दिलाती है।

उस बूढ़े ने कहा, फिकर मत करो। तुम उसकी फिकर छोड़ो। तुम तो नींद में भी होश रखने की कोशिश करना। और लकड़ी की तलवार से नींद में हमले शुरू हो गए। रात में आठ-दस दफा कभी भी चोट पड़ जाती है। एक दिन, दो दिन, आठ-दस दिन बीतते फिर हड्डी-पसली दर्द करने लगी।

लेकिन तीन महीने पूरे होते-होते राजकुमार ने पाया कि वह बूढ़ा ठीक कहता है। नींद में भी होश जगने लगा। सोया रहता, और भीतर कोई जागता भी रहता और स्मरण रखता कि हमला हो सकता है! हाथ रात में, नींद में भी ढाल को पकड़े रहता। तीन महीने पूरे होते-होते गुरु का आगमन, उसके कदम की धीमी सी आवाज भी उसे चौंका देती और वह ढाल से रक्षा कर लेता। तीन महीने पूरे होने पर नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। अब वह बहुत प्रसन्न था। एक नये तरह की ताजगी उसे अनुभव हो रही थी। नींद में भी होश था। और कुछ नये अनुभव उसे हुए। पहले तीन महीने में, जब वह दिन में जागने की कोशिश करता था, तो जितना-जितना जागना बढ़ता गया, उतने-उतने विचार कम होते गए। विचार नींद का हिस्सा है। जितना सोया हुआ आदमी, उतने ज्यादा विचार उसके भीतर चक्कर काटते हैं। जितना जागा हुआ आदमी, उतना भीतर साइलेंस और मौन आना शुरू हो जाता है, विचार बंद हो जाते हैं।

पहले तीन महीने में उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा था कि धीरे-धीरे विचार कम होते गए, कम होते गए, फिर धीरे-धीरे विचार समाप्त हो गए। सिर्फ सावधानी रह गई, होश रह गया, अवेयरनेस रह गई। ये दोनों चीजें एक साथ कभी नहीं रह सकतीं; या तो विचार रहता है, या होश रहता है। विचार आया कि होश गया। जैसे बादल घिर जाएं आकाश में तो सूरज ढंक जाता है, बादल हट जाएं तो सूरज प्रकट हो जाता है। विचार मनुष्य के मन को बादलों की तरह घेरे हुए हैं। विचार घेर लेते हैं, होश दब जाता है। विचार हट जाते हैं, होश प्रकट हो जाता है। जैसे बादलों को फोड़ कर सूरज दिखाई पड़ने लगता है।

पहले तीन महीने में उसे अनुभव हुआ था कि विचार क्षीण हो गए, कम हो गए। दूसरे तीन महीने में एक और नया अनुभव हुआः रात में जैसे-जैसे होश बढ़ता गया, वैसे-वैसे सपने, ड्रीएस कम होते गए। जब तीन महीने पूरे होते-होते जागरण रात में भी बना रहने लगा, तो सपने बिल्कुल विलीन हो गए, नींद स्वप्नशून्य हो गई। दिन विचारशून्य हो जाए, रात स्वप्नशून्य हो जाए, तो चेतना जागी।

तीन महीने पूरे होने पर उसके बूढ़े गुरु ने कहा, दूसरा पाठ पूरा हो गया, कल से तीसरा पाठ शुरू होगा। उस राजकुमार ने कहा, तीसरा पाठ क्या हो सकता है? जागने का पाठ भी पूरा हो गया, नींद का पाठ भी पूरा हो गया। उसके गुरु ने कहा, अब असली पाठ शुरू होगा। कल से मैं असली तलवार से हमला शुरू करूंगा। अब तक लकड़ी की तलवार थी। उस राजकुमार ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? लकड़ी की तलवार तक गनीमत थी, चूक भी जाता था तो भी कोई खतरा नहीं था, असली तलवार!

गुरु ने कहा कि जितना चैलेंज, जितनी चुनौती चेतना के लिए खड़ी की जाए, चेतना उतनी ही जागती है। जितनी चुनौती हो चेतना के लिए, चेतना उतनी सजग होती है। तुम घबराओ मत। असली तलवार तुएहें और गहराइयों तक जगा देगी।

और दूसरे दिन सुबह से असली तलवार से हमला शुरू हो गया। सोच सकते हैं आप, असली तलवार का ख्याल ही उसकी सारी चेतना की निद्रा को तोड़ दिया होगा। भीतर तक, प्राणों के अंतस तक वह तलवार का स्मरण व्याप्त हो गया। तीन महीने गुरु एक भी चोट नहीं पहुंचा सका असली तलवार से। लकड़ी की तलवार से चोट पहुंचा भी सका था, क्योंकि लकड़ी की तलवार की उतनी चुनौती न थी। असली तलवार की चुनौती अंतिम थी। एक बार चूक जाए तो जीवन समाप्त हो जाए।

तीन महीने में एक चोट नहीं पहुंचाई जा सकी। और इन तीन महीनों में उसे इतनी शांति, इतने आनंद, इतने प्रकाश का अनुभव हुआ उस युवक राजकुमार को कि उसका जीवन एक नये नृत्य में, एक नये लोक में प्रवेश करने लगा। आखिरी दिन आ गया तीसरे पाठ का, और गुरु ने कहा कि कल तुएहारी विदा हो जाएगी। तुम उत्तीर्ण हो गए। क्या तुम नहीं जाग गए? उस युवक ने गुरु के चरणों में सिर रख दिया। उसने कहा, मैं जाग गया हूं। और अब मुझे पता चला कि मैं कितना सोया हुआ था!

जो आदमी जीवन भर बीमार रहा हो, वह धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि मैं बीमार हूं। जब वह स्वस्थ होता है तभी पता चलता है कि मैं कितना बीमार था। जो आदमी जीवन भर सोया रहा है... और हम सब सोए रहे हैं; हमें पता भी नहीं चलता कि हम कितने सोए हुए हैं। जब हम जागेंगे तभी हमें पता चलेगा कि ओह! यह सारा जीवन एक नींद थी।

श्री अरविंद ने कहा है, जब मैं सोया हुआ था तो जिसे मैंने प्रेम समझा था, जाग कर मैंने पाया वह असत्य था, वह प्रेम नहीं था। जब मैं सोया हुआ था तो जिसे मैंने प्रकाश समझा था, जाग कर पाया कि वह अंधकार से भी बदतर अंधकार था, वह प्रकाश था ही नहीं। जब मैं सोया हुआ था तो जिसे मैंने जीवन समझा था, जाग कर मैंने पाया वह तो मृत्यु थी, जीवन तो यह है।

उस राजकुमार ने चरणों में सिर रख दिया और कहा कि अब मैं जान रहा हूं कि जीवन क्या है। कल क्या मेरी शिक्षा पूरी हो जाएगी?

गुरु ने कहा, कल सुबह मैं तुएहें विदा कर दूंगा।

सांझ की बात है, गुरु बैठ कर पढ़ रहा है एक वृक्ष के नीचे किताब। और कोई तीन सौ फीट दूर वह युवक बैठा हुआ है। कल सुबह वह विदा हो जाएगा। इस छोटी सी कुटी में, इस बूढ़े के पास, उसने जीवन की संपदा पा ली है। तभी उसे अचानक ख्याल आया कि यह बूढ़ा नौ महीने से मेरे पीछे पड़ा हुआ हैः जगाने-जगाने, जगाना-जगाना, सावधान-सावधान। यह बूढ़ा भी इतना सावधान है या नहीं? आज मैं भी इस पर उठ कर हमला करके क्यों न देखूं! कल तो मुझे विदा हो जाना है। मैं भी तलवार उठाऊं इस बूढ़े पर, हमला करके पीछे से देखूं, यह खुद भी सावधान है या नहीं?

उसने इतना सोचा ही था कि वह बूढ़ा वहां दूर से चिल्लाया कि नहीं-नहीं, ऐसा मत करना। मैं बूढ़ा आदमी हूं, भूल कर भी ऐसा मत करना। वह युवक तो अवाक रह गया! उसने सिर्फ सोचा था। उसने कहा, मैंने लेकिन अभी कुछ किया नहीं, सिर्फ सोचा है। उस बूढ़े ने कहा, तू थोड़े दिन और ठहर। जब मन बिल्कुल शांत हो जाता है, तो दूसरे के विचारों की पगध्वनि भी सुनाई पड़ने लगती है। जब मन बिल्कुल मौन हो जाता है, तो

दूसरे के मन में चलते हुए विचारों का दर्शन भी शुरू हो जाता है। जब कोई बिल्कुल शांत हो जाता है, तब सारे जगत में, सारे जीवन में चलते हुए स्पंदन भी उसे अनुभव होने लगते हैं।

इतनी ही शांति में प्रभु की वाणी सुनाई पड़ती है। इतनी ही शांति में प्रभु-चेतना का अनुभव अवतरित होता है।

वह राजकुमार दूसरे दिन विदा हो गया होगा। एक अनूठा अनुभव लेकर वह उस आश्रम से वापस लौटा। जब वह राजधानी में प्रविष्ट हुआ, तो वह हैरान रह गया! जो भी आदमी उसको दिखाई पड़ता, वह उसे दिखाई पड़ता कि वह बिल्कुल सोया हुआ चला जा रहा है। हर आदमी सोया हुआ चला जा रहा है। दुकानदार दुकान पर बैठ कर सोया हुआ धंधा कर रहा है। रास्ते पर चलने वाले नींद में चले जा रहे हैं। वह इतना घबड़ाया, क्योंकि सारा जगत सोया हुआ था!

जागने की छोटी सी किरण दिखाई पड़े तो आपको चारों तरफ सोए हुए लोग दिखाई पड़ेंगे। और तब उन सोए हुए लोगों पर आपको क्रोध नहीं, दया का अनुभव होगा; ममता का अनुभव होगा; करुणा का अनुभव होगा। तब अगर एक सोया हुआ आदमी आपको धक्का मार देगा तो आप लड़ने को तैयार नहीं हो जाएंगे, आप समझेंगे वह बेचारा सोया हुआ है। एक आदमी गाली दे जाएगा, और आप समझेंगे वह बेचारा सोया हुआ है। एक आदमी हमला कर देगा, और आप समझेंगे कि वह बेचारा सोया हुआ है।

जागा हुआ आदमी जब सारे जगत को सोया हुआ देखता है, तो अति करुणा से भर जाता है। जागरण का लक्षण हैः सारे जीवन के प्रति प्रेम और करुणा से भर जाना। सोए हुए आदमी का लक्षण हैः सबके प्रति क्रोध, घृणा, हिंसा से भरे हुए होना। हिंसा नींद की छाया है, प्रेम जागृति की छाया है। इसलिए प्रेम से पहचाना जाता है कि कोई आदमी प्रभु के पास पहुंच गया या नहीं। इसलिए प्रेम से खबर मिलती है कि किसी को प्रभु का संदेश उपलब्ध हो गया या नहीं। इसलिए बहते हुए प्रेम से संदेश आता है, ध्वनि आती है कि कोई प्रभु के मंदिर के निकट पहुंचने लगा है।

लेकिन जिनको हम धार्मिक लोग कहते हैं, वे एक-दूसरे के प्रति इतनी घृणा से भरे हुए हैं कि उनका प्रभु से कोई भी संबंध नहीं हो सकता है। हिंदू मुसलमान के प्रति घृणा से भरा हुआ है। ईसाई हिंदू के प्रति घृणा से भरा हुआ है। जैन बौद्ध के प्रति घृणा से भरा हुआ है। वे सारे लोग एक-दूसरे के प्रति घृणा से भरे हुए हैं, द्वेष से भरे हुए हैं, प्रतिस्पर्धा से भरे हुए हैं। वे धार्मिक कैसे हो सकते हैं?

धार्मिक आदमी के लिए सिवाय प्रेम के और कुछ भी शेष नहीं रह जाता। लेकिन वह प्रेम तभी उपलब्ध होता है जब जागरण उपलब्ध होता है। नींद को जागरण में तोड़ना जरूरी है, नींद को जागरण में बदलना जरूरी है।

कैसे बदलेंगे आप? कौन आपके पीछे तलवार लेकर लगेगा?

कोई नहीं लगेगा आपके पीछे तलवार लेकर! लेकिन मौत आपके पीछे तलवार लेकर रोज ही लगी हुई है। अगर मौत का स्मरण आ जाए, तो आप भी जाग सकते हैं। प्रतिपल मौत आपके पीछे लगी हुई है, प्रतिक्षण कोई तलवार हर एक के ऊपर लटक रही है। अगर उसका स्मरण आ जाए, तो आप होश से भर सकते हैं। अगर स्मरण आ जाए...

मैंने सुना है, महाराष्ट्र में एक संत हुआ। एक युवक उसके पास कभी-कभी आता था। उस युवक ने एक दिन सुबह-सुबह आकर संत को पूछा कि मैं आपको देखता हूं तो मेरे मन में एक प्रश्न हमेशा उठता है, लेकिन दूसरे लोग मौजूद रहते हैं इसलिए मैं पूछता नहीं। मेरे मन में यह प्रश्न उठता है, आप इतने प्रेम से भरे हुए मालूम होते

हैं, क्या आपके भीतर घृणा का ख्याल कभी नहीं उठता? आप इतने शांत मालूम होते हैं कि क्या आपके भीतर अशांति का कीड़ा कभी नहीं सरकता? आप इतने धुले-धुले साफ-स्वच्छ मालूम होते हैं कि क्या अपवित्रता के दाग आपके भीतर बिल्कुल मिट गए हैं? क्या जैसे आप बाहर हैं, वैसा ही भीतर भी है सब कुछ? मैं यही पूछना चाहता हूं।

उस संन्यासी ने कहा कि मेरे दोस्त, तुएहारे प्रश्न का उत्तर मैं दो क्षण बाद दूंगा। एक और जरूरी बात मुझे बता देनी है। दो दिन से सोचता हूं बताने को, लेकिन भूल जाता हूं। और अगर दो-चार दिन और भूल गया तो फिर बताने की जरूरत न रह जाएगी। पहले वह सुन लो। उस युवक ने कहा, वह कौन सी बात है? उस संन्यासी ने कहा कि दो दिन पहले तुएहारे हाथ पर अचानक मेरी नजर गई तो मैंने देखा, तुएहारी उम्र की रेखा समाप्त हो गई है। सात दिन और, और तुम समाप्त हो जाओगे। यह दो दिन पहले की बात है, अब पांच दिन ही बचे हैं। पांचवें दिन सूरज डूबा और तुम भी गए। तो यह बता दूं, नहीं तो भूल जाए तो फिर बताने की कोई जरूरत न रह जाए। अब तुम पूछो कि क्या पूछते थे?

वह आदमी उठ कर खड़ा हो गया। वह आया था तो जवान था। यह बात सुनते ही कि पांच दिन में मौत है, एकदम से बूढ़ा हो गया। उसके हाथ-पैर कंपने लगे। उस संन्यासी ने उसे कहा, बैठो! तुम कुछ अच्छी बात पूछते थे, पूछो! मैं उसका उत्तर दूं।

उस आदमी ने कहा, मुझे अब कुछ भी याद नहीं आता कि मैं आपसे क्या पूछता था! फिर कभी ख्याल आया तो मैं आकर पूछूंगा। अभी मैं जाता हूं, क्षमा करें!

वह आदमी दीवाल का सहारा लेकर सीढ़ियां उतरने लगा। अभी आया था तो जवान था। अभी आया था तो हाथों में मजबूती थी, अभी पैर शक्तिशाली थे। अब लौटता था तो सब विलीन हो गया। आंखों ने जैसे प्रकाश खो दिया हो। पैरों ने शक्ति खो दी, प्राणों ने ऊर्जा खो दी, मौत सामने खड़ी हो गई। वह अपने घर तक भी नहीं पहुंच पाया और सड़क पर गिर पड़ा, बेहोश हो गया। तो उसे बेहोशी में घर ले जाया गया। उसने जाकर बामुश्किल बता पाया कि बस पांच दिन और, मैं खतम हो जाऊंगा। थोड़ा स्वस्थ हुआ, तो उसने घर के लोगों को कहा, जाओ, पड़ोस में जिनसे मेरे झगड़े थे, उनसे मेरी ओर से क्षमा मांग आओ!

कल सुबह तक सोच रहा था कि मुकदमे चलाने हैं, कल सुबह तक सोचता था कि किसकी छाती में छुरा भुंकवा दूं। आज कहने लगा कि जाओ, उनसे क्षमा मांग आओ! सब झगड़े जिंदगी के झगड़े थे, जब मौत आ गई तो कैसा झगड़ा? कैसे झगड़े का सवाल?

पास-पड़ोस में क्षमा मांग ली। मित्र-प्रियजन इकट्ठे होने लगे। पांच दिन और हैं। पांचवें दिन वह आदमी करीब-करीब मृत्यु में डूबा-डूबा हो गया। सूरज डूबने के घड़ी भर पहले वह संन्यासी उसके घर पहुंचा। अंधकार है, लोग रो रहे हैं, पत्नी बिलख रही है, बच्चे चिल्ला रहे हैं। वह संन्यासी भीतर गया। उस आदमी को हिलाया--उसकी आंखें बंद हैं, गड्ढों में समा गई हैं आंखें--हिला कर उसने पूछा कि मेरे दोस्त, अभी सूरज डूबने में एक घड़ी देर है, मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं, उत्तर दोगे? मैं पूछने आया हूं कि पांच दिनों में तुएहारे मन में कोई पाप उठा? पांच दिनों में तुएहारे मन में घृणा उठी? हिंसा उठी? द्वेष उठा? क्रोध उठा? एक ही प्रश्न मैं पूछने आया हूं।

वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा, आप भी मरते हुए आदमी से मजाक करते हैं! मौत इतने करीब थी कि मेरे और मौत के बीच फासला कहां था कि क्रोध उठ आए, हिंसा उठ आए, घृणा उठ आए। फासला कहां था मौत और मेरे बीच! मैं था और मौत थी, और कुछ नहीं था पांच दिन। न घृणा उठी, न हिंसा, न क्रोध; न मालूम कहां गए सब! बस मौत थी और मैं था!

उस फकीर ने कहा, उठ जाओ! अभी मौत नहीं आई तुएहारी, रेखा तुएहारी बहुत लंबी है। मैंने तो केवल तुएहारे प्रश्न का उत्तर दिया है। अभी तुम मरने को नहीं हो।

पांच दिन बाद मौत दिखाई पड़े या पचास वर्ष बाद मौत दिखाई पड़े, इससे क्या फर्क पड़ता है! जिसको मौत दिखाई पड़ने लगती है, उसके जीवन में आमूल परिवर्तन शुरू हो जाता है। मौत सबसे बड़ा शिक्षक है। मृत्यु सबसे बड़ा गुरु है। और जिस व्यक्ति को धार्मिक जीवन में दीक्षा लेनी हो, उसे मृत्यु के अतिरिक्त और किसी गुरु को खोजने की कभी भी जरूरत नहीं। मृत्यु को स्मरण करें। वह चौबीस घंटे तलवार लिए आपके साथ है। और मृत्यु को स्मरण करके जीने की कोशिश करें। और आप पाएंगे कि आप जागना शुरू हो गए हैं, नींद टूटनी शुरू हो गई है। नींद समाप्त हो जाएगी।

एक छोटी सी घटना, और मैं अपनी बात को पूरा करूं।

एक पहाड़ पर, जहां चार-चार सौ फीट ऊंचे दरख्त थे, एक बूढ़ा आदमी लोगों को दरख्तों पर चढ़ने की कला सिखाता। सीधे दरख्त, आकाश को छूते वृक्ष, चार सौ फीट ऊंचे, उन पर लोगों को चढ़ने की कला सिखाता। एक युवक उससे वृक्षों पर चढ़ने की कला सीखने आया था। वह बूढ़ा नीचे बैठ गया था और युवक को कहा था कि तू चढ़, उसे चढ़ने का ढंग बता दिया था। वह युवक उस ऊंचे दरख्त पर चढ़ रहा था। धीरे-धीरे-धीरे वह चार सौ फीट ऊंची आखिरी शिखा पर पहुंच गया। जहां हवा का जरा सा झोंका मौत का ख्याल लाता था। जहां जरा सी चूक, और जिंदगी समाप्त थी। वह बूढ़ा नीचे चुपचाप बैठा रहा, चुपचाप बैठा रहा, चुपचाप बैठा रहा।

फिर वह जवान उतरना शुरू हो गया। जब वह जवान कोई बीस फीट ऊपर रह गया था, तब वह बूढ़ा एकदम उठ आया और कहने लगा, सावधान! होश से उतरना!

वह जवान हंसने लगा, उसने कहा, आप भी बड़े पागल मालूम होते हैं। जब मैं चार सौ फीट की ऊंचाई पर था और मौत करीब थी, तब चिल्लाना था कि सावधान! अब चिल्लाने का क्या फायदा है? अब तो मैं जमीन के करीब आ गया।

उस बूढ़े ने कहा, मेरे जीवन भर का अनुभव यह कहता है कि जहां मौत करीब होती है वहां आदमी खुद ही सावधान होता है, किसी को सावधान करने की जरूरत नहीं पड़ती। तुम जब चार सौ फीट की ऊंचाई पर थे, तब मेरी कोई भी जरूरत नहीं थी कि मैं तुएहें चिल्लाऊं--सावधान! तुम खुद ही सावधान थे। क्या तुम सावधान नहीं थे? क्या तुम जब चार सौ फीट की ऊंचाई पर थे, तब तुएहें कोई विचार आया?

उस युवक ने ख्याल किया, यह सच्चाई थी! जब वह चार सौ फीट की ऊंचाई पर था और हवा के कंपन मौत बन गए थे, तब न तो कोई विचार था, न कोई स्मृति थी, न कोई अतीत था, न कोई भविष्य था। वह वर्तमान का क्षण था, वे हवाओं के झोंके थे, वह वृक्ष था, वह सूरज की रोशनी थी, वह ऊंचाई थी, वह खुद था। लेकिन वहां न कोई अतीत था, न कोई भविष्य था, न कोई कल्पना थी, न कोई स्मृति थी, न कोई विचार था। वह बिल्कुल निर्विचार था। उसने कहा, आप शायद ठीक कहते हैं। मैं बहुत सावधान था वहां।

और उस बूढ़े ने कहा, मैं और अनुभव से यह कहता हूं कि जैसे ही आदमी जमीन के करीब आता है वृक्ष से और जैसे ही उसे लगता है कि खतरे के पार आ गया, वैसे ही नींद आनी शुरू हो जाती है, वैसे ही बेहोशी पकड़नी शुरू हो जाती है, वैसे ही सावधानी समाप्त हो जाती है। जब तू करीब आ रहा था तब मैंने देखा कि अब नींद आनी शुरू हो रही है, तब मैं चिल्लाया कि सावधान!

उस बूढ़े ने कहा, लोग किनारे के पास आकर कश्ती डूबा बैठते हैं, यह जान कर कि किनारा पास आ गया, और असावधान हो जाते हैं। मझधार में मुश्किल से कभी कोई डूबता है; लोग अक्सर किनारों पर ही डूबते हैं और नष्ट होते हैं। और उस बूढ़े ने कहा कि मैंने अब तक वृक्ष की आखिरी चोटी से किसी को गिरते नहीं देखा; जब भी गिरते देखा है तो जमीन के पास नीचे आकर गिरते देखा है।

मौत पीछे हो, चारों तरफ हो, तो एक ऐसी सावधानी की ज्योति भीतर पैदा होती है, एक ऐसा होश जगता है, एक ऐसा दीया जगता है प्रज्ञा का, ज्ञान का, कि वह दीया आपके सारे जीवन के अंधकार को तोड़ डालता है। उस प्रकाश में ही प्रभु के दर्शन होते हैं। उस प्रकाश में ही आनंद की वर्षा होती है। उस प्रकाश में ही अमृत के द्वार खुलते हैं। उस प्रकाश का ही नाम सत्य है। उस प्रकाश का ही नाम ब्रह्म है। उस प्रकाश का ही नाम मोक्ष है।

अगर यह यात्रा करनी हो, अगर यह प्रभु तक के मंदिर तक पहुंचने की आकांक्षा, अभीप्सा हो, अगर इसकी आकुल प्यास हो, तो नींद को तोड़ें और जागें। जिस दिन भी आप जाग जाएंगे, उसी दिन जीवन उपलब्ध हो जाता है।

मैंने जो यह कहा, यह कोई फिलासफी नहीं है, यह कोई दर्शन नहीं है। मैंने जो कहा, यह सुन लेना भर पर्याप्त नहीं है। मैंने जो यह कहा, अगर इसका थोड़ा सा प्रयोग करेंगे तो कोई परिणाम आ सकते हैं। परमात्मा करे, आपको जीवन के साथ प्रयोग करने का साहस और प्यास दे! परमात्मा करे, आप जन्म पर ही न रुक जाएं, जीवन को उपलब्ध हो सकें! अंत में यही कामना करता हूं कि सबको प्रभु उपलब्ध हो सके। सबका अधिकार है प्रभु को पा लेना, जन्मसिद्ध अधिकार है कि प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो जाए। परमात्मा करे कि प्रत्येक वही हो सके जिसे होने के लिए पैदा हुआ है।

मेरी बातों को तीन दिनों तक इतने प्रेम और शांति से सुना, इतनी प्यास से, इतनी आतुरता से, उसके लिए जितना भी मैं धन्यवाद करूं वह थोड़ा है। मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हुआ हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।